ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

बुन्देली भाषा के लोकगीतों में मानवीय संबंध

श्रीमती मोनिका पौराणिक

शोधार्थी हिंदी एवं भाषाविज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

साहित्य वह ज्ञान सागर है, जिसके अंतर्गत मानवीय संबंधों की गंगा बहती है। साहित्य मनुष्य की चित्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब है। कहा जाता है साहित्य समाज का दर्पण भी है। किसी भी देश के साहित्य के सृजन भाषा में असम्भव है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है। तथा उसकी अनेक उपभाषायें भी हैं इसी श्रृंखला में पश्चिमि हिन्दी के वर्ग में बुन्देली उपभाषा आती है। बुन्देली का अपना एक विस्तृत लोक साहित्य है। लोक साहित्य का संबंध मानव विकास के साथ ही चला आ रहा है। जब लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था। तब से दादी, नानी की कहानियों ने लोक साहित्य का संरक्षण किया । लोक साहित्य सामान्य मानव के हृदय का प्रतीक है। इसमें वर्षो से श्रीराम–सीता, राधा–कृष्णा, सुदामा–कृष्ण, भक्त हनुमान आदि के मध्य आदर्श संबंधों को बताकर वर्तमान युग में भी इन संबंधों को वही आदर व सम्मान दिलाने का प्रयास है, तथा उसे सुरक्षित रखने में लोक साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

''भाषा का एक सामाजिक दायित्व भी है और इसी से प्रेरित होकर साहित्य की सर्जना होती है। जब भाषा तथा भाषा शास्त्र के अध्ययन की गति मंद पड़ जाती है। तब साहित्य रचना में भी शिथिलता आ जाती है।''[1]भाषा का प्रयोग मनुष्य के जन्म के साथ ही शुरू हो जाता हैं। जब वह बालक होता है तो वह अपनी मॉ के स्पर्श और उसकी बोली सुनकर शांत हो जाता है। बालपन से मनुष्य के चारों ओर जिस भाषा का पर्यावरण होता है, वह उसमें रम जाता है। वही उसकी मातृ भाषा होती है। भाषा तथा बोली के माध्यम से ही परिवार में उसके संबंधों–माता–पिता, पुत्र–पुत्री, भाई–बहन, दादा–दादी, चाचा–चाची एवं बुआ–फूफा, ननद–भाभी, देवर–भाभी, सास–बहू आदि का उसे ज्ञान होता है, तथा परिवार में रहकर उसके चरित्र एवं आचरण का निर्माण होता जाता है।

''इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस।

छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू होंस।''

उपरोक्त पंक्तियॉ बुन्देलखण्ड के अंतर्गत आने जाने वाले क्षेत्रों की सीमा का निर्माण करती है। बुन्देलखण्ड में बुन्देली भाषा बोली जाती है। बुन्देली बोली के क्षेत्र ''श्री गौरी शंकर द्विवेदी के अनुसार झॉसी, जालौन, बॉदा, हमीरपुर, सागर, दमोह और जबलपुर का कुछ अंश, मिर्जापुर, और इलाहावाद के कुछ अंश, आमलपुर, भिण्ड, ग्वालियर, गिर्द नरवर, ईसागढ़, कुरवाई, पठारी, मकसूदनगढ़, भेलसा, रायसेन, बेरसिया, सॉची, राजगढ़, नर्सिगगढ़, मोहम्मदगढ़, बासौद, ओरछा, दतिया, पन्ना, अजय गढ़, चरखारी, बिजावर, छत्तरपुर, समथर, बावनी, कदौरा, जिगनी, सलीला, दुखई, बिजना, टोड़ी, फतहपुर, बंका पहाड़ी, लुगासी, बीहर, बेरी, अलीपुर, गौरिहार, गरौली, बिलहरी, नेगवा, रिबई, में बोली जाती है।''[2]

बुन्देली भाषा का उदय शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिन्दी के अंतर्गत बुन्देली

[1] हिंदी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, सरस्वती पाण्डेय, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – वर्ष 2014, पृ.क्र.–24

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास , डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपर मार्ट, तैतीसवॉ संस्करण–वर्ष 2007 पृ.क्र.–08

ओकार बहुला भाषा का आविर्भाव हुआ। इसकी अपनी उपबोलियॉं–पावरी, बनाफरी, लोधांती, निभट्ठा है।[3] बुन्देलखण्ड में बोली जाने के कारण इसको बुन्देलखण्डी भी कहा जाता है। बुन्देलखण्ड की इस लोभावनी बोली में मानवीय भावों से संबंधित विभिन्न प्रकारों के लोकगीतों का प्रादुर्भाव हुआ। जिन्हें बुन्देलखण्ड के निवासी अपने पारस्परिक संबंधों को उत्सव की भांति ज्यों का त्यों आज भी मनाते व गाते आ रहे हैं। इन लोकगीतों में प्रेम आदर नोक–झोक, सम्मान, हास्य, सम्मान, मर्यादा, एवं आदर्श के रूप व्यक्त होते हैं।

ऐसे ही लोकगीतों हैं, जिनके द्वारा मानवीय संबंधों की झलक प्रस्तुत होती है।

'' देवी दुर्गा ने दये बरदान हमारे घर लाल भये

सासु जो आहे चरूआ चढ़ा हैं

सो सासु खों तुमई बोलाव। हमारे घर.....

जिज्जी जो आहे लडडू बंधा हैं

सो जिज्जी खों तुमई पिया बोलाव । हमारे घर

नंनदी जो आहैं सतिया धरा हैं

सो नंनदी खों तुमई पिया बोलाव । हमारे घर ..

देवरा जो आहैं पनिया भरा हैं

सो देवरा खों तुमई पिया बोलाव । हमारे घर ...

बहुऑ जो आहैं भोजन बना हैं

सो बहुऑ खों तुमई पिया बोलाव । हमारे घर ..

सखियॉं जो आहैं मंगल गवा हैं

सो सखियॉं खों तुमई पिया बोलाव । हमारे घर

उपरोक्त लोकगीत में एक प्रसूता अपने बच्चे के जन्म की खुशियॉं व्यक्त कर रही है। उसका कहना है कि देवी दुर्गा के वरदान के कारण हमें पुत्र रत्न प्राप्त हुआ है। अतः वह अपने पति से परिवार के सभी सदस्यों को बुलाने का आग्रह करती है। इस गीत में पारिवारिक संबंधों के महत्व को उजागर किया गया है। साथ मिलजुल कर कार्य करने की प्रेरणा इस लोकगीत में निहित है। मुख्य रूप से यह गीत पति पत्नी के संबंधों और उनके परिवार से जुड़े अन्य सदस्य के मानवीय संबंधों को उजागर करता है।[4]

बधावा लाई ननदी अरे सांवरिया

कहॉ से आई सोंठ, कहॉ से हरदी

कहॉ से ननदी, अरे सॉवरिया.....

सागर से आई सोंठ, झॉसी से आई हरदी

महोबे से आई ननदी, अरे सॉवरिया.....

कहॉ से आई सोंठ, कहॉ से हरदी

कहॉ से ननदी, अरे सॉवरिया.....

पुड़िया में आई सोंठ, डब्बा में आई हरदी

भ्याने में आई ननदी, अरे सॉवरिया.....

काहे खों आई सोंठ, काहे खों आई हरदी

काहे खों आई ननदी, अरे सॉवरिया.....

जच्चा खों आई सोंठ, बच्चा को हरदी

नेंग खों आ गई ननदी अरे सॉवरिया.....

[3] राष्टीय स्तर पर लोक साहित्य का महत्व, डॉ. ममता तिवारी, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – वर्ष 2015, पृ.क्र.–43

[4] हिन्दी साहित्य का इतिहास , डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपर मार्ट, तैतीसवॉ संस्करण–वर्ष 2007 पृ.क्र.–08

उपरोक्त लोकगीत में हास–परिहास का पुट मिलता है। भाभी और भातीजें को ननद, आशीर्वाद देती है। और ढोल मंजीरो के साथ नृत्य करती है। यह लोकगीत ननद तथा भाभी के मानवीय संबंधों को उजागर करता है।

माता– हॅस–हॅस पूछे, माता कौशल्या, कैसी बनी ससरार मोरे लाल

पुत्र– सासो हमारी गंगा और जमुना ससुर है तीरथ पिराग।

सारी हमारी अधिक पियारी देती है दूध बियारी। मोरे लाल.....

सारे हमारे घुड़ला फिराबे सरहज तपै रसोई– मोरे लाल.....

जैसी मड़वा भीतर लिखी पुतरिया वैसी है बहू तुमार।

माता– चार दिना खों गये ससरारे , आन सराही ससरार । मोरे लाल.....

नौ दस माह गरभ में राखे, तोऊन न कई मातारी। मोरे लाल.....

शीते से बेटा सूॅके में पारों, तोऊ न कई कई मातारी। मोरे लाल.....

पुत्र– हमाये गये से माता बड़ों दुःख पायो, तौ जनम न जाऊॅ ससरार।मोरे लाल.....

माता– हमाये कये खों विलख जिन मानों नित उठे जा ससरार। मोर लाल .....

माता –पॉच टका पानन खों लेलो, नित उठ जाव ससरार । मोरे लाल.....

उपरोक्त लोकगीते में माता का अपने पुत्र के पति प्रेम बताया गया है, जिसमें पुत्र की शादी के बाद प्रथम बार वह अपने ससुराल सबसे मिलने जाता है। बापस आकर जब उसकी मॉ यह पूॅछती है, कि तेरी ससुराल कैसी है, तो पुत्र अपनी मॉ से ससुराल के सभी संबंधों सास–ससुर, साला–साली, और पत्नी बडाई करता है। जिससे उसकी मॉ नाराज हो जाती है। पुत्र अपनी मॉ कों मनाने लगता है।

माता पुत्र सास–ससुर साली–साले के मानवीय संबंधों का वर्णन इसमें मिलता है।

उठो बन्ने सजो बन्ने, आज जे सुभ घड़ी आई है।

बन्ने बाबा सजे, तोरी, ताऊ सजे तोरे।

बन्ना दादी सजी तोरी, ताई सजी तोरी।

बन्ना तुमखों सजाने वारे यार ठाड़े हैं।

उठो बन्ने, सजो बन्ने, आज जे सुभ घड़ी आई है।[5]

उपरोक्त पंक्तियों में विवाह के समय तैयार होने के लिये मनाया जा रहा है। ताकि वर शीघ्र बारात के लिये तैयार हो जाये। दादा–दादी, ताउ–ताई तथा दुल्हें के मित्रों द्वारा मानवीय संबंधों का वर्णन किया जा रहा है।

निष्कर्षतः साहित्य का पोषण मानव व्यवहार द्वारा संभव है। भाषा द्वारा मनुष्य साहित्य की रचना करता है। प्रत्येक देश का साहित्य उसकी भाषा द्वारा फलता–फूलता जा रहा है। बुन्देली लोक साहित्य में वह माता–पिता, भाई–बहन भाभी, ननद, पति पत्नी सास–ससुर आदि सभी संबंधों को उजागर एवं चित्रिण करता है।

अतः देश के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है, कि वह अपनी लोक सांस्कृति, परम्परा, समाज , परिवार एवं अपनी लोक साहित्य की रक्षा करें, ताकि हमारा लोकसाहित्य समृद्ध पुष्पित एवं पल्लवित हो।

[5] नारी के रूप पारस्परिक बुन्देली लोकगीतों में डॉ. ममता तिवारी, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण – वर्ष 2012, पृ.क्र. 88,89,91

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

समग्र व्यक्तित्व के विकास में योग की भूमिका

सलिल समाधिया
शोध –छात्र योग केन्द्र दर्शन विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

सारांश : समग्र व्यक्तित्व का विकास मानव जीवन की प्रधान आवश्यकता है। व्यक्तित्व विकास के अभाव में मनुष्य के जीवन से जुड़े सभी पक्ष बुरी तरह प्रभावित होते हैं। आधुनिक समाजशास्त्री, मनसविद् एवं प्रबंधन विशेषज्ञ व्यक्तित्व को मनुष्य की कार्य क्षमता, संप्रेषण क्षमता, आत्म विश्वास, सृजनशीलता एवं बौद्धिक क्षमताओं जैसे तत्वों से जोड़कर देखते है। यहीं कारण है कि विश्वभर में व्यक्तित्व विकास को जीवन प्रबंधन के कौशल की तरह देखा जाता है तथा इस संबंध में व्यापक स्तर पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं, किन्तु इस व्यापक प्रचार–प्रसार एवं प्रशिक्षण के बावजूद भी समग्र व्यक्तित्व का विकास विश्व भर के समाजशास्त्रियों के लिए एक चुनौती बना हुआ है तथा विघटित एवं असंतुलित व्यक्तित्व वर्तमान युग की एक प्रमुख समस्या है। इस संबंध में जहाँ व्यक्तित्व विकास की अन्य पद्धतियाँ एकांगी सिद्ध हो रही है वहीं योग अपने बहुपक्षीय प्रभाव के कारण व्यक्तित्व निर्माण में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुआ है। अनेक शोध एवं अध्ययन इस बात को इंगित करते है कि योग द्वारा समग्र व्यक्तित्व का विकास संभव है। प्रस्तुत अध्ययन में हम इसी संबंध में योग की उपादेयता एवं योग के बहुपक्षीय प्रभाव का विवेचन करेंगे।

प्रस्तावना : व्यक्तित्व विकास की आधुनिक संकल्पनाएं मूलतः प्रतिस्पर्धात्मक वैश्विक परिदृश्य में व्यक्ति की कार्यात्मक एवं व्यवहारगत मनोवृत्तियों से संबंधित है। व्यक्तित्व का अंग्रेजी पर्याय 'पर्सनालिटि' लैटिन भाषा के 'पर्सोना' शब्द से व्युत्पन्न है। जिसका अर्थ 'नकाब' होता है। व्यक्तित्व संबंधी आधुनिक धारणाएँ इसी 'पर्सोना' के अर्थ में मनुष्य के बाहरी व्यक्तित्व से संबंधित है। वर्तमान युग में हम मनुष्यों के व्यक्तित्व को उसके बाहरी स्वरूप के आधार पर प्रायः सामाजिक व्यक्तित्व, आक्रामण व्यक्तित्व, दबा हुआ व्यक्तित्व, प्रभावशाली व्यक्तित्व, शर्मीला व्यक्तित्व आकर्षक, व्यक्तित्व, लुभावना व्यक्तित्व' आदि रूपों में देखते है। व्यक्तित्व विकास संबंधी प्रशिक्षण संस्थान भी प्रायः
व्यक्तित्व के बाहरी या कृत्रिम स्वरूप पर ही अधिक ध्यान देते है। व्यक्तित्व विकास की उक्त धारणाओं को गहरा धक्का लगा है जब विश्व स्वास्थ्य संगठन ने

अपनी स्वास्थ्य संबंधी परिभाषा के आधार पर घोषित किया कि विश्व की लगभग आधी आबादी मानसिक अस्वास्थ्य एवं व्यक्तित्व असंतुलन का शिकार है।[1] विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 2009 में 13 देशों में संपन्न एक सर्वेक्षण में पाया गया है कि 6 प्रतिशत लोग चिकित्सकीय दृष्टि से मानसिक असंतुलन का शिकारा है।[2] ए.पी.ए. की एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका का प्रत्येक दस में एक व्यक्ति व्यक्तित्व असंतुलन का शिकार है।[3] उक्त आंकड़ों को देखते हुए व्यक्तित्व विकास की दिशा में नवीन दृष्टि से विचार किए जाने की आवश्यकता है। हाल ही में संपन्न अनेक शोध परिणाम इस बात को रेखांकित करते है कि समग्र व्यक्तित्व विकास में योग की एक प्रमुख भूमिका हो सकती है। प्रस्तुत अध्ययन पत्र में हम योग के इन्हीं पक्षों का विश्लेषण करेंगे।

व्यक्तित्व क्या है ? :व्यक्तित्व की प्रचलित अवधारणाएँ मुख्यतः पाश्चात्य मनोविज्ञान पर आधारित है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति की आंतरिक अभिरूचियाँ, अभिवृत्तियाँ एवं योग्यताएँ जो जन्मगत होती है, व्यक्तित्व निर्धारण में बड़ी भूमिका अदा करती है।[4] दूसरी तरफ समाजशास्त्रीय इसे जन्मगत नहीं मानते है, उनके अनुसार समाज, संस्कृति, अनुभव, जलवायु आदि तत्व व्यक्तित्व के निर्धारक है। अनेक प्राचीन विचारकों ने व्यक्तित्व को वर्गीकृत करने का भी प्रयास किया है। जिनमें हिप्पोक्रेटस, कार्ल गुस्ताक जुंग, अर्नेस्ट क्रेचमर के नाम उल्लेखनीय है। आधुनिक विचारकों में कार्ल रोजर, गॉर्डन, एलपोर्ट, जार्ज कैली तथा सिगमंड फ्रायड आदि ने व्यक्तित्व को अपनी–अपनी तरह से परिभाषित किया है। आधुनिक युग में व्यक्तित्व की सर्वाधिक मान्यता प्राप्त परिभाषा इस प्रकार मानी गयी है– ''व्यक्तित्व स्वयं की वह बहुदिशात्मक अभिव्यक्ति है जो आंतरिक एवं बाह्य संवेगों तथा शारीरिक, मनोगत, सामाजिक एवं आध्यात्मिक कारकों द्वारा निर्धारित, परिवर्तित एवं समायोजित होती है।''[5] यह परिभाषा व्यक्तित्व की एकांगी और कृत्रिम छवि संबंधी अवधारणाओं के विपरीत व्यक्तित्व को एक समग्र आधार प्रदान करती है। यही कारण है कि वे समस्त तत्व जो व्यक्तित्व का आधार बनते है, व्यक्तित्व विकास का भी आधार बन जाते है।

व्यक्तित्व विकास का अर्थ :व्यक्तित्व विकास के संबंध में भी व्यक्तित्व की ही तरह अनेक अवधारणाएँ प्रचलित हैं जैसे– 'फ्रायड' के अनुसार व्यक्तित्व विकास व्यक्ति के मनोयौनगत स्तरों द्वारा निर्धारित होता है। 'ऐरिकसन' के अनुसार यह अहं का आठस्तीय विकास है। 'रोजर' आदि विद्ववानों के अनुसार यह बच्चे के निर्माण वर्षों में अभिभावकों के प्रभाव द्वारा निर्धारित होता है। आधुनिक मान्यतानुसार व्यक्तित्व छः स्तंभों पर आधारित होता है– शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक तथा अध्यात्मिक। इन सभी स्तंभों की संतुलित स्थिति ही व्यक्तित्व विकास है।[6] हम प्रायः देखते है कि कोई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से दुरूस्त है लेकिन बौद्धिक क्षमताओं के मामलों में एकदम शून्य है। इसी तरह कोई व्यक्ति बौद्धिक दृष्टि से अत्यंत कुशाग्र है किन्तु भावनात्मक रूप से एकदम शून्य है। इसी तरह कोई व्यक्ति आध्यत्मिक स्तर पर विकसित है किन्तु सामाजिक जीवन के संदर्भ में असफल है। व्यक्तित्व के किसी भी पक्ष की दुर्बलता जीवन में किसी न किसी समस्या के रूप में उभर आती है। जिससे स्वास्थ्य, नौकरी अथवा व्यवसाय, शिक्षा, विवाह, पारिवारिक, संबंध, सामाजिक संबंध आदि क्षेत्रों में बुरा प्रभाव पड़ता है। यह सभी पक्ष अंर्तसंबंधित होने से जीवन की गुणवत्ता प्रभावित होती है। व्यक्तित्व विकास का अर्थ है व्यक्तित्व के सभी पक्षों का सकारात्मक विकास। व्यक्तित्व विकास की वर्तमान सभी पद्धतियाँ एकांगी सिद्ध हो रही है। उदाहरणतः प्रबंधन संस्थानों द्वारा संचालित व्यक्तित्व विकास प्रशिक्षण मुख्यतः उन्हीं बिन्दुओं पर आधारित होता है जिनका संबंध कार्य दक्षता, समय प्रबंधन, सप्रेषणीयता, निर्णयक्षमता, तनाव प्रबंधन, आपदा प्रबंधन, टीमवर्क, सहयोग, समन्वय आदि से होता है। व्यक्तित्व के सभी पक्षों का एक साथ विकास आधुनिक युग की बड़ी समस्या है, क्योंकि इसके अभाव में न सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि वैश्विक स्तर पर भी बेहतर विश्व की कल्पना कर पाना असंभव है। यहीं कारण है कि विश्वभर के समाजशास्त्री, मनोविद् तथा अन्य विचारक अब समग्र व्यक्तित्व विकास की दिशा में सोचने पर मजबूर है। इस संदर्भ में योग एक प्रभावी उपकरण की तरह सामने आया है।

व्यक्तित्व विकास में योग की भूमिका : योग समग्र विकास का दर्शन है। योग का अंतिम लक्ष्य उच्चतम मानवीय चेतना की प्राप्ति है। जिसे ''महर्षि पतंजलि ने ''कैवल्यम स्वरूप प्रतिष्ठा''[7] व गीता में ''स्थितप्रज्ञ'' स्थिति[8] कहा गया है। यही श्री अरविंद का ''ज्ञान पुरूष''[9] तथा उपनिषदों द्वारा प्रणीत ''ब्रह्मचेतना'' की स्थिति है।

आधुनिक विचारकों द्वारा मान्य व्यक्तित्व के छः अंग योग की पंचकोशीय[10] अवधारणा में अंतर्निहित है। गीता में सात्विक पुरूष के लिए बताए गए लक्षण की उक्त 6 अंगों को स्पर्श करते है।[11] योग दर्शन न सिर्फ समग्र व्यक्तित्व विकास का लक्ष्य स्पष्ट करता है बल्कि उसे प्राप्त करने की विधियाँ भी बतलाता है।

इण्डियन जर्नल ऑफ ट्रेडिशनल नॉलेज में प्रकाशित एक शोध पत्र में व्यक्तित्व विकास के छः पक्षों को इस प्रकार बताया गया है।[12]

1. शारीरिक–देहयष्टि, रूप, स्टेमिना, शक्ति तथा सभी शरीर तंत्रों की समावस्था।
2. मानसिक–कल्पनाशक्ति, सृजनशीलता, इच्छाशक्ति, सम्यकव्यवहार, संतुष्टि तथा अहं।
3. बौद्धिक –स्मरण शक्ति, एकाग्रता, तर्क, विश्लेषण, निर्णयक्षमता तथा ज्ञान की इच्छा।
4. भावनात्मक–संवेदनशीलता, अंतः प्रेरणाः प्रेम,सेवा, करूणा, सहानुभूति जैसे साकारात्मक मनोभावों की उपस्थिति तथा सृजन एवं कला में रूचि।
5. सामाजिक–सामाज के प्रति जागरूकता, सौहाद्रपूर्ण दृष्टिकोण, भ्रातृत्व भाव।
6. आध्यत्मिक–मन के अंतःनिरीक्षण की क्षमता, समर्पण, उच्च चेतना में अवस्थिति, सभी के हित की भावना।

उपरोक्त छः पक्षों के एकसाथ विकास में योग की पंचकोशीय अवधारणा अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो जाती है। अन्यमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनंदमय कोश क्रमश व्यक्ति के शरीर, प्राण, मन, बुद्धि एवं आत्मन (चेतना) पक्षों को निरूपित करते है। योग व्यक्तित्व को बहुआयामी मानता है। योग के अनुसार मनुष्य को मात्र बौद्धिक या सामाजिक प्राणी परिभाषित करना एकपक्षीय है। यद्यपि योग आत्म स्वरूप या परमतत्व को महत्व देता है, किन्तु इसमें बौद्धिक, सामाजिक, मानसिकता, प्राणिक ऊर्जा एवं शारीरिक संरचना का भी उचित स्थान है।

योग की अनेक शाखाएँ प्रचलित हैं जैसे– हठ योग, ज्ञान, भक्ति, राज, मंत्र योग आदि किन्तु सभी का अंतिम लक्ष्य चेतना का पूर्ण विकास है। उदाहरणतः हठ के प्रसिद्ध ग्रंथ ''हठयोग प्रदिपिका'' एवं ''घेरण्डसंहिता'' में योग के सभी साधनों का अभ्यास राज योग की सिद्धि हेतु बताया गया है।[13] योग की यह सभी पद्धतियाँ पृथक–पृथक रूप से व्यक्तित्व के एक या अधिक आयामों से संबंधित है। इसका मुख्य कारण भारतीय दर्शन में मानव संरचना एवं स्वभाव के साथ व्यक्तित्व भिन्नता के तथ्य की स्वीकृति है। गीता में सात्विक, राजसी व तामसी तीन प्रकार के व्यक्तित्व बताए गए है।[14]

आधुनिक संदर्भ में व्यक्तित्व विकास हेतु सर्वश्रेष्ठ विधि महर्षि पतंजलि द्वारा प्रणीत अष्टांग योग है, जिसमें लगभग सभी पद्धतियों का अदभुत समन्वय मिलता है। अष्टांग योग द्वारा समग्र व्यक्तित्व विकास पर सम्पन्न अनेक शोध नतीजे इस क्षेत्र में योग की प्रभावी भूमिका दर्शाते है। विवेकानंद योग अनुसंधान संस्थान द्वारा संपन्न एक प्रमाणिक शोध निष्कर्ष के अनुसार ''योग करने से शारीरिक शक्ति, आत्मविश्वास, कौशल, आत्मनिर्भरता, मानसिक स्वास्थ्य, एकाग्रता, स्मृति एवं बौद्धिक क्षमताओं में बढ़ोतरी पायी गयी तथा उन्माद प्रवृत्ति, बेचैनी, अनिद्रा में कमी पायी गयी। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि योगाभ्यासों का समग्र व्यक्तित्व विकास के शारीरिक,

मानसिक, भावात्मक बौद्धिक पक्षों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।[15]

भारत सरकार के कार्मिक प्रशिक्षण संस्थान द्वारा व्यक्तित्व विकास हेतु तैयार किए गए प्रशिक्षण माप दण्ड में योग को अत्यंत प्रभावी मानते हुए सम्मिलित किया गया है। तत्संबंध में संपन्न शोध निष्कर्षो के अनुसार– योग की निर्णय क्षमता, प्रदर्शन, व्यवहार, मनोगत, मनोकायिक, नेतृत्व, संप्रेषणीयता आपसी व्यवहार आदि पक्षो में अत्याधिक प्रभावशीलता पायी गयी।[16]

स्वामी कुवलयानंद के अनुसार ''योग द्वारा मनोकायिक पुनर्स्थापन, शरीर तंत्र का पुनर्वसन तथा विश्रांति कारक क्रियाओं द्वारा समग्र व्यक्तित्व विकास संभव है।[17] इस प्रक्रिया में अष्टांग योग के आठों अंग समाविष्ठ होते है यमनियम–नैतिक गुणों के विकास में, चित्त प्रसाधन–प्रसंनता एवं सकारात्मक दृष्टिकोण में, आसन–शरीर तंत्र के पुनर्वसन में, (श्वसन, रक्त संचरण, पाचन, अंतस्त्रावी, तंत्रिका, उत्सर्जन, पेशीय, प्रजनन संस्थान) जिससे चित्त विक्षेप, आलस्य, अविरति, व्याधि, भ्रांतदर्शन आदि तथा सहविक्षेप, दुखदौर्मनस्य (अवसाद) अंगमेजयत्व आदि दूर होते है। प्राणायाम से मानसिक स्थिरता, आत्म नियंत्रण, संकल्प शक्ति विकास, एवं भावनात्मक संतुलन होता है। प्रत्याहार से आत्म संयम, इन्द्रियनिग्रह, मनोवृत्ति परिवर्तन होता है। धारणा, ध्यान, समाधि से एकाग्रता बौद्धिक विकास गूढ़ज्ञान को आत्मसात करने की क्षमता विकसित होती है। इन सब की अंतिम परिणिती चित्त निग्रह है क्योंकि योग के अनुसार चित्त वृत्तियाँ ही व्यक्तित्व असंतुलन का आधारभूत कारण हैं।

चर्चा

उक्त योगांगों की उपादेयता के कुछ शोध संमत आधार निम्नानुसार हैः–

- चित्त प्रसाधन उपाय, सकारात्मक भाव दशा बनाते है। जिससे पैरासिम्पेथेटिक तंत्र सक्रिय होता है। जो विश्रांति की अवस्था से संबधित है।[18]
- चार माह तक योगाभ्यास एवं अध्ययन करने से प्रशिक्षाणार्थियों के व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन पाया गया।[19]
- ध्यान से मस्तिष्क की संरचना के उस स्थान पर परिवर्तन पाया गया जो भावनात्मक संतुलन से संबंधित है।[20]
- आसन, विश्रांतिकारक विधियाँ एवं प्राणायाम, स्वायत्त शासी तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं जिसका संबंध भावनात्मक व्यवहार से है।[21]
- योग व्यक्ति को भावनाओं के प्रबंधन एवं अतिरेक पर नियंत्रण सिखाता है।[22]
- अजपा–जप, एवं धारणा मानसिक शांति की अवस्था में ले जाते हैं।[23]

उक्त परिप्रेक्ष्य में हम पाते है कि व्यक्तित्व विकास हेतु जहाँ अन्य सभी उपाय एकांगी सिद्ध हो रहे है वहीं योग व्यक्तित्व के समस्त पक्षों पर प्रभाव डालता है। वैज्ञानिक आधार, शोध निष्कर्ष व अध्ययन इस बात को प्रमाणित करते है कि योग द्वारा समग्र व्यक्तित्व का विकास संभव है।

निष्कर्ष :योग विधियों विशेषकर अष्टांग योग का प्रयोग व्यक्तित्व निर्माण के क्षेत्र में किया जाना समीचीन होगा साथ ही समग्र व्यक्तित्व के विकास में योग की प्रभावशीलता को देखते हुए योग की विभिन्न शाखाओं के मध्य समन्वयकारी दृष्टिकोण अपनाया जाना आवश्यक है। जिससे व्यक्तित्व विकास हेतु योग को और भी प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

संदर्भ सूची

1 W.H.O.,On World Mental Health Day (10 Oct. 2012).

2. W.H.O., Survey Report (2009).
3. DSM, (Diagnostic & Statistical manual of Mental Disorders, Published by- American Psychiatric Association (2008).
4. "Psychology" Marten Prince.
5. "Personality Theroes" Larry A Hjelle & Daniel J.
6. Barsman, L., "Mind Mood and emotion", MJF Books, New York (U.S.A.1998).
7. Yogasutra, 4/34.
8. Geeta 2/54-72.
9. The Life Divine, Aurobindo.
10. Tallariya Upnishad, 3/21-37.
11. Geeta, 6/1-3.
12. I.J.O.T.N., Vol. 5 (4) Oct. 2006, PP- 445-449.
13. Hath- Pradipika, 2/76.
14. Geeta, 16-17.
15. Vivekanand Yoga Anusandhan Sansthan, March 15,2012, Annual Report.
16. Training Module on personality development by- Department of Personnel & Training. Government of India (28 May 2003).
17. "Yoga Therapy", Swamy Kuvlayanand and Vinekar, 1971.
18. "Freedom from Stress", Nurenburg, 2003. PP-16-21.
19. "Impact of Ashram life on emotional states". Pandey, Sushant & Ashwini Kumar, 2004.
20. "Yoga for emotional regulation", Souvenir, MDNIY, 2011.
21. "Yoga the Science of Holistic living", Gharote, M.L., (2005) PP-131-37.
22. H.R. Nagendra, Souvenir, MDNIY, 2009.
23. "Emotional Management in Yoga" Satyanand Sarsawati, May 2011.

‘

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

''मृण शिल्पकला का विकास '' (कुम्हार जाति के संदर्भ में)

श्रीमती आरती झारिया, पी–एच.डी. (अध्ययनरत्)
समाजशास्त्र एवं समाजकार्य अनुसंधान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

शोध सार : आज मनुष्य सभ्यता की जिस चोटी पर खड़ा है, उसका कारण है मनुष्य का सदैव से परिवर्तनशील रहना, परिवर्तन ही गतिशीलता लाती है । चूंकि समाज और समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति जो किसी जाति, समुदाय या सम्प्रदाय के हों, ये सभी प्रकृति के अंग हैं । किसी भी ऐसे समाज की कल्पना नहीं की जा सकती जो कि पूर्णतया स्थिर हो । हाँ यह सत्य है कि प्रत्येक समाज में परिवर्तन की गति एक समान नहीं होती । कोई समाज द्रुतगति से गतिशील है, तो कोई मंद गति से । प्रस्तुत शोध–पत्र में मृण शिल्पकार (कुम्हार जाति) की सामाजिक गतिशीलता के विभिन्न आयामों को संदर्भित किया गया है, क्योंकि.....

ऐतिहासिक काल से समाज में कला और शिल्प मानव सामाजिक जीवन का हिस्सा रहे हैं । शिल्पकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन रहा है, जो मानव सभ्यता के विकासक्रम से भी जुड़ा रहा । शिल्पकार ने प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक बहुआयामी भूमिका का निर्वाह किया । इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं और शिल्पकला का वर्णन प्राचीनकाल से अनवरत् होता आया, जो आज वर्तमान में परम्परागत व्यवसाय के रूप में विद्यमान है ।

वर्तमान के बदलते परिदृश्य में आधुनिकीकरण के युग में कुम्हार जाति की शिक्षा तथा परम्परागत व्यवसाय के क्षेत्र में क्या परिवर्तन हो रहे हैं एवं उनकी सामाजिक जीवन में क्या बदलाव आ रहे हैं । प्रस्तुत शोध–पत्र मुख्य बिन्दुओं पर प्रकाश डालता है ।

प्रस्तावना : भारत अनेक प्रकार की विभिन्नताओं वाली संस्कृतियों का पारम्परिक देश है। हमारी संस्कृति अस्मिता, बहुविधा होते हुए भी एकात्मक है, इसके विशाल भू–भाग पर आंचलिक स्तर की परम्परागत बोली, भाषा, आचार–व्यवहार, खानपान, पहनावा और रीति रिवाज वाली भिन्न–भिन्न किन्तु एकीकृत प्राचीन जीवन संस्कृति देखने को मिलती है । कला का संबंध संस्कृति से है । स्थानभेद के अनुसार कला में पर्याप्त भिन्नता है । परम्परागत समाज में कला और शिल्प सामाजिक जीवन का हिस्सा हैं । शिल्पकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है, जो मानव सभ्यता के विकासक्रम से जुड़ा हुआ है । जहाँ पर अपने कला–कौशल में दक्ष परम्परागत शिल्पकारों के कार्यों का उल्लेख मिलता है । शिल्पकला की लम्बी और प्राचीन परम्परा होने का आशय है कि भारतीय समाज में हमेशा से ही रचनात्मक और कल्पनाशील कलाकार हुए। वस्तुतः शिल्पकला धर्म और संस्कृति की मूर्त अभिव्यक्ति रही है, जिसमें व्यक्ति की सोच नहीं वरन् समाज का सामूहिक अनुभव और चिंतन को व्यक्त करती है । शिल्पकार ने प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक भारत के कालक्रम में बहुआयामी भूमिका का निर्वाह किया है ।

शिल्प और शिल्पकार :शिल्प शब्द का शाब्दिक अर्थ संस्कृत कोश में शिल्प (शील+प) को मूर्तिकला, कारीगर, हुनर कहा गया है । दूसरे संस्कृत शब्दकोश में शिल्पम् शब्द का अर्थ (शिल–पक्) कारीगरी, फ्रॉमक्राफ्ट आदि दिया

गया है । अंग्रेजी शब्द तकनीकी का हिन्दी अनुवाद 'शिल्प' दिया गया है । हिन्दी कोशगत व्याख्या इस प्रकार है – किसी चीज को बनाने, रचने का ढंग अथवा तरीका है । किसी वस्तु की रचने की जो–जो विधियाँ अथवा प्रतिक्रिया है, उनके समुच्च को शिल्पकला के नाम से पुकारा जाता है। सरल भाषा में कहा जाए तो शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है ।

वैसे शिल्प शब्द का प्रयोग हस्तकला के क्षेत्र में सदियों से होता आया है। इस क्षेत्र में पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि से वस्तुएँ, बर्तन, खिलौने आदि बनाए जाते रहे हैं। वस्तुएँ जिस कौशल से बनाई जाती रही हैं, उसी से शिल्प शब्द का संबंध रहा है। इस कला का निर्वाहन करने वाले को शिल्पकार की श्रेणी में रखा गया है । जिसमें शिल्पकारों के स्वरूपों का वर्णन मिलता है, जैसे लोहकार, स्वर्णकार, ताम्रकार, कुम्हार आदि ।

भारतीय संस्कृति में वर्णित पंच महाभूतों में से एक है ''मृण'' या माटी, 'कुम्हार' मृणशिल्प के वे शिल्पकार हैं जो माटी से दैनिक जीवन की जरूरी वस्तुओं की रचना करके लोक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आए हैं । कुम्हारी शिल्पकला मानव जीवन की खुशियों के साथ सीधा सरोकार रखती हैं । यद्यपि शिल्पकला और शिल्पकार समाज में युग–युगान्तर से विद्यमान हैं । यदि इतिहास के पन्ने उलटें तो सिंधु घाटी की सभ्यता से लेकर मुगलकाल तक मिट्टी कला का भरपूर उल्लेख मिलता है। भारत में प्रागैतिहासिक कालीन मनुष्य द्वारा बनाई गई कलात्मक वस्तुओं के उदाहरण ताम्रयुग या नव पाषाण युग से उपलब्ध होने लगते हैं, फिर चाहे अनाज सुरक्षित रखने की कोठी हो या सजावटी बर्तन, देव मूर्तियां, पशु आदि ।

नव पाषाण युग : संस्कृति विकास प्रक्रिया में नवपाषाण युग सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा । इस युग में मानव ने पशुपालन और खेती करने की कला सीख ली अतः उत्पादित अन्न (अनाज) से अपना जीवन व्यतीत करने लगा और भोजन बनाने के लिए मिट्टी के बर्तन हाथ से बनाना प्रारम्भ कर दिया । पाषाणकाल से ही मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग होने लगा था, इस दृष्टि से कुम्हार जाति का अस्तित्व प्राचीन माना जा सकता है। इस काल में मानव द्वारा घर की दीवारों को मिट्टी व ईंटों से निर्मित करने लगे, इसी काल से चाक पर निर्मित मिट्टी के विभिन्न प्रकार के बर्तन, घड़ा, हांडी, सकोरा आदि बनाये जाते रहे । नव पाषाण युग में धातुओं के औजार बनाने के साथ–साथ चाक के द्वारा बर्तन निर्मित करना भी प्रारम्भ हो चुका था ।

उत्तरवैदिक काल : इस काल में विविध अनेक शिल्प कलाओं ने प्रगति की (श्रौतसूत्रों एवं बौद्ध जातकों में) अठारह प्रकार के शिल्पों का उल्लेख मिलता है । इस काल में राजा कुम्हारों से यज्ञ में उपयोगार्थ विविध बर्तन बनवाते रहे। यह युग व्यावसायिक विकास का काल रहा। जातक ग्रंथों में अठारह प्रकारों के व्यावसायिकों का उल्लेख मिलता है, जिसमें जुलाहे, बढ़ई, लुहार, धनुषकार, रजक, चर्मकार, कुम्हार, तेली, दन्तकार, रंगरेज, जौहरी, स्वर्णकार, चित्रकार, खनक, कम्बलकार, पीतल का काम करने वाले, गंधिक एवं रज्जुकार । इस समय श्रम विभाजन के सिद्धान्त का विकास हो चुका था । व्यावसायिक पैतृक आधार पर उद्योग–धंधों का अवलम्बन करने लगे । प्रत्येक शिल्प के अनुयायी संगठनबद्ध रहने लगे थे ।

कुम्हार जाति : कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाने वाली एक जाति है यह जाति भारत के सभी प्रान्तों में हिन्दु व मुस्लिम धर्म सम्प्रदाय में पाई जाती है । कुम्हार शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के

कुम्भ शब्द से हुई है, जिसका अभिप्राय पानी रखने का घड़ा या बर्तन से है। कुम्हार ने निराकार मिट्टी को अपने कलात्मक हाथों और साधारण से चाक की सहायता से विभिन्न रूपों में ढाला है । पौराणिक संदर्भों 'ब्रम्हवैर्वत पुराण' के अनुसार कुम्भकार का जन्म वैश्य माता और ब्राम्हण पिता के द्वारा हुआ है । आख्यान कर्मणीकोश, नैषधीय चरित और प्रबंध चिन्तामणी आदि ग्रंथों में भी विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तनों के निर्माण के विशेषज्ञ निर्माताओं का उल्लेख मिलता है। पुरातात्विक खोजों से उत्तरी भारत में छोटे–छोटे प्यालों या सकोरा से लेकर बड़े–बड़ें संग्रह जारों तथा विभिन्न प्रकार के दैनिक उपयोग के बर्तन प्राप्त हुए । जहाँ तक मृत भाण्ड निर्माताओं का प्रश्न है कुछ विद्वानों के अनुसार चाक पर बर्तन निर्माण की कला आर्यतर उत्पत्ति की ही थी और इसीलिए वैदिक साहित्य में कुम्हार के लिए 'कुलाल' शब्द प्रचलित रहा, आगे चलकर कुम्भकार शब्द भी अस्तित्व में आया ।

कुम्हार जाति के संदर्भ में एक दंतकथा प्रचलित है, प्राचीन युग में भगवान शिव ने हेमवंत की कन्या से विवाह की इच्छा व्यक्त की । तब सभी देवता व असुर कैलाश पर्वत पर एकत्रित हुए । सभी के समक्ष यह प्रश्न उत्पन्न हुआ, कि विवाह हेतु पात्रों का निर्माण कौन करेगा । देवताओं ने 'कुलालक' नामक एक ब्राम्हण को इस कार्य हेतु चुना और बर्तन बनाने का आदेश दिया । कुलालक ब्राम्हण ने उस देवसभा में याचना की, यदि उसे सामग्री उपलब्ध करा दी जाऐगी तो वह बर्तन का निर्माण कर देगा, तदुपरान्त (विष्णु भगवान) ने अपना सुदर्शन चक्र, चाक की तरह उपयोग करने के लिए दिया। सुदर्शन चक्र की धुरी के रूप में मंदार पर्वत को प्रयुक्त किया तथा पानी के लिए मेघा का प्रयोग कर कुलालक ने मिट्टी के बर्तन बनाये तथा शिव को विवाह हेतु प्रदान किये गये । तब से कुलालक के वंशज कुंभकार के रूप में जाने जाते हैं ।

वर्तमान परिदृश्य : वर्तमान परिपेक्ष्य में कुम्हार जाति समुदाय में परिवर्तन देखने को मिल रहा है। इनकी शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक प्रास्थिति में सुधार हो रहे हैं । इन जाति समुदाय के लोग उच्च शिक्षा प्राप्त करके उच्च सामाजिक पद प्राप्त करने हेतु जातिगत व्यवसाय से उन्मुख हो अन्य कार्यों व प्रतिस्पर्धात्मक प्रतियोगिताएँ उत्तीर्ण करके सरकारी नौकरी पाने तथा औद्योगिक क्षेत्र में कार्य करने की ओर अग्रसर हुए हैं। यह वैचारकीय स्थिति इन जाति समुदाय के परिवर्तित मानवीय मनोवृत्ति का प्रमाण है ।

कुम्हार जाति समुदाय व समाज के लोगों का विकास और कल्याण, सामाजिक उत्थान के उद्देश्य से शासन योजनाएँ एवं कार्यक्रम ''माटी कला बोर्ड'' के माध्यम से संचालित कर रहा है । सरकार द्वारा 2008 में 'माटी कला बोर्ड' का गठन किया गया जिसमें मिट्टी से संबंधित उद्योगों से जुड़े शिल्पियों को आधुनिक तकनीकी का प्रशिक्षण प्रदान कराकर उनके उन्नत उत्पादों का निर्माण कर सके जिससे इस समाज का आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान हो ।

उद्देश्य, निदर्शन व क्षेत्र : प्रस्तुत शोध–पत्र में सैद्धांतिक दृष्टि से यह ज्ञात किया गया कि वर्तमान में शिल्पकार कुम्हार जाति की सामाजिक स्थिति में क्या परिवर्तन आया तथा इनके परम्परागत व्यवसाय में आधुनिकीकरण का क्या प्रभाव पड़ा।

1.कुम्हार जाति में शैक्षणिक गतिशीलता का अध्ययन ।

2.व्यावसायिक गतिशीलता का अध्ययन कर इसमें हो रहे परिवर्तन का वर्णन ।

शोध–पत्र में ग्रामीण क्षेत्र के 335 कुम्हार जाति के सूचनादाताओं को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर समग्र मानते हुए तथ्यों का संकलन संरचित साक्षात्कार अनुसूची के द्वारा किया गया है ।

शोध–अध्ययन कार्य मध्यप्रदेश राज्य के जिला जबलपुर की तहसील मझौली के ग्रामीण क्षेत्रों में किया गया है ।

विश्लेषण :

1. चयनित सूचनादाताओं की आयु सापेक्षित रूप से 50 वर्ष से कम है ।
2. चयनित सूचनादाताओं के परिवार परम्परागत व्यवसाय से जुड़े हैं ।
3. अधिकांश सूचनादाताओं के पिता निरक्षर हैं ।
4. अधिकांश सूचनादाताओं की संतानें अध्ययनरत हैं ।

निष्कर्ष : शोध कार्य शिल्पियों (कुम्हार जाति) में शिक्षा एवं व्यवसाय से संबंधित अध्ययन है । विषय से संबंधित संकलित तथ्यों के आधार पर निष्कर्षतः यह तथ्य उद्घाटित होते हैं कि इस जाति समुदाय के जातिगत व्यवसाय में परिवर्तन आ रहे हैं। ये अपने पीढ़ीगत व्यवसाय से असंतुष्ट होकर व्यवसाय को बदलने के संदर्भ में सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे हैं, जो उनकी प्रास्थिति परिवर्तन की अभिव्यक्ति का संकेतक है । अन्य रोजगारों के क्षेत्र में इनका रूझान बढ़ रहा है । शिक्षा के स्तर में भी पूर्व पीढ़ी की अपेक्षा वर्तमान पीढ़ी में परिवर्तन आ रहे हैं, जिसके कारण समाज में शिक्षा की स्थिति में वृद्धि हो रही है अतः शिक्षा हमेशा समाज के जीवन का सम्पूर्ण विकास करती है, जिस समाज की शिक्षा प्रणाली जितनी प्रगतिशील होती है वह समाज उतना ही समृद्धशाली होता है ।

प्राप्त तथ्यों के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए बच्चों की शिक्षा के संबंध में इनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. कासलीवाल मीनाक्षी 'भारती', 'भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी (2015), चतुर्थ संस्करण पृ.क्र. 7, 22, 30
2. चौबे नीता, 'पूर्व मध्यकालीन लोक जीवन एवं संस्कृति' नोर्दन बुक सेंटर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, (2009) पृ.क्र. 76, 82
3. तिवारी डॉ. अवधेश, 'ग्रामीण विकास कार्यक्रम एवं सामाजिक परिवर्तन', विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली (2016), पृ.सं. 23
4. प्रसाद डॉ. लोकेश के., 'अनुसंधान पद्धतिशास्त्र' कावेरी बुक पब्लिकेशन, नई दिल्ली (2008) प्रथम संस्करण, पृ. क्र. 123
5. महाजन डॉ. संजीव, 'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन' अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली (2008) प्रथम संस्करण, पृ.क्र. 178
6. शर्मा स्व. चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद तथा पंडित तारिणी, संस्कृत शब्दार्थ, कौस्तुभ संपादक, पृ.क्र. 115
7. सिन्हा नीता, 'फैजाबाद सांस्कृतिक गजेटियर' पृ.क्र. 100

शोध पत्र :

1. गुप्ता डॉ. हृदेश, 'भारतीय शिल्पकारों का सामाजिक व आर्थिक उत्थान, अध्ययन, विश्लेषण व नीतिगत सुझाव एक शोध, शोध संचयन', Bilingual Journal of Humanities & Social Science, ISSN 2249-9180 Vol.-I (2010) Page No. 1-2.
2. जैन डॉ. लोकेश, 'माटीकाम के कारीगर कुम्हार' Journal of Social Science, ISSN:2279-0241 (June-July 2015)

www.kcgjournal.org>issue17>lokesh.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

मध्यप्रदेश राज्य में कृषि उपज भण्डारण की वर्तमान स्थिति

अनुराधा कौरव, शोधार्थी

एम.कॉम पी.जी. कॉलेज गाडरवारा रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, (म.प्र.)

प्रस्तावना : मध्यप्रदेश एक कृषि से संपन्न राज्य है जो कि प्राचीन समय से अपनी साख कृषि क्षेत्र में बनाए हुए है। सरकार द्वारा किए जा रहे है अथक प्रयास एंव किसानों के पक्ष में हमेशा सकारात्मक दृष्टि के रूप में जो भी पहल की जा रही है चाहे वह आर्थिक हो या प्राकृतिक सभी क्षेत्र में हमेशा अग्रसर रहे है। उसी के परिणाम स्वरूप मध्यप्रदेश राज्य कृषि के क्षेत्र में अग्रणी है। और पिछले अनेक श्रेणी में ही समस्त राज्यों के बीच अपना स्थान बनाए हुए है।

मध्यप्रदेश राज्य प्रायः सभी प्रकार की फसलों का उत्पादन करता है। उपज चाहे कितनी हो लेकिन कृशक उसे बड़े ही संभालकर रखना चाहता है। जिसके लिए उसे भण्डारगृह की जरूरत पड़ती है। प्राचीन समय में किसान के घर बहुत है। बड़े–बड़े होते थे, जिनमें वह ढेर लगाकर रख लेता था, लेकिन अब सभी जगह उनका रूप जरूरत के हिसाब से तैयार मकानों ले लिया है जिनमें की इतना माल और स्टोर करने के लिए ज्यादा जगह नहीं होती है। और यही समस्या व्यापारियों के साथ है।

इसलिए सर्वप्रथम सरकारी क्षेत्र में भण्डारगृह का निर्माण किया गया। जो कि मण्डी के समीप निर्मित किए गए। फिर धीरे–धीरे सुविधानुसार स्थानों पर निर्मित किए गए इसी के साथ धीरे–धीरे सरकार की पहल एवं आर्थिक सहायता के बाद निजी क्षेत्र में भण्डारगृह का निर्माण शुरू हुआ और वर्तमान स्थिति में शासकीय की तुलना में निजी भण्डारगृहों की संख्या एवं उपयोगिता अधिक है।

प्राचीन समय में किसान समस्त अनाज को व्यवस्थित रूप से भण्डारित करता था आज के इस आधुनिक युग में भण्डारण की प्रक्रिया को अनेक तरीके से अपनाया जा रहा है।

मध्यप्रदेश में भण्डारण व्यवस्था को वर्तमान स्थिति

मध्यप्रदेश एक कृषि संपन्न राज्य है कि प्राचीन समय से कृशि कार्य से जुड़ा है और आज की सुचारू रूप से कार्यरत है, समय के साथ–साथ कृषि कार्य में अनेक परिवर्तन भी आ रहे है। परिवर्तन काल की प्रक्रिया पहले भी थी लेकिन अति परिवर्तन एवं अनिश्चित आपातकाल परिवर्तन दिनों–दिन बढ़ते जा रहे है। जो कि मौसम के अनुसार अनुकूल ही होते है। और प्रतिकूल भी लेकिन अभी वर्तमान स्थिति ज्यादातर प्रतिकूल ही सामने आ रही है, जिसका परिणाम कृषकों को बड़ी ही मुसीबत के साथ सामना करना पड़ रहा है।

पहले के समय में किसान बड़ी ही कम मात्रा (धन या अनाज) में अपना काम चला लेता था लेकिन किसान की उपयोगिता बढ़ती जा रही है और कम अनाज से वह अपना काम नहीं चला सक पा रहा है। उसे अनाज को स्टोर करने की बड़ी ही सख्त जरूरत रहती हैं जिससे की वह अपना गुजारा कर सकें और किसी भी समस्या का सामना ना करना पड़े।

किसान के खर्चे पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ते जा रहे है जैसे भाादी ब्याह रहन–सहन, खान–पान इत्यादि की आव यकताएं किसान की सीमा पर हैं जिनको पूरा करने के लिए उसे भविश्य के लिए अनाज को भण्डारित करके रखना पड़ता है जिससे कि

वह समय आने पर उससे अपना गुजारा कर सकें।

मध्यप्रदेश में भण्डारण की वर्तमान समस्याऐं –

1. मध्यप्रदेश में भण्डारण की व्यवस्था से सभी किसान सही तरीके से परिचिति नहीं है।
2. मध्यप्रदेश सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों का सही तरीके से पता नहीं है।
3. किसानों एवं व्यापारियों को गुड़ को स्टोर करने के लिए व्यवस्थित वेयरहाउस की कमी है।

मध्यप्रदेश में भाासकीय एवं निजी क्षेत्र के भण्डारगृहों की स्थिति

मध्यप्रदेश राज्य में भण्डारगृह की स्थिति अच्छी है, दोनों ही प्रकार के भण्डारगृह बड़े ही सुचारू रूप से चल रहे हैं। भण्डार में गृहों में शासकीय की अपेक्षा निजी क्षेत्र में कार्यरत भण्डारगृहों की संख्या अधिक है। जो कि वेयरहाउसिंग कार्पोरेशन लिमिटेड की सहायता से अपना कार्य सुचारू रूप समस्त प्रकार की फसलों का भण्डारण किया जाता है। मध्यप्रदेश की फसलों की संचालन किया जाता है। भण्डारण की उपयोगिता एवं उपादेयता का भण्डारण किया जाता है। भण्डारण की उपयोगिता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। भण्डारण की व्यवस्था का उत्पादन एवं संचालन से लेकर समस्त प्रकार की समस्याओं का संचालन किया जाता है।

मध्यप्रदेश एक कृषि संपन्न राज्य है जो कि समस्त प्रकार की फसलों का उत्पादन करता है। मध्यप्रदेश राज्य में समस्त प्रकार की उपयोगिता एवं उपादेयता को ध्यान में रखकर ही भण्डारण गृहों का निर्माण किया जाता है। कृषि उपज भण्डारण में शासकीय एवं निजी क्षेत्रो का संचालन इस तरह से करना ताकि सभी किसान वर्ग इसका आसानी से लाभ ले सकें। निम्न वर्ग के किसान इसका सही रूप से लाभ ले सकें।

शासकीय एवं निजी क्षेत्र के भण्डार गृहों की उपयोगिता एवं उपादेयता एक ही समान हैं लेकिन अंतर इतना है कि शासकीय क्षेत्र के भण्डारगृहों का उपयोग समस्त किसान या व्यापारी वर्ग कम अर्हताओं को पूर्ण कर लेते है। लेकिन निजी क्षेत्र में भण्डारगृह का उपयोग करता है उसे विभिन्न प्रक्रियाओं को पूर्णकर भण्डारण करना पड़ता है।

मध्यप्रदेश राज्य में कृषि उपज भण्डारण का काफी प्राचीन चलन हैं पहले के समय में भी भण्डारण प्राचीन तरीके से किया जाता हैं लेकिन समय परिवर्तन के साथ कुछ आधुनिक तकनीकों के माध्यम से भण्डारण किया जाने लगा है। मध्यप्रदेश में वेयरहाउसिंग कार्पोरेशन की स्थापना सन् 1958 में हुई थी। जिसमें कृषि उपज भण्डारण में सरकारी, सहयोग के माध्यम से भण्डारगृह का निर्माण किया जाता हैं। प्राचीन समय में भण्डारगृह का निर्माण किया जाता हैं। प्राचीन समय में भण्डारगृह की संख्या कम थी। सामान्यतः भण्डारगृह कृषि उपज मण्डी के समीप पाये जाते है जो कि अब एक वि ाल रूप ले चुके है। और जरूरत के अनुसार व्यवस्थित स्थानों पर निर्मित हो रहे है, क्योंकि पहले की अपेक्षा भण्डारण की आव यकता अत्याधिक है। कुछ अनाज इस प्रकार के भी है। जिन्हें सरकार अपने निश्चित मूल्य पर ले रही हैं जिससे सरकार का अनाज व्यवस्थित रूप से भण्डारित करने के लिए भण्डारण की आवश्यकता पड़ती है, ताकि जरूरत के समय उसका उपयोग कर सकें।

अर्थात् भण्डारण वह प्रक्रिया हैं जिसमें किसान व्यापारी या कोई अन्य व्यक्ति जो कि कृषि उपज से संबंधित कार्य से जुड़ा है यदि नहीं थी जुड़ा है तो वह भण्डारण का उपयोग करना चाहता है तो अपनी उपज को व्यवस्थित

रूप से भण्डारित कर सकता है। वर्तमान समय में भण्डारण प्रक्रिया की डोर वेयर हाउस कार्पोरेशन के हाथ में है यही संस्था संपूर्ण मध्यप्रदेश की बागडोर अपने हाथ में लिए हुए हैं और सरकार के सहयोग एवं अपनी बुद्धि मतता से कृशि उपज भण्डारण से जुड़े कार्य को बड़े ही सुचारू रूप से चला रही है।

वर्तमान समय में भण्डारण का कार्य कुछ–कुछ जिलों में कुछ धीमी गति पर हैं कृषि उपज के साथ–साथ उससे जुड़े रा मटेरियल का भी भण्डारण किया जाता है। अधिकतर निजी क्षेत्र की भण्डारण की व्यवस्था को या पूर्णतः हैं सरकार के हाथों में सौंप दिया जाता है जिसके बदले में सरकार उनको किराया देती है।

उद्देश्य –

- भण्डारण की प्रक्रिया सुचारू रूप से चलने के लिए व्यवस्थित शेड्यूल होना चाहिए।
- शासकीय नीतियाँ समस्त छोटी–छोटी बातों एवं तीसरे पक्ष द्वारा ली गई सलाह के बाद नि चत करना।

शोध अभियोग्यता एवं डाटा एकत्रीकरण – इस लघु शोध कार्य में मैंने अपना शोध कार्य प्राथमिक आंकड़े एवं कुछ द्वितीयक आंकड़े लेकर पूर्ण किया है। प्राथमिक आंकड़ों के अंतर्गत मैंने स्वयं भण्डारण मालिक एवं स्टेट एवं सेंट्रल वेयरहाउस कार्पोरेशन बैंक एवं नाबार्ड जाकर संपूर्ण संरचना को समझा एवं उनसे बात कर भण्डारण के विषय में गंभीरता के साथ जाना समझा और उसके पश्चात् अध्ययन कर निश्कर्ष निकाला जिन बातों को मैंने अनुभव किया एवं जिनके बारे में जानकारी हासिल की वह निम्न प्रकार है :

भण्डार का इतिहास :–

भण्डारण बहुत ही व्यापक प्रक्रिया है, कृषि उपज का 50 प्रतिशत कार्य तो भण्डारण से ही पूर्णतः होता है जिसमें समय के साथ–साथ परिवर्तन होते जा रहे है और समय की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता और मांग को देखते हुए उसमें अनेक तरह के सुधार कार्य किए जा रहे है। जिसमें कि कृषक वर्ग को कोई भी परेशानी का सामना ना करना पड़े।

सर्वप्रथम कृषि उपज का भण्डारण अपने घर में ही करते थे, वह जमीन में एक गड्डा खोदकर उसको इस प्रकार तैयार करते कि अनाज को लंबे समय तक व्यवस्थित रख सकें।

धीरे–धीरे किसान वर्ग जागरूक हुआ और वह दोगुनी मेहनत कर उसी जमीन में कई गुना फसल की उपज करने लगा और अपना बचा हुआ अनाज बारदानों में कुछ रासायनिक की सहायता लेकर रखने लगा क्योंकि प्राचीन समय में पानी और अन्य साधनों की कमी के कारण उतनी उपज नहीं होती थी, इसके पश्चात सरकार भी जागरूक हुई और किसानों को परेशानी का सामना या करना पड़े तो गोदामों का निर्माण किया गया क्योंकि ज्यादा यातायात के साधन उपलब्ध नहीं थे कि वह अपनी फसल के मण्डी में सही दान न मिले तो उन्हें घर वापिस ले जा सकें।

इसके पश्चात् शासकीय क्षेत्र में भी भण्डारण को लेकर जागरूकता आई और इस कार्य की और कदम बढ़ाने के लिए सरकार ने भी अथक प्रयास किए। अनेक सुविधा जनक नीतियों बनाई अनेक प्रकार की स्कीम लागू की अनेक क्षेत्र में छूट का भी प्रावधान किया आदि अनेक तरह की सहायता भी सरकार की तरफ से की गई सरकार द्वारा बढ़ाये गये। कदम को देखकर निजी क्षेत्र भी जागरूक हुआ और अपनी क्षमतानुसार भण्डारण गृहों का निर्माण किया। जिसका उपयोग कृषकों एवं व्यापारियों ने अपनी कृषि उपज को भण्डारित करने में किया।

कृषि उपज भण्डारण की आवश्यकता क्यों पड़ी –

मध्यप्रदेश राज्य एक कृषि संपंन राज्य है, यहाँ अनेक प्रकार की फसलों का उत्पादन पूरे वर्श होता है। मध्यप्रदेश राज्य की मिट्टी की उत्पादकता जलवायु मौसम सभी सम परिस्थिति में होने के कारण कृषि उपज भी अधिक मात्रा में होती है। मध्यप्रदेश राज्य में भूमिका रकवा भी अधिक है, तो उपज का अधिक होना संभवतः है।

पहले के समय में किसान अपनी जरूरतो को पूरा करने के लिए तुरंत ही उपज का विक्रय कर देते थे केवल उतनी ही उपनाम को घर में रखते थे जिससे कि वह अपना पालन–पोषण कर सकें क्योंकि उनके पास आय का कोई दूसरा रास्ता नहीं था।

लेकिन अब किसान कृषि के साथ–साथ अनेक तरीके से आय का आवागमन करते थे है जिससे कि अपने रोजमर्रा के खर्चों का वहन करते है। और अपनी कृषि उपज को भविष्य के लिए भण्डारित कर रखते हैं। इसकी वजह से अनाज भण्डारण का काम और भण्डारण गृह निर्मित करने का कार्य वर्तमान में पिछले कई वर्षों में बहुत तेजी पर है एवं था।

वर्तमान समय में किसानों के पास अपनी उपज को व्यवस्थित तरीके से संग्रहीत करने के लिए पर्याप्त स्थान की कमी हैं। जिसके कारण वह अनाज जरूरत पड़ने तक भण्डारगृह में व्यवस्थित रखना चाहते है। व्यापारियों द्वारा या सरकार द्वारा माल को खरीदने के बाद उसे यथावत् पहुँचाने या उपयोग में लाने तक वह बहुत क्षतिग्रस्त हो जाता है,

अचानक वर्षा होना, तूफान या कोई भी अन्य प्राकृतिक आपदाओं से बचाने के लिए उसे भण्डारित करना बहुत ही आवश्यक हो जाता है। अर्थात् बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है।

भण्डारगृह के अलावा मध्यप्रदेश में समस्त जिलों में जगरी स्टोरेज एवं कोल्ड स्टोर की भी अति आवश्यकता है।

कृषि उपज भण्डारण को महत्व न दिया जाए या उसका लाभ व लिया जाए तो किसान वर्ग का अधिक माल तो अनेक प्रकार की घटनाओं दुर्घटनाओं छोटे–छोटे कीड़े–मकोड़े अनेक प्रकार के जंतुओं पक्षियों की वजह से क्षतिग्रस्त हो जाता है। नीचे रखने पर गॉवों में दीमक का डर रहता है, हवन लगने पर अनेक छोटे–छोटे कीड़े–मकोड़े, चूहे आदि अनाज को अधिक मात्रा में लाभ पहुँचाते है। इन सब आपदाओं से बचने के लिए अनाज को भण्डारगृह में भण्डारित करना बहुत ही आव यक एवं जरूरी बन गया है। जहॉ पर अनाज को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता हैं और जरूरत पड़ने पर पैसे का वैसा ही निकाल लिया जाता है।

मध्यप्रदेश में पिछले पाँच वर्षों में भण्डारण की स्थिति
भण्डारण शाखाओं की संख्या एवं कुल क्षमता

वर्षा	शाखाओं की संख्या	स्वयं की क्षमता	किराये की क्षमता	उपयोगिता	उपयोगिकता का प्रति ात	कुल क्षमता
2011-12	265	14.50	06.30	35.21	75	
2012-13	275	14.81	06.25	46.31	85	
2013-14	281	14.97	02.91	47.61	81	

2014-15	285	18.08	02.91	69.79	76	
2015-16	281	22.03	02.38	62.11	79	

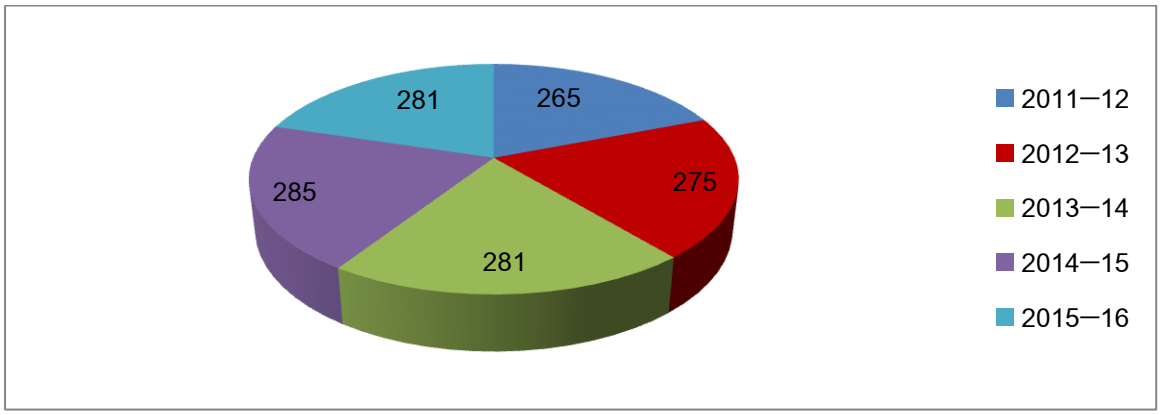

भण्डारण क्षेत्र में जो भी कमिया किसानों जमाकताओं, भण्डारगृह मालिकों अधिकारियों एवं सरकार को नजर आएगी एवं उन्हें तुरंत सही किया जायेगा। भण्डारण के लिए जो भी नीतियों या सिस्टम बनाए गए है उनमें इस प्रकार से सुधार किया जाएगा कि भण्डारगृह मालिक एवं कृषक वर्ग किसी को भी किसी प्रकार की समस्या एवं नुकसान न हो और किसान अपना अनाज इस शर्त पर रख सकें कि जरूरत पड़ने पर वह उसे प्राप्त हो। भण्डारण व्यवस्था वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार बड़े ही अच्छे से चल रही है कृषक वर्ग उसका लाभ ले रहे है। लघु शोध के दौरान भण्डारण नीतियों पर गहन अध्ययन किया गया और उनका सार निकाला गया कि उसमें कुछ परिवर्तन किए जाकर भण्डारण में और कुछ बदलाव कृषि उपज भण्डारण की सफलता के लिए किये जा सकते हैं।

इस दौरान कुछ ऐसे तथ्य सामने आये है जो कि कृषि उपज भण्डारण में परिवर्तन के संकेत इंगित कर रहे हैं। इनसे यह ज्ञात होता है कि मध्यप्रदेश की कृषि उपज भण्डारण व्यवस्था की डोर कुछ कमजोर प्रतीत हो रही हैं उसमें सरकार एवं वेयरहाउस कार्पोरेशन दोनों के बीच इस विषय पर चर्चा कर सुधार किये जाना बहुत ही आवश्यक है जो कि कृषक एवं व्यापारी वर्ग की सलाह के बिना इसमें सुधार करना कुछ हद तक संभव नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रमिला कुमार – मध्यप्रदेश एक भौगोलिक अध्ययन म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी वर्ष 1986
2. एग्री बिजनिस – डॉ. सुमिता देवासी
3. फर्म वित्त प्रबंध – एस.एस. झोल
4. प्रबंध हस्त पुस्तक – जेरी. डी. स्मिथ
5. वेयरहाउस प्रबंध – जे.पी. सक्सेना

प्रकाशित पत्र

1. विकास की ओर बढ़ते कदम – म.प्र. शासन।
2. म.प्र. का आर्थिक सर्वेक्षण 2004–2005, बी.जे.पी. पत्रिका।
3. म.प्र. का आर्थिक सर्वेक्षण, आर्थिक एवं सांख्यिकीय म.प्र.।
4. वार्शिक प्रशासनिक प्रतिवेदन 2006।
5. आनंद कुमार पाण्डेय – सामान्य अध्ययन म.प्र.।

पत्रिकायें व समाचार पत्र–

1. कृषि दर्पण
2. प्रतियोगिता दर्पण
3. दैनिक शस्तक समाचार
4. कृषक जगत

इंटरनेट एवं बेबसाइड–

1. www.wearhousing.com
2. www.wedipedia.com
3. www.bhaskar.com

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

पर्यटन केन्द्रों के विकास में भौगोलिक आयामों का अध्ययन

भगवानदास पाल .शोधार्थी–भूगोल
शासकीय माधव कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

सारांश :– पर्यटन केन्द्रों के विकास में भौगोलिक आयामों की अह्म भूमिका रही है। जिसके लिए भौगोलिक वातावरण की अवश्यकता होता है। पर्यटन भूगोल मानव के मनोरंजन, और मानसिंक शांति का पर्यटन स्थल है। जहाँ मानव की अनेक विचारधारायें जन्म लेती है। पर्यटन विकास से राष्ट्र को GVA का एक भाग प्राप्त होता है। जिसका राष्ट्र के विकास में योगदान होता है। इस प्रकार भौगोलिक वातावरण का प्रचार–प्रसार करने में पर्यटन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।जहाँ पर एक–दूसरें राज्यों तथा विदेशों से पर्यटक भौगोलिक सौन्दर्य का आनन्द लेने आते हैं। इस प्रकार पर्यटन मानव के लिए एक केन्द्र के रूप में निर्मित होते जा रहे हैं। जो मानव को एक–दूसरे की संस्कृति एवं सभ्यता के बारे में जानने का अवसर प्रदान करते हैं। जिसके लिए भौगोलिक वातावरण की अति आवश्यकता है। यदि भौगोलिक वातावरण की सुरक्षा और संरक्षा न की जाये तो पर्यटन क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पर्यटन स्थलों को अत्यधिक आकर्षक एवं सुगम्य होना चाहिए यदि भौगोलिक बनावट इन पर्यटन स्थलों को पहुँच में बाधायें उत्पन्न करती है तो पर्यटन की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती है।

पर्यटन वास्तव में किसी क्षेत्र विशेष के मानव वसाव की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के बारे में आनन्द पूर्वक एवं उत्साह पूर्वक जानना है। इनकी सुविधाओं के अध्ययन करने वाले विषय को पर्यटन भूगोल कहा जाता है। जहाँ पर्यटन से अधिक लाभ प्राप्त होता है। वहाँ पर पर्यटन स्थल के कर्मचारी और अधिक सुविधाए प्रदान करते है। जिससे पर्यटकों को पुनः आने में रूचि हो।

कुछ पर्यटन स्थलों में अन्य संगठन भी अपना सहयोग प्रदान करते हैं। ये पर्यटन स्थल लोगों को रोजगार भी देते हैं। जिससे सरकार के साथ–साथ इस क्षेत्र के निवासियों को भी अपनी आप का स्त्रोत होते हैं। अतः पर्यटन स्थलों का विकास राष्ट्र का सम्पूर्ण विकास है।

प्रविधि :– शोध पत्र 'पर्यटन केन्द्रों के विकास में भौगोलिक आयामों का अध्ययन' द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर अध्ययन कर तर्कपूर्ण तथ्यों को विश्लेषित किया गया है। इसके साथ–साथ कुछ पत्र–पत्रिकाओं एवं शोध विद्वानों का सहयोग एवं मार्गदर्शन समाहित किया गया है।

उद्देश्य :–

1. पर्यटन केन्द्रों के भौगोलिक वातावरण का अध्ययन करना।
2. पर्यटन केन्द्रों के विकास में भौगोलिक आयामों की भूमिका का अध्ययन करना।
3. पर्यटन केन्द्रों के विकास में भौगोलिक समस्याओं का अध्ययन करना।
4. पर्यटन केन्द्रों की समस्याओं को दूर करने के उपयो का अध्ययन।
5. पर्यटन केन्द्रों में प्राप्त होने वाली सुविधाओं का अध्ययन करना।

समस्याऐं :–

पर्यटन केन्द्रों के विकास में परिवहन की समस्या।

पर्यटन केन्द्रों के विकास में प्राथमिक स्वास्थ्य चिकित्सा की समस्या।

समान के रखरखाव की समस्या।

स्वच्छ जल की उपलब्धता की समस्या।

कार पार्किंग की समस्या।

चोरी की समस्या

भीड़ की समस्या

समाधान :– पर्यटन स्थल पर्यटक एवं व्यापारिक वर्ग के मध्य खुली बाजार की प्रतियोगिता की शांति प्रेम सद्भाव एवं मानवता गुण परिलक्षित होते हैं। जहाँ व्यापारिक वर्ग पर्यटकों को अधिक से अधिक सुविधाएँ देने का प्रयास करते हैं एवं उसके बदले में कुछ शुल्क भी लेते है। जिससे लोगों को आय प्राप्त होती है।

अधिकांश पर्यटन स्थल प्राकृतिक वातावरण के मध्य विकसित होते हैं जहाँ स्वच्छ वातावरण का प्रभाव रहता है। जिसमें स्थानीय पेड़–पैधे, जीव–जन्तु की अलग–अलग प्रजातियाँ दिखाई देती है। पर्यटन स्थलों को मुख्य मार्गों से जोड़कर विश्वस्तरिय सम्बन्धता को बढ़ावा देना चाहिए जिससे लोग आसानी से पर्यटन स्थल पर पहुँच सके।

पर्यटन स्थलों पर सुविधाएँ इनके विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके विकास में सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। पानी है। पर्यटन स्थलों का विकास वही हो पाता है जहाँ पानी की सुविधाएँ हो जैसे–हरिद्वार, वाराणसी, आगरा, नैनीताल, मंसूरी आदि जहाँ पर पानी की सुविधिाएँ नहीं होती वहाँ पर पर्यटन स्थलों का विकास नहीं हो पता है।

"पर्यटक वे अस्थायी आगन्तुक हैं जो कम से कम एक रात्रि हेतु यात्रा करने वाले देश में ठहरते है तथा जिनकी यात्रा का उद्देश्य विलासिता (मनोरंजन अवकाश, स्वास्थ्य, अध्ययन व क्रीड़ा) व्यापार व पारिवारिक मेलजोल से सम्बन्धित है।"[1]

भारतीय परम्परायें और भौगोलिक वातावरण सभी देशों से आने वाले पर्यटकों को ऐतिहासिक स्थलों एवं धार्मिक स्थलों की प्राकृतिक पहचान को बाताते है। भारत देश पर्यटकों के लिए बहुत ही स्मरणीय स्थल है। जहाँ उच्च श्रृखलाएँ एवं सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं ऊँची पहाड़ियों की खुली हवा पर्यावरण को मनमोहक बना देती है। यहाँ नृत्य, मेले, दर्शनीय स्थल एवं ऐतिहासिक स्थल देखने को मिलते हैं।

इन मूल्यवान सामग्रियों का संग्रह मानवीय रूचियों के अनुसार किया जाता है। जिससे पर्यटकों को मानसिक सन्तुष्टि मिलती है और उनके स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

पर्यटन स्थलों पर आने वाले कभी–कभी लम्बी यात्रा करने थकान या बीमार को जाते है जिसके लिए पर्यटन स्थलों पर प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा होनी चाहिए जिससे वह बिना किसी परेशानी के भ्रमण कर सके। इसके साथ–साथ पर्यटक वैसे ही कम सामान लाते है परन्तु कभी–कभी उनका सामान उनके भ्रमण में बाधा उत्पन्न करता है अतः सामान के रखरखाव की व्यवस्था भी पर्यटन केन्द्र पर होनी चाहिए।

आवश्यकता एवं महत्व :– पर्यटन में भौगोलिक अध्ययन का उद्देश्य मानवीय विकास को बढ़ावा देना है। इससे प्रकृति को संरक्षण मिलता है। जिस पर सरकार करोड़ों रूपये खर्च करती है। परन्तु लाभ अधिक नहीं मिलता है क्योंकि संरक्षण करने वाले लोगों से अधिक लोग नष्ट करने वाले है। इन विसंगतियों से प्रकृति का संरक्षण कैसे सम्भव है। प्रकृति के संरक्षण में, पर्यटन स्थलों से होने वाले लाभों का आपेक्षित परिणाम है। यह स्थल समाज की स्थितियों और विकास के लिए उपयोगी है। यह एक स्वच्छ विचारधारा के केन्द्र है जो बेरोजगार

लोगों को रोजगार प्रदान कर, समाज की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का विकास करते हैं। "किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को प्रबल बनाने में पर्यटन मुख्य सहयोगी है। बेरोजगारी को समाप्त करने व विदेशी मुद्रा अर्जित करने का पर्यटन एक उत्तम स्त्रोत है, साथ ही यह क्षेत्रीय विकास में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।"[2]

भौगोलिक दृष्टि से पर्यटन केन्द्र विकास के बहुआयामी दिशाओं में एक विकास की दिशा तय करती है। जहाँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था को लाभ मिलता है। बेरोजगारों को रोजगार भी प्राप्त होते हैं। इसी कारण मानव भौगोलिक वातावरण के रूप में कार्य करता हुआ मानव समाज को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए तैयार कर रहे हैं। इससे मानवीय विसंगतियों का परिणाम मानव भूगोल है। मानव भूगोल की स्थितियों को सुधारने हेतु पर्यटन प्रबंधक की छवि को बनाये रखने में समाज का कल्याण होता है।[3] मानव आवश्यकता को समाज में पर्यटन को व्यवस्थित कर उसके आस–पास की व्यवस्था में संचालित करता है। एक व्यवस्थित रूप ही पर्यटन की महत्वपूर्ण विचारधाराओं का परिणाम ही मानवीय जीवन का आधार ही बड़े–बड़े उद्योग है। जहाँ अनेक मजदूरों को रोजगार मिलता है। ऐसी विसंतियों से हतोउत्साहित होकर व्यक्ति पर्यटन की ओर पलायन करता है।[4]

भौगोलिक रूपों में पर्यटन का सम्बन्ध प्राचीन काल से है। जहाँ लोगों का आवागमन पैदल–पैदल था। लोग धार्मिक स्थल हो या सांस्कृतिक यहाँ लोग मानसिक शांति के लिए एकांत वातावरण का माहौल लेने आते थें। जहाँ धीरे–धीरे मानव वसाब की स्थिति में जुड़ जाता है। छोटे स्तर के दुकानों के द्वारा पर्यटक की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। परिवहन के बढ़ते चरण में आज पर्यटन की भूमिका और बढ़ती जा रही है। जहाँ प्राथमिक स्थान को चुनने के लिए मानव विकास का एक हिस्सा ही काफी होता है। जहाँ व्यक्ति शांति और सुख से स्वयं और बच्चों का भरण–पोषण कर सके। भौगोलिक वातावरण मानव की अनेक कठिनाईयों से लड़ना सिखाती है। इसलिए पर्यटन अधिक महत्वपूर्ण तथ्यों के रूप में उपयोगी सिद्ध होते हैं। भारतीय विचारधारा इन परम्पराओं के लिए कार्य करती है।[5] जहाँ सन्यासी के परिणाम का स्थान भी मानवीय विचारधारा का विचार उत्पन्न होता है। एक भूगोलवेत्ता निरंतर जीवन की प्रत्येक मौसम में खुशी का ऐहसास करता है। वह एक दार्शनिक की तरह भौगोलिक दशाओं का अध्ययन करता है। जिससे समाज और राष्ट्र का विकास हो।[6]

निष्कर्षतः भूगोलवेत्ताओं ने पर्यटकों के लिए मौसम की जानकारी (यथा– तापमान, आर्द्रता, पवन, वर्ष) को पर्यटन से सम्बन्धित कर दिया है। जिसमें मौसम सम्बन्धी असुविधा न हो यह एक वैज्ञानिक रूप में जीवन को सुरक्षा प्रदान करता है। जिसके अनुकूल पर्यटन अपने साथ सामान लेकर चलते है। भूगोलवेत्ताओं के द्वारा विनाशकारी भौगोलिक घटनाओं के बारे में मानव को पता चलता है। जैसे भूकम्प, हलचल आदि। नवीन पर्वत की श्रृंखलाओं के प्लेटों अभिसरण एवं अपसरण वाले क्षेत्र भूकम्प प्रभावित होते हैं। इन विनाशक घटनाओं से भूगोलवेत्ता सभी पर्यटकों को अवगत कराता है। जिससे पर्यटक जन–धन की हानि होने से बच जाते है। अतः पर्यटन के विकास में भौगोलिक आयामों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

सन्दर्भ :–

1. राजेश गोयल, ***पर्यटन एवं परिवहन,*** वंदना पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 11
2. राजेश गोयल, ***पर्यटन एवं परिवहन,*** वंदना पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 17

3. ताज रावत, ***प्राकृतिक पर्यटन विकास एवं बदलाव,*** आकाशदीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 90

4. डॉ. वी.पी. सिंह, ***पर्यटन विकास समस्याएँ एवं सम्भावनाएँ,*** आशा पब्लिशिंग कम्पनी, आगरा, 2013–14, पृष्ठ 211

5. के.एस. दोरियाल, ***पर्यटन विकास एवं प्रभाव,*** आशा बुक्स, सोनिया विहार, दिल्ली, 2010, पृष्ठ 65

6. राजेश गोयल, ***पर्यटन सुविधाओं का प्रबन्धन,*** वंदना पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 132

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

संत रविदास के चिन्तन में मानवीय मूल्यों की साहित्यक विवेचना

प्रदीप कुमार साकेत .शोधार्थी (हिन्दी साहित्य)
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश :– भारतीय इतिहास में सामाजिक क्रान्ति और प्रति क्रान्ति की लड़ाई प्राचीन काल से चली आ रही है। यह वह प्रतिक्रान्ति है जिसमें अस्पृश्यता की स्थिति पैदा होती है। अस्पृश्यता वर्ण व्यवस्था से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत जाति व्यवस्था या स्वयं अपने आपसे उत्पन्न होती है। लेकिन यह किसी न किसी रूप में एक प्रतिक्रान्ति ही है जो अस्पृश्यता के विरूद्ध क्रान्ति को जन्म देती है। यह क्रान्ति अस्पृश्यता का विनाश करती है। एवं जातीय व्यवस्था पर कुठाराघात करती है या वर्ण व्यवस्था कोसती है। लेकिन किसी भी रूप में दलित वर्गों के लिए यह एक क्रान्ति ही है।

प्रतिक्रान्ति का स्वरूप देश और विदेशों में भी दोनों स्तरों पर भी उत्पन्न होती है। कभी–कभी यह बाहर से भी आकर भारतीय संस्कृति और समाज को चंगुल में फसा लेती है तो कभी यह आन्तरिक रूप से भारतीय समुदाय के जीवन का गल घोंट देती है। क्रान्ति के दो रूप है पहला देशी और दूसरा विदेशी है। कभी यह चार्वाक, जैन और बौद्ध संम्प्रदायों के बीच में जन्म लेती हैं और कभी यह पश्चिमी देशों के प्रभाव के कारण भारतीय समाज और संस्कृति की आत्मा को मजबूर बना देती है।[1]

शोध प्रविधि :– इस शोध पत्र संत रविदास के चिन्तन में मानवीय मूल्यों की साहित्यक विवेचना एक प्रकार से द्वितीयक शोध सामाग्री के द्वारा अध्ययन किया गया है। जिस हेतु पत्र–पत्रिकाओं और विद्वानों का मार्गदर्शन भी सामिल किया गया है।

उद्देश्य :–

मानवीय मूल्यों का अध्ययन करना।

संत रविदास के ग्रन्थों में मूल्यों का साहित्यक अध्ययन।

मूल्यों का समाज पर प्रभाव का अध्ययन।

समस्यएँ :–

मूल्यों का तेजी हो रहे क्षरण की समस्या।

सम्प्रदायवाद की समस्या।

जातिवाद से घिरे समाज में मूल्यों की समस्या।

धार्मिक उन्माद की समस्याएँ

समाधान :–यह बात सत्य है कि मध्यकाल में संत रविदास के समकालीन संत कबीर, नानक, दादू इत्यादि संतों ने समाज को ऊपर उठाने का कार्य किया जिसमें समाज में व्याप्त कुरितीयों को जड़ से मिटाने का अथक प्रयास किया। जिससे मानवीय मूल्य साहित्य की दृष्टि में उत्कृष्ट रहा है। संत रविदास ने विशेष रूप से निम्न वर्गों के प्रति प्रेम एवं आस्था प्रकट की हैं। उन्होंने समाज को नयी दिशा प्रदान करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है तथा जाति के स्थान पर वैचारिक श्रेष्ठता की महत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया है।[2] कहा जाता है कि जो भगवान की अराधना करता है, भगवान उन्हीं की मदद करते हैं। इन्होंने उपेक्षित और शोषित होने वाले समाज के विभिन्न वर्गों एवं रूढ़ियों और प्रथाओं एवं झूठे आडंबरों से जकड़े हुये व्यक्तियों प्रति समाज में जागृति लाने का प्रयास किया है। तथा इनके द्वारा सरल एवं सीधी भक्तिमय वाणी का प्रयोग किया तथा निम्न वर्गों के व्यक्तियों के प्रति सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिकता के बारे में ज्ञान रूपी प्रकाश विखारने का प्रयास कर समाज में परिवर्तन लाने को कहा है।

संत रविदास एक ऐसे फकीर संत से जो मनमौजी कर्मयोगी और भक्त भाव से परिपूर्ण थे– जिसमें जातिगत भेदभाव का नामों निशान नहीं था। इनके सामने काशी के ब्राह्मण विद्वान भी उनकी भक्ति के प्रति नतमस्तक थे। साथ ही–उनका गहरा प्रभाव दासता अमीर–गरीब की भावना और छूआछूत के विपरीत था। इसके कारण व्यक्तिगत समानता, सामाजिक न्याय और लोक चेतना को अधिक बल मिलता है।

संत रविदास का कहना था कि निम्न जातियों के व्यक्ति को भी बराबरी का अधिकार है। उनका कहना है कि ईश्वर की दृष्टि से सभी व्यक्ति समान है उनमें ऊँच–नीच जैसी विषमताऐं तनिक थी। भेदभाव का विषय नहीं है यही उनके जीवन दर्शन का महत्वपूर्ण सार था।

संत रविदास का व्यक्तित्व :– संत रविदास को विभिन्न देशों एवं भागों में विभिन्न नाम से जाना जाता है। जैसे रविदास, रैदास, रादास, रूद्रदास, सईदास, रयिदास, रोहीदास, रोहिदास, रूइदास, रमादास, रामदास, हरिदास आदि। इनमें से दो नाम ऐसे प्रसिद्ध है जो इनकी विभिन्न रचनाओं में मिलते है वे है रविदास एवं रैदास। वाकी सभी नाम अन्य लेखकों या अन्य व्यक्ति द्वारा प्रयोग में लिया जाता है। गुरूग्रन्थ साहिब में रविदास नाम से एक श्लोक तथा चालीस पद संकलित है। इस रचनाकार के विषय के अन्तर्गत काशी के निवासी तथा उनकी जाति चमार का वर्णन किया गया है। साथ ही इस ग्रन्थ में अन्य स्थानों पर दलित शब्द का वर्णन भी किया है। जिसमें काशी के निवासी चमार रैदास का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं। कि रविदास और रैदास एक ही व्यक्ति थे।[3]

संतो का जीवन अत्यन्त सरल एवं सहज होता है वह हमारे समाज के प्रति हमेशा सहानुभूति प्रकट करते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन और दर्शन समाज कल्याण में निहित होता है। वह समाज में रहने वाले सभी वर्गों के प्रति अपनी आस्था को प्रकट करते हैं। एवं उनकी दिनचर्या सादगी से भरी होती है। किसी के प्रति टीका टिप्पणी करना उन्हें पसंद नहीं है। उनका स्वभाव सभी लोगों के प्रति उदासीन होता है। इन सभी बातों के प्रति उदासीन होना भी स्वाभाविक है। इन सभी बातों को रविदास जी हमेशा तत्परता से निभाने का प्रयास करते थे।

संत रविदास जी का मानना था कि संतों की वाणी कभी गलत नहीं होती है वे जो कहते हैं हमेशा सत्य होती है। इसी आधार पर माना जाता है कि "सुल्तान लोदी ने सन्त शिरोमणि गुरू रैदास जी को जितना कष्ट दिया था और चर्म–कर्म थोपकर जितना अपमानित किया था।"[4] वह सल्तनत काल के समय में एक अपराध बोध होकर अभिशाप के रूप में समाज के समाने आया। जिसका सबसे बड़ा कारण सिकन्दर लोदी के वंशज कभी भी सल्तनत की गद्दी में नहीं बैठ पाया। जिनकों मुगलों पर हमेशा पराजय ही हाथ लगी। सन्त रविदास के दिये गये शाप से लोदी वंश के मूल हमेशा के लिए नष्ट हो गयें। ये राक्षसों के सम्पूर्ण राज्य का विनाश हो जाता है। अति का अंत बड़ी ही बेरहमी से होता है। इसके बाद वहाँ समाज और समानता कायम होती है। इन्हीं मूल्यों को संजोकर रखने वाले महान संत गुरू रविदास जी ने मानवीय मूल्यों के लिए प्रत्येक समाज के एक प्रेरणा स्त्रोत के रूप में कार्य करते हैं। जिनकी परम्परा का समूल वंश की प्रवृत्ति का निरूपण होता है। जिसकें रूप में समय और समाज की कल्पना करना बहुत ही कठिन होगा।

संत रविदास के सम्बन्ध में यह एक दुःखद सत्य है कि समाज ने पिछले दो सौ वर्षों से इन्हें उपेक्षा पूर्ण ढंग से एक समुदाय तक

सीमित कर दिया था। जबकि संत रविदास समाज के सभी वर्गों के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते थे। इस कारण से वे स्वयं अपनी आस्था को एवं जीवन के अस्तित्व को बनाये रखने के साथ–साथ विभिन्न समुदाय के वर्गों को भी एक रूप में ढ़ालने का प्रयास किया है।

ऐसी लाल तुझ बिन कउनु करै।

गरीब निवाजु गुसईयाँ मेरा माथे छत्रु धरै।।

जाकी छोटि जाति कऊ लागे ता पर तूही दरै।

नीचह ऊँच करै मेरा गोविंदु काहु तें न डरै।।[5]

इस कविता को साहित्यकार ने एक उपन्यास की दृष्टि से संत रविदास और कबीरदास दोनों को एक साथ मिलते दिखाने की अभिप्रेरणा समाज के सामने दिखाया है। इसमें आगे गुरू रविदास और गुरू नानक देव जी से भी भेट होती है। जहाँ पर जीवन के हर युग की चर्चा का मूल कारण भी जीवन के मानवीय मूल्यों को प्राप्त करना है। जहाँ पर विचारों की वैशिष्टता का पूर्ण रूप ही दिखाई देता है।

संत रविदास, कबीर, नानक और दादू आदि संतों ने मानवीय मूल्यों की चेतना को जाग्रत करने में जीवन को समर्पित कर दिये। जिन्होंने समाज में फैले वैचारिक मतभेद को खत्म करने का प्रयास किया गया। जहाँ आज ऊँच–नीच, हिन्दू–मुसलमान कोई विशेष भेदभाव नहीं है। मलीनता के आधार पर भले करे। किन्तु सामाजिक स्तर पर पहले जैसा भेदभाव नहीं है। वही भेदभाव बड़े रूपों में है। जहाँ शैक्षिक और नौकरी, व्यवसाय आदि में भेदभाव आज भी दिखाई देता है। जिसमें भाईचारा वाद नाम ले चुका है। जिसकें लिए मानवता के मानवीय मूल्यों का यह दीप स्तंभ रूप से दिखाई देता है।[6]

निष्कर्ष :– संत रविदास जी अपनी वाणी में कहते है कि इस संसार में प्राणी के हितों की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। जहाँ सभी वर्ग भेद के लिए लड़ते है। वहाँ मानव समाज एक हैं। यहाँ तक कहते हैं कि जाति –पाँति के प्रपंच में कुछ भी नहीं है। सब तो हैं मानव सबसे श्रेष्ठ धर्म मानवता का धर्म हैं। जिसमें मानवीय मूल्य समाहित है। जीवन में अपनाकर उन्हें व्यवहार की कुशलता को प्राप्त किया जा सकता है। जो मानव के लिए अतिआवश्यक है।

सन्दर्भ :–

1. डॉ. धर्मवीर सन्त रैदास का निर्वर्ण सम्प्रदाय, संगीता प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ 15
2. कन्हैयालाल चंचरीक, संत रविदास : जीवन और दर्शन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 1
3. सं. ममता झा, संत रविदास रत्नवली, एस.के. इंटरप्राइजेज, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 17
4. डॉ. विजय सोनकर शास्त्री, धर्म रक्षक संत शिरोमणि गुरू रैदास एवं आदि गुरू वाणी, सत्साहित्य भण्डार, दिल्ली, 2016, पृष्ठ 62
5. डॉ. अरूण कुमार भगत, संत रविदास की रामकहानी दृष्टि और मूल्यांकन, संदर्भ प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ठ 26–27
6. आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद, गुरू रविदास, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1999, पृष्ठ 22

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

सिंहस्थ कुम्भ की परम्पराओं का दार्शनिक अध्ययन

रीता टेटवाल .शोधार्थी–दर्शनशास्त्र
शासकीय माधव कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

सारांश :

इत चंबल उत बेतवा, मालव होय सुजान।

दक्षिण दिशि है नर्मदा, यह पुरी पहचान।।[1]

मालवा का पठार स्थूल दृष्टि से नर्मदा नदी के तट के उत्तरी ओर पर विस्तृत धरातल का क्षेत्र माना जाता है। ईसा की 3 एवं 4 शताब्दी में शक–क्षत्रप के शासन काल में उज्जयिनी राजधानी थी। प्राचीनकाल से ही उज्जैन प्रसिद्ध और सौन्दर्य से भरी नगरी है। जहाँ भगवान श्रीकृष्ण की शिक्षा स्थली, आदि कवि कालिदास जैसे महान संस्कृत के विद्वान थे। इस प्रकार से उज्जैयिनी का धार्मिक रूप से अधिक महत्व है। प्राचीन काल से ही उज्जैयिनी को ग्रीनविच माना जाता है। यह ठीक सूर्य के नीचे आता है। उज्जैन मध्यवर्ती केन्द्रबिन्दु होने के साथ–साथ देश का नाभिक्षेत्र भी है। उज्जयिनी का जनपद नाम अवन्ति प्रदेश है। कई कहानियों और जातक कथाओं से पता चलता है कि राजा चण्डप्रद्योत यहाँ निवास करता था।

उज्जयिन्यां कुर्परज मांगल्यः कपिलांवरः।

भैरवः सिद्धिः साक्षादेवी मंगलचण्डिका।।

अवन्ती संज्ञको देशः कालिका तत्र तिष्ठति।

शक्तिसंगमतंत्र।।[2]

नगर के बाहरी प्रदेश में भगवान महाकाल की चिरसंगिनी मंगल चंडी का आदिरूप दुर्गा का नाम अति प्रसिद्ध मन्दिर था। जहाँ पर उज्जयिनी के धार्मिक और तांत्रिक रूपों में मंगल चण्डी शक्त संगम के तंत्र में अवन्ति देश की देवी माँ कालिका का ही रूप दिया जा सकता है। ऐसा वर्णन उज्जैन सिंहस्थ की परम्पराओं में निरूपित होता है। जहाँ धार्मिक और तांत्रिक दृष्टि से दोनों की साधना पद्धति में घोर तपस्या का वर्णन मिलता है। जिनकी तपस्या का स्वरूप ही मानव के मूल्यों को निर्भर करता है। विशेषतया मानव की विचारधारा ने इन दार्शनिक स्थालों का भ्रमण श्रद्धा भक्ति और सुख' शान्ति के लिए धार्मिक और पवित्र स्थाल के रूप में सिंहस्थ पर्व मनाया जाता है।

शोध प्रविधि :– इस शोध प्रविधि में विषय सिंहस्थ कुम्भ की परम्पराओं का दार्शनिक अध्ययन यह शोधपत्र द्वितीयक शोध सामाग्री के रूप में प्रयोग कर लिखा गया है। इस हेतु वैदिक धर्म ग्रन्थों को यथा उचित स्थान पर शोध सन्दर्भित किया गया है। इसके साथ–साथ विद्वानों का भी मार्गदर्शन और पत्र–पत्रिकाओं का भी सहारा लिया गया है।

उद्देश्य :–

सिंहस्थ कुम्भ की परम्पराओं का अध्ययन।

सिंहस्थ कुम्भ मूल्यों का अध्ययन।

सिंहस्थ कुम्भ में आये साधु संतों की विचारधारा का अध्ययन।

सिंहस्थ कुम्भ से समाज में पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।

समाधान :–

महाकालं ततो गच्छेत् नियतो नियताशनः।

कोटितीर्थं मुपस्पृश्य ध्यमेधफलं लभेत्।।[3]

उज्जयिनी के इस नगरी में भारतीय संस्कृति की अविरल क्षठा दिखाई देती है कि

उज्जयिनी प्राचीन नगरों में एक अपना अलग स्थान बनाती है। जहाँ युग दृष्टा के रूप में अनेकों ऋषिमुनि विद्यमान थे। जिसका जिक्र महाभारत के रयचिता भी करते हैं। इससे निसंदेह ही महाकाल की महिमा का प्रतिफल प्रत्येक श्रधालु को प्राप्त होता है। ऐसी सिंहस्थ के रूप में विद्यमान है।

सिंहस्थ का महापर्व बारह वर्षों में मनाया जाता है। उज्जैन में यह सिंहस्थ कुम्भ बृहस्पति के सिंह राशि पर होने पर ही मनाया जाता है। इस क्षिप्रा नदीं के किनारे दूर–दूर से आने वाले अनेकों साधु संतों के द्वारा मनाया जाता है। जिसके कारण मानवीय जीवन का आधार ही यहाँ का धार्मिक स्थल महाकाल की नगरी माना जाता है। जहाँ मानव जीवन की अनेक मनोकमनाओं की पूर्ति इस पावन नगरी में पाया जाता है। चैत्र मास में सिंहस्थ का कुम्भ पूर्णिमा से आरम्भ होकर वैशाख पूर्णिमा के अंतिम स्नान तक श्रद्धालुओं को पुण्य लाभ प्रदान होता है। जहाँ लोग कष्टों और पाप के निवारण हेतु आते हैं।

सिंहस्थ चार जगहों पर मनाया जाने वाला पर्व है जिसमें नासिक, हरिद्वार, प्रयाग और उज्जैन है। ऐसा मानना है कि इन्हीं पर्व स्थालों को अमृत बूदें मिली है। जिनके कारण यहाँ सिंहस्थ कुम्भ होता है। इन स्थानों में सिंह–राशि में आने पर बृहस्पति राशि के साथ जब मेष राशि में सूर्य और तुला राशि में चन्द्र इस प्रकार के ग्रहों के योग का समन्वय माना गया है। सिंहस्था धार्मिक परम्पराओं की आधारशिला है। जहाँ योग और तप के बल पर मानव के मूल्यों का निर्माण होता है।

उज्जयिनी के देवता प्रभु महाकाल है। यह महाकालेश्वर मन्दिर में नाम से जाना जाता है। इस मन्दिर में शिव लिंग की प्रतिमा स्थापित है। महाकालेश्वर में भस्म आरती भी की जाती है। जहाँ पर असंख्य श्रद्धालु रात्रि से ही लाईन लगाकर दर्शन हेतु जाते हैं। यहाँ दर्शन की अनेक परम्पराऐं विद्यमान है। जिसके लिए मानवीय जीवन का आधार ही मूल्य और ईश्वर से मानव कल्याण माना जाता है।

श्रीशिवमहापुराण के अनुसार विनाशकारी युद्ध के समय भगवान शिव ने राक्षसों के आचार्य शुक्राचार्य को निगल गये। भगवान शिव के इस प्रलय जैसी जठराग्नि में राक्षसों के गुरू शुक्राचार्य को नहीं जलाया ? इस प्रश्न के अनेकों कारण सामने आते हैं। जहाँ पर अत्यन्त ही दुर्भेद्य के समान भगवान शिव ने और गिरव्यूह के स्वामी अन्धक के साथ भीषण युद्ध होने लगा। उस समय राक्षसों की वेताब जीत होने लगती है। उसी समय भगवान शिव ने इस जीत को देखकर प्रथमगणों की भी जीत होने लगती है। ऐसी दशा में राक्षस अन्धाकसुर युद्ध से थक कर अत्यन्त दुःखी हो जाता है। वहाँ से युद्ध छोड़कर भाग देता है। तुरन्त राक्षसों के गुरू शुक्राचार्य के पास पहुँच जाता है। कहता है कि हे प्रभु आपकी असीम कृपा से हम सब जीत रहें थें। किन्तु अब ऐसा नहीं हो रहा है। जिस कारण मैं बहुत ही दुःखी हूँ।

"सहस्त्रों वर्षपर्यन्त तुषाग्निजन्य धूमका पानकर जिस संजीवनी–विद्या को प्राप्त किया है।"[4] राक्षसों के गुरू शुक्राचार्य द्वारा तुषाग्निजन्य विद्या से प्रभाव से सम्पूर्ण राक्षस पुनः जिन्दा हो जाते हैं। शुक्राचार्य ने अपनी विद्या का सफल परीक्षण कर शिष्य की सहायता करते हैं। यह मृतसंजीवनी विद्या के प्रकोप से सभी राक्षसों को जिन्दा किया जाता था। किवदंतियों में भी समुन्द्र मंथन की चर्चा हुई है। जहाँ बुद्धि हीन रक्षसों को अधिकारों से वंचित किया गया है।

1. हलाहल विष : यह विष के कारण सारी पृथ्वी के जनमानस को नष्ट करने वाला विष है। जो दानव और देवता दोनों को नष्ट कर

देता। इस कारण हलाहल विष को शंकर भगवान ने पी लिया है।

2. कामधेनु : देवताओं और असुरों का मानना है कि कामधेनु गया द्वितीय रत्न के रूप में उत्पन्न होती है। इसका मूल उद्देश्य सभी मानव को पालने वाली माना जाता है। भारतीय संस्कृति और समाज में पवित्र माना जाता है।

3. **उच्चैश्रवा घोड़ा** : तृतीय उच्चैश्रवा घोड़ा जिसका रंग सफेद है। यह घोड़ा इन्द्र को प्राप्त होता है। यह घोड़ा पृथ्वी में किसी भी मानव के पास नहीं था। यह उड़ने वाला घोड़ा जिसकी इस पृथ्वी पर कोई भी प्रजाति नहीं थी।

4. **ऐरावती हाथी** :– हाथियों का राजा सफेद हाथी था। जिसे भीष्म पर्व में भी वर्णन आता है। यह बहुत ही सौन्दर्य पूर्ण था जिसकों कोई देखकर बहुत ही अद्भुत महसूस करता था।

5. कौस्तुभ मणि : पाँचवा रत्न कौस्तुभ मणि प्राप्त हुई थी। जो भगवान विष्णु को प्राप्त हुई थी। यह बात कालिया नाग को भगवान श्रीकृष्ण ने त्रास से मुक्ति प्रदान किया था।

6. कल्पद्रुम : यह कल्पद्रुम जिसे कल्पवृक्ष के नाम से भी जानते है। यह विश्व में सबसे पहला धर्म ग्रन्थ माना जाता है।

7. रंभा : पुराणों के अनुसार समुद्र मंथन में उत्पन्न होने वाली रंभा बहुत ही सौन्दर्य पूर्ण अप्रिम सुन्दरी थी। जिसके नलकुबेर की सभा में होने का जिक्र है।

8. लक्ष्मी : समुन्द्र मंथन में श्री (लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है। जिसे भगवान विष्णु ने अपनाया। जहाँ इन्हें घर की स्त्री का महत्व दिया जाता है।

9. वारूणी (मदिरा) : वारूणी नामक मदिरा प्राप्त हुई। जबकि लोकोक्तियों के माध्यम से इसे पर्व के रूप में भी मनाया जाता है। जिसका जिक्र खगोलीय योग के नाम से स्वीकार किया जाता है।

10. चन्द्रमा : चन्द्रवंशी, यह क्षत्रियों का मूल गोत्र कहा जाता है। जिसे कुछ जगहों में माता अनुसुयिया के पुत्र को भी कहा जाता है।

11. परिजात वृक्ष : परिजात नामक कल्पवृक्ष का उद्भव होता है। यह फूल ईश्वर को भी चढ़ाया जाता है।

12. शंख : समुद्र मंथन में पंचाजय नामक शंख भी उत्पन्न हुआ। यह अद्भुत रूप का शंख था। जिसकी कल्पना एक साधारण मानव नहीं कर सकता है।

13. धन्वंतरि बैद्य : धन्वंतरि भी क्लश को लिऐ हुए उत्पन्न होते हैं जहाँ देवी–देवता और रक्षस सभी थे। इन्हें ही आयुर्वेदाचार्य के नाम पर भी जाना जाता है।

14. अमृत : अमृत का मतलब प्राणी के अमरता से है। ऐसे पदार्थ में को पीने के बाद मानव हजारों सालों तक जीता है। ऐसे रसायन अमृत की बात की जाती है।

निष्कर्ष :– भारतीय दार्शनिक और संत परम्पराओं ने सिंहस्थ जैसे पर्व में मानव के मूल्यों का परिणाम ही दिखाई देता है। जहाँ पर आदिशंकराचार्य ने भारतीयता की पहचान बचाने के लिए और आक्रमणकारियों से सुरक्षा के लिए नागा साधुओं की स्थापना करते हैं। जबकि यह संस्कृत भाषा के 'नग्न' शब्द से उद्भव होता है। जिसकी परम्पराऐं प्राचीनकाल से चली आ रही है। इस प्रकार से सिंहस्थ महाकुम्भ भारतीय संस्कृति और धर्म की पहचान बताती हुई आज तक चली आ रही है। जिसमें मानव की आस्था को केन्द्र ईश्वर की पूजा पद्धति के रूप में मानव करता आ रहा है। ऐसी कठिन परीक्षाओं के फलस्वरूप मानव का कल्याण कैसे सम्भव हो। यह भारतीय धार्मिक और पूजा–अर्चना पर निर्भर करता है।

सन्दर्भ :–

1. मदनमोहन दुबे, ***युग युगीन उज्जयिनी,*** पृष्ठ संख्या, 31
2. मदनमोहन दुबे, ***युग युगीन उज्जयिनी,*** पृष्ठ संख्या, 06
3. ***महाभारत,*** 3 / 82 / 49
4. ***कल्याण शिवमहापुराण,*** हिन्दी भाषा अनुवाद सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, पूर्वद्ध अंक 91, सम्वत् 2073, पृष्ठ संख्या 581

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

शिशुपालवधम्' महाकाव्य में 'भगवत्कृपा–प्राप्ति' का चित्रण

अनिल मुवेल .संस्कृत–पीएच्.डी. (शोधार्थी)
शोध केन्द्र– संस्कृत अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

सारांश :– महाकवि माद्य प्रणीत 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य की कथावस्तु पौराणिक है। 'श्रीभ˜ागवत' महापुराण के दशम स्कन्ध के 74 वें अध्याय तथा महर्षि वेदव्यास प्रणीत 'महाभारत' महाकाव्य के 'सभा–पर्व' के 33 वें से 45 वें तक –कुल 13 अध्यायों में 'शिशुपाल–वध' की कथा उपलब्ध होती है। महाकवि माघ ने उपर्युक्त 'श्रीम˜ागवत' एवं 'महाभारत' को आधार मानकर 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य का प्रणयन किया है। कवि ने इस महाकाव्य में पर्याप्त पौराणिक–विशिष्टताओं को समन्वित करने का सार्थक प्रयास किया है। 'धर्म' और 'ईश्वर' को सर्वोच्च मानकर अपनी विलक्षण काव्य–प्रतिभा से महाकाव्यत्व के सभी तत्वों का समायोजन कर दार्शनिक भाव–भित्ति का निर्वाह करते हुए उदात्त आध्यात्मिकता का अनुसरण किया है। काव्य की आत्मा भगवत्कृपा की प्राप्ति के लिए सर्वत्र उत्कंठित दृष्टिगोचर होती है। प्रथम सर्ग से लेकर बीसवें सर्ग तक की कथा में वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण को भगवान विष्णु के अवतार के रूप में महाकवि माघ ने प्रतिष्ठित किया है।

शोध प्रविधि :– इस शोध पत्र में द्वितीयक शोध सामाग्री के द्वारा अध्ययन किया गया है। इस हेतु मूल धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन समाहित का सन्दर्भित किया गया है।

उद्देश्य :– सर्वकल्याण–प्रद इस अनिवर्चनीय भगवत्कृपा की आकाँक्षा हेतु महाकवि माघ ने 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में वासुदेव भगवान श्री कृष्ण को 'श्रियःपति' अर्थात् साक्षात् लक्ष्मी जी के प्रति के रूप में प्रणम्य भाव रखते हुए 'निस्सीम भगवत्कृपा' की प्राप्ति हेतु महाकाव्य का शुभारम्भ किया है –

"श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसkनि।

वसन्ददर्शवतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाX भुवं मुनिं हरिः।।"[6]

आत्मा और परमात्मा ऐहिकता और पारलौकिकता जैसे उदात्त विषय जन मनीषियों के चिन्तन के विषय बनते हैं, तब यह समग्र चिन्तन 'आध्यात्मिक चिन्तन' कहलाता है। ऋचा–रचयिता ऋषियों से लेकर वर्तमान मनीषियों तक की काव्य रचनाओं में इसी आध्यात्मिक भावों का सर्वस निरूपण हुआ है। महाकवि माघ की दार्शनिकता इतनी प्रगाढ़ एवं उदात्त है कि वे प्रकृति के प्रत्येक कण–कण में परम–पिता परमेश्वर की ही सत्ता का अवलोकन करते हैं। प्रकृति का प्रत्येक परमाणु उस सर्वसत्तासंचारण सर्वेश्वर की कृपा का आकाँक्षी हैं। महाकवि माघ ने इसी दार्शनिक दृष्टिकोण को रैवतक पर्वत से निकलने वाली नदियों के चिन्तन में मनोहारी ढंग से चित्रित किया है। यथा :–

"अपशVमV परिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।

अनुरोदितीव करूणेन पक्षिणं निरूतेन वत्सलतयैषनिक्नगाः।।"[7]

अर्थात्, दार्शनिक भाव प्रस्तुति करते हुए महाकवि माघ वर्णन करते हैं। "रैवतक पर्वत से

[6] शिशुपालवधम्' महाकाव्य प्रथम सर्ग प्रथम छन्द
[7] शिशुपालवधम्' महाकाव्य चतुर्थ सर्ग श्लोक 47

निकली हुई नदियाँ समुद्र की ओर प्रस्थान कर रही है। कवि ने आध्यात्मिक भाव से कल्पना की है कि मानों नदी रूपी पुत्रियाँ समुन्द्र रूपी पति के पास जा रही है। अस्तु पिता रूपी पर्वत मनों पक्षियों के कलख के माध्यम से रूदन कर रहा है।"

वस्तुतः सभी नदियों का गन्तव्य स्थान समुद्र है। जिस प्रकार संसार के भिन्न–भिन्न मार्गों से बहती हुई नदियाँ अन्त में समुद्र की शरण में जाकर एकाकार हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक धर्म अन्त के परमपिता परमात्मा की ही शरण में जाकर समाहित हो जाता है। इसी प्रकार सभी आत्माऐं परमात्मा का ही एक मात्र अंश है और आत्मा का परमात्मा में विलीन होना ही मोक्ष कहलाता है। भारतीय संस्कृति में जो वर्णाश्रम–पुरूषार्थ चतुष्टय की झाँकी देखने को मिलती है उसका एकमात्र प्रयोजन धर्मनिष्ठ बनकर, वेद–वेदान्त में उल्लिखित धार्मिक मान्यताओं और आज्ञाओं का अनुपालन करते हुए ईश्वर की शरण में अवलम्बित होकर ही जीवन को सार्थक किया जा सकता है।

समाधान :–महाकवि माघ में उच्चकोटि का काव्यत्व एवं दार्शनिकता विद्यमान है। उन्होंने अपने विश्व–विश्रुत महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' में 'पुरूष और प्रकृति' तत्व के माध्यम से महर्षि कपिलमुनि द्वारा प्रतिपादित 'सांख्य–दर्शन' का श्लाघनीय वर्णन प्रस्तुत किया है। यथा–

"उदासितारं निगृहीतमानसै–

गृहीत मध्यात्मदृशा कथ†चन।

बहिर्विकारं, प्रकृतेः प्रर्थाग्वदुः,

पुरातन त्वां पुरूषं पुराविदः।।"[8]

अर्थात् देवर्षि नारद, श्रीकृष्ण भगवान के तात्विक स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि महर्षि कपिल आदि सांख्य–शास्त्रियों एवं आचार्यों द्वारा वर्णित 'प्रकृति' तत्व से भिन्न रूप में अवस्थित आप ही 'परम–पुरूष' के रूप में विराजमान हैं।

वस्तुतः अनन्तकोटि– ब्रह्मण्डनायक, परात्पर पूर्णतम परमेश्वर–पुरूषोत्तम, अखण्ड सच्चिदानन्द धन परम ब्रह्म परमात्मा की कृपा–प्राप्ति के बिना प्राणी का कल्याण कदापि संभव नहीं हैं। परम निःश्रेयस का एकमास आधार, उन्हीं अशरण–शरण, अकारण करूणावरूणालय, सर्वज्ञ, शक्तिमान, सर्वाधिष्ठान भगवान् की कृपा तो है ही, किन्तु इस लोक में सर्वविधि, सर्वाX समुन्नति का एक मात्र आधार 'भवगत्कृपा' ही हैं। उसके बिना सुखों के सभी साधन सर्वथा व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि भगवान की कृपा ही प्राणिमास के लिए इहलोक एवं परलोक में सुख–शान्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। यथा–

"निवेशयामसिथ हेलयोद्धृतं,

फणाभृतां छादनमेकमोकसः।

जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्व मुच्चकैः,

रहीशवरस्तम्भशिस्सु भूतलम्।।

अनन्ययुर्व्यास्तव केन केवलः

पुराणभूर्तेर्यहिमाÙवगम्यते।

मनुष्यजन्माÙपि, सुशसुशन्–

गुणैर्भवान–भवच्छेदकरैः करोत्यधः।।"[9]

अर्थात् देवर्षि नारद 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में भगवान श्री कृष्ण के जनोपयोगी सगुण स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए 'वराह अवतार' के रूप में भगवत्कृपा की महिमा का वर्णन करते हैं –

"वराह अवतार में तीनों लोगों के एकमात्र शिल्पी (सृष्टा) आपने सहज ही उठाये

[8] शिशुपालवधम्' महाकाव्य प्रथम सर्ग श्लोक 33

[9] शिशुपालवधम्' महाकाव्य प्रथम सर्ग श्लोक 34, 35

हुए सर्पों के गृह (नागलोक का पाताल लोक) में एकमात्र आवरण रूपी इस भूतल को शेषनाग के उन्नत मस्तक रूपी स्तम्भ के ऊँचे शिरों पर धारण किया था।"

"आप से महत्तर अन्य कोई नहीं है, ऐसी आपकी पुराणमूर्ति की महिमा किसके द्वारा जानी जा सकती है? मनुष्य देहधारी थी आप सांसारिक बन्धन से मुक्ति दिलाने वाले ज्ञा, परोपकारादि गुणों से देवताओं तथा दैत्यों को नीचे किये रहते हैं।"

वस्तुतः भगवान् की इच्छा या लीला के बिना एक तृण या पत्ता तक नहीं हिल सकता। अथवा तृण भी भगवत्कृपा से वज्र बन सकता है–

"ईश्वरेच्छया तृणमपि वज्रीभवति।"[10]

संस्कृत भाषा की उपर्युक्त प्राचीन उक्ति, अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्रत्येक आस्तिक व्यक्ति इसे निश्चित रूप से ऐसा ही मानता है। भगवान के अनुग्रह या कृपा के बिना संसार में कोई श्रेय या प्रेय प्राप्त नहीं हो सकता। यथा–

"विजयस्वयि सेनायाःसाक्षिमात्वेऽपदिश्यताम्।

फलभाजि समीक्ष्योऽ बुद्धेर्भेग इवात्मनि।।[11]

अर्थात् ईश्वर को साक्षी मानकर, विजय प्राप्त की जा सकती है। महाकवि माघ ने 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में सनातन युगीन धार्मिक परम्पराओं एवं मान्यताओं का निर्वाह किया है। उन्होंने 'श्रीमज्ञागवत' एवं 'महाभारत' से भगवत्कृपामयी अनुभूति प्राप्त की है। ऋग्वेद में, दया अनुग्रह प्रसाद, अवलम्बन, करूणा, शूक, कृपा आदि को भगवत्कृपा का पर्याय वर्णित किया गया है। यथा–

"ते त्वा यदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरिन्ने।

एको देवन्ना दयसे हि मर्तानस्मिन्छूर सवने मादयस्व।।"[12]

अर्थात् तत्ववेत्ता मनीषी कहते हैं –

"प्रभो ! आप साधक द्वारा, श्रद्धापूर्वक अनुष्ठित अर्चन, वन्दन, आत्मनिवेदनादि से सन्तुष्ट हो अपने भक्त को दुस्तर संसार–महोवधि से पार करने की अवश्य अनुकम्पा करें, क्योंकि समस्त देवों में अनुप्रविष्ट विविध देव, उनके विभिन्न नाम तथा अनेक रूपों के कल्पना का आधार केवल आप ही हैं।"

राजसूय यज्ञ में धर्मात्मा युधिष्ठिर ने निश्छल हृदय से वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण के चरणा विन्दों पर नमन करते हुए इसी मंगलमयी भगवत्कृपा की आकांक्षा की है –

"सप्ततन्तुमधिगन्तुमिच्छतः कुर्वनुग्रह्यज्ञया मम।

मूलतायुपगते प्रभो! त्वयि प्रावि धर्ममयवृक्षता मया।"[13]

अर्थात् "हे भगवान ! मुझ यज्ञेच्छु को यज्ञ करने की आज्ञा प्रदान करने का अनुग्रह करें। धर्म रूप वृक्ष के मूलभूत आपकी कृपा से ही मैं धर्मराज पद को प्राप्त हुआ हूँ।"

"किं विधेयमनया विधीयतांत्वत्प्रसादजितयार्थ सम्पदा।

आधिशासक जगत्त्रयस्व मामाश्रवोऽस्मि भवतः सहानुजाः।।"[14]

धर्मात्मा युधिष्ठिर भगवत्कृपा की कामना करते हुए वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण से कहते हैं–

---

[10] केनोपनिषद् 3/1

[11] शिशुपालवधम्' महाकाव्य द्वितीय सर्ग श्लोक 59

[12] ऋग्वेद 7/23/5

[13] शिशुपालवधम्' चतुर्दशः सर्व श्लोक 6

[14] शिशुपालवधम्' चतुर्दशः सर्व श्लोक 11

"आपकी कृपा से प्राप्त इस धन–सम्पदा द्वारा मुझे क्या करना है, कृपापूर्वक आप ही निर्देश करें। आप तीनों लोकों के शासक हैं। कृपया मुझे भी शिक्षा दीजिए। हम सवान्धव आपके आज्ञाकारी हैं।

'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में भगवत्कृपा–प्राप्ति के साधन :–

'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में महाकवि माघ ने पौराणिक आध्यात्मिक मान्यताओं का विशद् संगम समायोजित किया है। उपनिषदों की दार्शनिक विचारधाराओं को अपने काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य स्वर बनाया है। वैष्णव–मनीषियों की 6 आध्यात्मिक वृत्तियों का विवेचन भगवत्कृपा प्राप्ति के निहितार्थ महाकवि माघ ने 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में समन्वित किया है–

"आनुकूलस्य संकल्पः, प्रातिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तत्ववरणं तथा।।
आत्मनिक्षेपकार्यण्ये षड्विधशरणागतिः।।"[15]

अर्थात् 'अशरण–शरण करूणा वरूणालय परम पिता परमात्मा की कृपा प्राप्ति के 6 साधन है :–

1. आनुकूलस्य संकल्पः
2. प्रतिकूलस्य वर्जनम्
3. रक्षिष्यतीति विश्वासः
4. गोप्तुत्ववरणम्
5. आत्मनिक्षेप
6. कार्पण्यम

1. आनुकूलस्य संकल्पः:– परम पिता परमात्मा की आज्ञापालन करना ही 'आनुकूलस्य संकल्पः' है। धर्म में उल्लिखित निर्देयाँ का विधिवत् पालन करना ही ईश्वर की आज्ञा पालन करना कहलाता है। धर्म में वर्णित सदाचार सम्पन्न सम्यक् विचारधाराओं का आत्मसात करना की अनुकूल संकल्प है। 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में महाकवि ने माघ्ज्ञ ने इसी अनुकूल आचरणस के संकल्प का विविध पात्रों द्वारा सम्पन्न कराया है। शुभ कार्य को परमात्मा पर समर्पण कर देने से कार्य की सिद्धि होती है तथा पारलौकिक आनन्द की भी प्राप्ति होती है–

"निजौजसेज्जासयितुं जगद्, द्रुहामतुपाजिहीथा न महीतलं यदि।
समहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथमीशं मादृशाम्।।
उत्प्लतुं यातुमदो मदोद्धते, स्खमेव विशम्भर! विश्वमीशिषे।
ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमष्काण्डमलीमशं नथः।।"[16]

अर्थात् धर्म के संस्थापक परमपिता परमात्मा हैं। देवर्षि नारद वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण जी से उनकी महिमा का अनुकूल प्रयोजन के हितार्थ निवेदन प्रस्तुत करते हैं –

"हे भगवान ! यदि आप अपने तेज से जगद्द्रोहियों का वध करने के लिए पृथ्वी पर अवतार न लेते, तो योगियों द्वारा भी अगम्य आप मुझे जैसे लोगों की दृष्टि के विषय कैसे बन पाते।"

"हे विश्व पालक! यदोन्यप्त कंसादि राक्षसों के द्वारा पीड़ित इस जगत् का रक्षण करने के लिए आप ही समर्थ है। रात्रि के अन्धकार समूह से मलिन आकाश को निर्मल बनाने के लिए, सूर्य के अतिरिक्त कौन–कौन समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं।"

2. प्रातिकूलस्यवर्जनम् :– कुत्सित प्रवृत्तियों का क्षय एवं अशिव शक्तियों के विनाश के लिए किया जाने वाला उद्यम ही प्रतिकूलस्य वर्जनम् कहलाता है। शिशुपालवधम् महाकाव्य में महाकवि माघ ने 'शिवतरक्षत में की स्थापना का सफलतम् प्रयास किया है। नास्तिक लोगों की पर्याप्त निन्दा की है तथा आस्तिक सज्जनों की

[15] अहिबुध्न्य संहिता 37/28–29

[16] शिशुपालवधम्, प्रथम सर्ग श्लोक 37, 38

विशद् प्रसंशा की है। देशोद्धार के लिए किया गया प्रयत्न शरणागत वत्सलता एवं ईश्वर का अनुग्रह प्रदान करती है।

"शिशुपालवधम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग में महर्षि नारद द्वारा वर्णित शिशुपाल के अत्याचारों से निदान पाने का आत्मनिवेदन स्तुत्य है। वे वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण जी से कहते हैं–

"तदेनमुल्लङ्घितशासनं विधेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम्।
शुभेतराचारविपतित्वमापदो–
नियातनीया हि सतामसाधवः।।
ओमित्युQवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचंनभ–
स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दौ श्रियं विभ्रति।
शसूणामनिशं विनाशपिशुनः कुद्धस्य चैद्यं प्रति।
व्याम्नीवभ्रकुचिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदप।।"[17]

अर्थात् "ब्रह्माजी की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले इस शिशुपाल को यम के भवन का अतिथि बनाइये अर्थात् नष्ट कीजिए। क्योंकि दुराचार के कारण परिपक्व आपत्ति वाले दुष्टजन, सज्जनों द्वारा मारे जाने योग्य होते हैं।"

"महर्षि नारद के इस प्रकार इन्द्र का सन्देश वचन कहकर, आकाश में प्रस्थित होने पर भगवान कृष्ण ने महर्षि नारद से कहा–'आपका वचन मुझे स्वीकार हैं'। शिशुपाल के प्रति क्रुद्ध हुए श्रीकृष्ण के मुखमण्डल पर शत्रुविनाश के सूचक केतु ने भ्रृकुटि के बहाने से स्थान ग्रहण किया।"

अर्थात्, अनाचार का विनाश करना ही प्रातिकूलस्य वर्जनम्' कहलाता है।

3. रक्षिष्यतीति विश्वास :– "भगवान पिता हैं मैं उनका प्रिय पुत्र हूँ। संकट के समय क्या पिता द्वारा कभी पुत्र की उपेक्षा संभव है? अतः भयंकराति भयंकर परिस्थिति में भी वे मेरी रक्षा से कभी चूकेंगे नहीं, अवश्य ही दुःख महोदधि से मुझे उबारेंगे।"

इस प्रकार का दृढ़ विश्वास ही तृतीय शरणागति–भगवत्कृपा है। गीता ये श्रीकृष्ण जी ने कहा है '

"योगक्षेमं बह्याम्यहम्।"[18]

अर्थात् मैं भक्तों का योगक्षेम वहन करता हूँ।

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि युगे–युगे।।"[19]

'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में महर्षि नारद मुनि ने भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन इसी 'रक्षिष्यतीति विश्वासः' की उदारत भावना से किया है। यथा

"उदासितारं निग्रहीतमानसैः, गृहीत मध्यात्मदृशा कथ†चन।
बहिर्विकारं प्रकतेः पृथग्विदुः, पुरातन रवां पुरूषं पुराविदः।।"[20]

अर्थात्, प्रस्तुत श्लोक में महर्षि नारद ने, भगवान श्रीकृष्ण को 'सांख्य–पुरूष तत्व' के रूप में धर्म की रक्षार्थ प्रतिष्ठित किया है। आप उदासीन महदादि तत्वों–(पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि, (त्वक्–चक्षु–जिह्वा–घ्राण–वाक्, पाणि–पाद–वायु–उपस्थ–मन,
स्पर्श–रूप–रस–गन्ध–शब्द, बुद्धि, अहंकार, चित्त) विकारों से भिन्न तथा मूल प्रकृति से पृथक पुरातन विज्ञान धन पुरूष कहे गये हैं।

[17] शिशुपालवधम्' चतुर्दशः सर्व श्लोक 73 एवं 75

[18] गीता 9/22

[19] गीता 4/8

[20] शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 36

4. **गोप्तुत्ववरणम्** :– प्रभु के अतिरिक्त किसी अन्य के आगे हाथ न पसारना 'गोप्तृत्ववरणम्' कहलाता है। रक्षा के लिए किसी दूसरे का सहारा न लेना अर्थात् एकमास ईश्वर को ही अपना रक्षक स्वीकार करना, भगवत्कृपा प्राप्त का परिचायक है।

'शिशुपालवधम्' महाकाव्य का शुभारम्भ इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए महाकवि माघ ने किया है। शिशुपाल के अत्याचारों से सारा जगत् जब पीड़ित होने, लगा, देव, भक्त, सन्त एवं सज्जनों का अपमान होने लगा तब इन्द्र ने अपनी रक्षा के लिए तथा विश्व का कल्याण करने के लिए अपना सन्देश महर्षि नारद के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण के समक्ष सम्प्रषित कर प्रथम सर्ग का शुभारम्भ हुआ है –

"लघूकरिष्यन्नतिभार भXरामभूंकिल एवं विदिवादवातारः।

उदूढकोलत्रितयेन साम्प्रतं गुरूर्धरित्वी क्रियतेतरं त्वया।।"[21]

5. आत्मनिक्षेपः– आत्मनिक्षेप का अर्थ है– 'अपने जीवन को प्रभु के हाथ में सौंप देना। मन, वचन और कर्म से निष्काम प्रभु–सेवा में तत्परता ही आत्म–निक्षेप कहलाता है। श्रीमद्भगवगीता इसी आत्मनिक्षेप का साक्षात्कार कराती है। यथा

"मनः संयम्य मच्चित्तोयुक्त आसीत मत्परः।[22]

'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में इसी शरणागतिः भगवत्कृपा की आकाँक्षा धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ में भगवान श्रीकृष्ण जी से की है–

"किं विधेयमनया विधीयतां त्वत्प्रसादजितयार्थ सम्पदा।

आधिशासक जगत्त्रयस्व मामाश्रवोऽस्मि भवतः सहानुजाः।।"[23]

अर्थात् "आपकी कृपा से प्राप्त इस धन–सम्पदा द्वारा मुझे क्या करना है, कृपापूर्वक आप ही निर्देश करें। आप तीनों लोकों के शासक हैं। कृपया मुझे भी शिक्षा दीजिए। हम सवान्धव आपके आज्ञाकारी हैं।"

6. कार्यण्यम :– कार्यण्य (दैन्य) शब्द का अर्थ है– आर्तस्वर से प्रभु की प्रार्थना करना। भगवान को यह भाव अत्यन्त प्रिय है। अपना पृथक अस्तित्व मिटा डालना ही दैन्य की पराकाष्ठा है।

निष्कर्ष :–'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में देवर्षि नारद ने भगवान श्रीकृष्ण जी को पूर्ण योगेश्वर, पूर्ण ऐश्वर्य सम्पन्न एवं पुरातन पुरूष माना है। लोकोद्वारा की भावना लिए स्वयं दैन्य–पराकाष्ठा की प्रतिमूर्ति बनकर जगत्पिता श्रीकृष्ण की महिमा का महर्षि नारद ने गुणगान निम्न प्रकार से किया है –

"इति ब्रुवन्तं तमुवाच स व्रती,

न वाच्यमित्थं पुरूषोत्तम त्वया।

त्वमेव साक्षात्कारणीय इत्यतः

किमस्ति कार्यं गुरू योगिनामपि।।"[24]

अर्थात् महार्षि नारद जी कहते हैं–

"योगी एवं साधक कार्यण्य भाव (दैन्य भाव) से आपका (श्रीकृष्ण जी का) दर्शन करने के लिए साधनात्मक प्रयास करते हैं, तब कहीं जाकर आपका कृपार्णव दर्शन सुलभ हो पाता है, ऐसा महनीय विराट पुरूष मेरे नेत्वों के समक्ष है और मैं उनका दर्शन करने में सफल

[21] शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 33
[22] गीता 6/14
[23] शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 11
[24] शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 31

हो जाता हूँ, तो यह मेरे लिए परम हर्ष एवं सौभाग्य का विषय है।"

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक प्रथम
2. शिशुपालवधम्' चतुर्थ सर्व, श्लोक 47
3. शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 33
4. शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 34, 35
5. केनोपनिषद् 3/1
6. शिशुपालवधम्' द्वितीय सर्व, श्लोक 59
7. ऋग्वेद 7/23/5
8. शिशुपालवधम्' चतुर्दशः सर्व, श्लोक 6
9. शिशुपालवधम्' चतुर्दशः सर्व, श्लोक 11
10. अहिर्बुध्न्यसंहिता', 37/28–29
11. शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 37, 38
12. शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 73 एवं 75
13. 'श्रीमज्भागवतगीता, 9/22
14. 'श्रीमज्भागवतगीता, 4/8
15. शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 33
16. शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 36
17. श्रीमज्भागवतगीता, 6/14
18. शिशुपालवधम्' चतुर्दशः सर्व, श्लोक 11
19. शिशुपालवधम्' प्रथम सर्व, श्लोक 31

राजस्थान में महिला एवं बाल कल्याण कार्यक्रमों का प्रशासन

नेहा .शोधार्थी लोक प्रशासन विभाग
श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला विश्वविद्यालय, विद्यानगरी, झुन्झुनू, राजस्थान

भारतीय समाज में महिलायें प्रारम्भ से ही मानव कल्याण तथा सामाजिक विकास की पोषक रही

है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने मानव कल्याण को सर्वोपरि माना है। समाज शास्त्रियों के अनुसार महिलाओं के प्रति मनोभाव मह +इलय + आ है। इसका अर्थ श्रेष्ठ या पूजा है। अर्थात पूज्य और श्रेष्ठ जो है वहीं महिला है वेदों में नारी का गौरव अनेक प्रकार से वर्णित है। ''स्त्री ही ब्रह्मा व भूवति।''

सरकार और स्वयंसेवी संगठनो को ऐसी महिलाओं के लिए आवास की व्यवस्था करनी चाहिए जो पति और ससुराल वालों के अत्याचार से तंग आकर घर छोडना चाहती है। महिलाओं द्वारा उनके प्रति की जाने वाली हिंसा को बर्दाश्त करने का एक कारण आर्थिक भी है यदि ऐसी महिलाओं के लिए रोजगार एवं नौकरी की व्यवस्था की जाए तो वे अपने प्रति की गयी हिंसा को सहन नहीं करेगी और आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करेगी।

दूसरी ओर महिलाओं को भी निष्क्रिय रूप से अत्याचार नहीं सहना चाहिए, वे अपने दमन और शोषण के प्रति जागरूक हो, उनका विरोध करें, न्यायालय, कानून एवं अपने परिजनों से मदद मांगें। उनके द्वारा अत्याचार सहने का प्रभाव उनके बच्चों पर भी पडता है और उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। अत सर्वप्रथम तो स्वयं महिलाओं को ही उठना होगा, जागना होगा, विरोध प्रकट करना होगा तभी वे संकट की स्थितियों से मुक्त हो पाएंगी।

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को निर्धारित करने में समाज के साथ साथ राज्य की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है एवं समय के साथ साथ राज्य की भूमिका सकारात्मक होती गई है। प्रारम्भिक स्थिति को छोडकर ऐसा नहीं माना जा सकता कि राज्य और उसकी संस्थाएं सामाजिक समस्याओं और निर्बलों के प्रति उदासीन रही है। प्राचीनकाल से ही राज्य चाहे उसका स्वरूप कुछ भी रहा हो, अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति सजग हमेशा रहा हैं। शासकों एवं प्रशासन की कुछ प्रतिबद्धताएं इतिहास के हर चरण में देखनें को मिलती है। वैश्विक स्तर पर लोकतान्त्रिक व्यवस्था जैसे जैसे सुदृढ होती गई, महिलाओं को पुरूषों के समकक्ष लाने की मुहिम में भी तेजी आती गई। विधि एवं न्याय के समक्ष समानता, लोक सेवाओं में नियुक्ति हेतु समान अवसर, विचार अभिव्यक्ति, निवास, रोजगार आदि की स्वतन्त्रता पारिवारिक सम्पति में हिस्सेदारी, निर्णयन के प्रत्येक स्तर पर समानता, खान पान, रहन–सहन, शिक्षा आदि के क्षेत्र में समानता आदि मामलों में महिलाओं को न केवल पुरूषों के बराबर लाया गया, बल्कि जहाँ कहीं आवश्यकता थी, वहाँ उनकी निष्ठा व सम्मान की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान भी किए गए

भारत में महिलाओं के अधिकारों की प्राप्ति के लिए काफी लम्बे समय से संघर्ष चल रहा है। सदियों से भारत में पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, सती प्रथा, अधिकार विहीनता, रूढिवादिता समाज का अंग रहा है। 19वीं शताब्दी में पश्चिमी शिक्षा के परिणामस्वरूप महिला अधिकारों की मांग जोर पकडने लगी तथा महिलाओं की शिक्षा को बढावा दिया जाने लगा। भारत में 1915 से 1927 के बीच कई महिला संगठनों की स्थापना हुई तथा स्वतन्त्रता के बाद सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए कई संवैधानिक व कानूनी कदम उठायें गये।

भारतीय संसद द्वारा महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए समय–समय पर विभिन्न अधिनियम पारित किए गए। जैसे लगान श्रम अधिनियम 1951 के तहत महिला कर्मियों को अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिए अवकाश दिया जाना चाहिए। खान अधिनियम 1952, विशेष विवाह अधिनियम 1954, हिन्दू

उत्तराधिकार अधिनियम 1956, प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम 1961, ठेका श्रम अधिनियम 1970, समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976, बाल विवाह निषेध अधिनियम 1976, वैश्यावृति निवारण अधिनियम 1986, दहेज निषेध अधिनियम 1986, सती निषेध अधिनियम 1987, प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994, घरेलु हिंसा से महिला की सुरक्षा हेतु अधिनियम 2005 आदि इन अधिनियमों द्वारा महिलाओं को पुरूषों के बराबर समान कार्य के लिए समान वेतन पैतृक सम्पति में महिलाओं को अधिकार, पति या साथ रहने वाले किसी भी पुरूष या उसके सम्बन्धियों की हिंसा या प्रताडना से पत्नी या साथ रह रही किसी भी महिला को सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। भारतीय दण्ड संहिता महिला की सुरक्षा, समान गरिमा के साथ रहने के लिए यदि उसके साथ कोई दुष्कर्म करता है तो भारतीय दण्ड संहिता उसे दण्ड दिलाने के लिए व्यवस्था करती है।

आज विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के योगदान को अपेक्षाकृत विशेष पहचान मिल रही है। उद्योगों व्यापार एवं अन्य क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी एवं तरक्की के रास्ते बढते जा रहे है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में काफी उतार–चढाव आए है। एक समय महिलायों को जटिल बौद्धिक कार्यो के लिए अनुपयुक्त माना जाता था। मगर आज महिलाएं बौद्धिक क्षमता वाले कार्यो में पुरूषों के बराबर है।

स्वतन्त्रता के समय से ही महिलाओं को शैक्षिक अवसरों की उपलब्धि कराना एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम रहा है। परिणामतः 1951 में महिलाओं की साक्षरता का प्रतिशत 7.93 से 1981 में 24.82 तथा 1991 में 32.42 हो गया फिर भी अभी 19 करोड़ 70 लाख महिलाये निरक्षर है।

महिलाओं को राजनीतिक रूप से सबल बनाने के लिए अप्रैल 1993 में 74वें संविधान में स्थानीय निकायों में प्रत्येक स्तर पर महिला सदस्यों के लिए 1/3 सीटें आरक्षित करना है। ताकि वे देश के राजनीतिक, सामाजिक जीवन में सक्रिय भागीदारी कर सके। भारतीय संविधान के अनुसार राजनीतिक रूप से महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र में अपने अधिकार का प्रयोग करने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

आधुनिक युग में नारी ने पुरूषों के समकक्ष स्थान एवं अधिकार पाने के लिए कई स्त्री आन्दोलनों एवं संगठनों को जन्म दिया है। दुनिया के दूसरे देशों में स्त्री स्वातंत्रय आन्दोलन चले और स्त्रियों को अपने अधिकार पाने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा। भारतीय समाज भी एक पुरूष प्रधान एवं पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था को मानने वाला समाज है जिसमें स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित रहा है। आर्थिक रूप से वे सदैव पुरूषों पर निर्भर रही है तथा उन्हें शिक्षा एवं बाहय जगत् से भी दूर रखा गया है। किन्तु पिछले कुछ वर्षो से भारत में कई महिला संगठन बने है, प्रमुख रूप से नगरों में। इन संगठनों ने कई मुद्दे उठाए है तथा उनको लेकर आन्दोलन एवं प्रदर्शन भी किए गए। इन मुद्दों में पुरूषों के समान स्त्रियों को अधिकार देने तथा दहेज के कारण महिलाओं को जला देना या प्रताड़ित करना, बलात्कार, शोषण, हत्या, स्त्रियों के साथ अमानवीय व्यवहार एवं उन्हें बेइज्जत करना तथा पुलिस की ज्यादतियां आदि प्रमुख है। इन मांगों के समर्थन में प्रदर्शनों, संगठनों एवं कार्यक्रमों में भाग लेने वाली अधिकांश महिलाएं मध्यवर्गीय है। इनमें से कई कामकाजी महिलाएं है। महिलाओं ने बाहर ही नहीं परिवार में भी समानता एवं अपने अधिकारों की मांग की हैं। शिक्षित एवं स्वयं अर्जन करने वाली महिलाएं पहले की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है विवाह शादी के चयन में

अपनी पसन्द या नापसन्द को अधिक महत्व देती हैं, पहले की तरह इन पर कोई भी व्यक्ति जीवन साथी के रूप में थोपा नहीं जाता। पारिवारिक निर्णयों में सलाह ली जाती है।

राजनेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं महिला संगठनों ने नारी चेतना पैदा करने एवं उन्हे अपने अधिकारों से अवगत कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसी के परिणामस्वरूप सन् 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया। सन् 1971 में भारत सरकार ने स्त्रियों की प्रस्थिति के बारे में एक समिति गठित की। जिनसे 1974 में स्त्रियों की उन्नति के बारे में कई महत्वपूर्ण सुझाव दिए। जिनका सर्वत्र स्वागत किया गया। अनेक राज्यों में महिला विकास निगम स्थापित किए गए है जो महिलाओं को तकनीकी परामर्श देने, बैंक तथा अन्य संस्थानों से ऋण दिलाने एवं बाजार की सुविधा दिलाने का प्रयत्न करते है।

राजस्थान में महिलाओं के विकास की दिशा में महिला विकास अभिकरण के द्वारा महिलाओं की विभिन्न समस्याओं के निराकरण के प्रयास किए गए। राजस्थान राज्य में महिला विकास कार्यक्रम 1984 में 6 जिलों क्रमशः जयपुर, जोधपुर, अजमेर, उदयपुर, भीलवाडा एवं बांसवाडा में प्रारंभ किया गया। कार्यक्रम के सकारात्मक परिणामों से प्रोत्साहित होकर राज्य सरकार द्वारा यह कार्यक्रम प्रदेश के समस्त 32 जिलों में संचालित किया गया। महिला विकास कार्यक्रम का वृहद् लक्ष्य जानकारी, शिक्षा एवं प्रशिक्षण के माध्यम महिलाओं का आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण करना एवं उन्हे विकास की मूलधारा से जोडना है।

वर्तमान में राजस्थान सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा महिला विकास के लिए किशोर बालिका योजना, सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बच्चों के विकास की योजना, महिला चेतना योजना, महिलाओं के लिए सरकारी सेवाओं में आरक्षण, महिला शक्ति अवार्ड, सामूहिक विवाहों हेतु अनुदान, कृषक महिला प्रशिक्षण, बाल पंचायत, महिला समृद्धि योजना, महिला स्वास्थ्य जागरूकता अभियान, महिला रोजगार योजना, महिलाओं की आयवृद्धि एवं रोजगार की योजना (नौराड), राष्ट्रीय महिला कोष, महिलाओं के प्रशिक्षण एवं रोजगार कार्यक्रम हेतु सहायता (स्टेप), बचत एवं साख समूह, राष्ट्रीय महिला कोष, किशोर बालिका योजना लाडली, राजलक्ष्मी योजना, एकीकृत जनसंख्या व विकास परियोजना (आई.पी.डी.) बालिका समृद्धि योजना, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना, कार्यशील महिलाओं के लिए छात्रावास, महिला सदन महिलाओं के लिए अल्पकालीन आवास योजना, विधवाओं की पुत्रियों के विवाह पर सहायता, वृद्धावस्था विधवा एवं पेंशन, सरस्वति योजना, जनमंगल योजना एवं निःशुल्क पाठयपुस्तक वितरण योजना, आपकी बेटी योजना, राजस्थान मॉ जननी सुरक्षा योजना, वंदे मातरम् योजना, चलों गांव की ओर इत्यादि योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त प्रदेश सरकार द्वारा पूर्व सैनिकों की पुत्रियों को छात्रवृति प्रदान करना, राहत कार्य स्थलों पर महिलाओं हेतु शिक्षण की व्यवस्था, महिला उद्यमिता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम, नहरी भूमि पर पति पत्नी का संयुक्त अधिकार, राजकीय सेवाओं में महिलाओं के लिए तीस प्रतिशत आरक्षण, महिलाओं के लिए भरण पोषण एवं अनुकम्पा नियुक्ति बसों में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण, महिला प्रधान और महिला सरपंचों को समान पारिश्रमिक कानून के असरदार निरीक्षण के लिए इन्स्पेक्टर के रूप में नियुक्त करने का निर्णय, 65 वर्ष से कम उम्र की महिलाओं को करों में 5 हजार रूपये की छूट प्रदान की जाती है।

अध्ययन की आवश्यकता

भारत में महिला एवं बाल कल्याण हेतु अनेक कदम उठाये गये हे। 8 मार्च 2000 को महिला नीति घोषित करने वाला राजस्थान प्रथम राज्य बना। महिला एवं बाल कल्याण के उद्देश्य से निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर अध्ययन की आश्यकता को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

1. राजस्थान में महिला एवं बाल कल्याण कार्यक्रमों में लिये जाने वाले निर्णयों में आने वाली कठिनाई का अध्ययन करना है।
2. महिलाओं व बालकों को विकास की दृष्टि से अधिक सचेतत व जागरूक बनाना इस अध्ययन की आवश्यकता है।
3. महिला एवं बाल विकास विभाग की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक स्थिति को जानना इस अध्ययन का उद्देश्य है।
4. महिला एवं बाल कल्याण कार्यक्रमों को लागू करने में आने वाली कठिनाईयों का आंकलन करना तथा उनकी प्रभावी भूमिका के लिए सुझाव देना।
5. महिला एवं बाल विकास योजनाओं को प्रशासन द्वारा प्रभावी रूप से लागू करने के पश्चात राज्य की स्थिति में आये परिवर्तन का अध्ययन करना है।
6. महिला एवं बाल विकास को प्रोत्साहन देने के लिए सम्बन्धित विभागों के बीच प्रभावी समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से अध्ययन की आवश्यकता है।
7. पोषाहार स्वास्थ्य, शिक्षा द्वारा बच्चों के स्वास्थ्य और पोषाहार सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति माताओं को योग्य बनानो के उद्देश्य से अध्ययन की आवश्यकता है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. कार्यक्रम के उदय, उद्देश्य, रणनीति व्यूह रचना तथा इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रदान की जाने वाली सेवाओं का वर्णन व विश्लेषण करना।
2. कार्यक्रम प्रबन्धन तथा प्रशासन हेतु राज्य, जिला खण्ड, परियोजना व ग्राम स्तर पर कार्यरत विभागों संस्थाओं व संगठनों के गठन, दायित्व संरचना व भूमिका का मूल्याकंन करना।
3. आंगनबाडी केन्द्रों जो कि इस कार्यक्रमों के आधार है कि कार्यकरण व्यवस्था, समय सारणी आदि की आनुभाविक अध्ययन व शोध करते हुए कमियों व बाधाओं को इंगित करते हुए निर्दिष्ट करना।
4. कार्यक्रम की सफलता कार्मिक वर्ग की कार्य कुशलता व दक्षता पर निर्भर करती है। अतः इस शोध का उद्देश्य परियोजना स्तर व आंगनबाडी में कार्यरत मानवीय संसाधन की प्रशिक्षण व्यवस्था का मूल्याकंन करना।
5. निर्धारित शोध पद्धति (आनुभाविक, वर्णनात्मक, गवेषणात्मक व विश्लेषणात्मक) को लागू करते हुए कार्यक्रमों के प्रबन्धक, क्रियान्वयन, लाभार्थियों के चयन इत्यादि से सम्बन्धित समस्याओं/बाधाओं को निर्दिष्ट करना तथा यथा सम्भव उपयोगी व व्यवहारिक सुझाव प्रस्तुत करना जिससे कि महिला एवं बाल कल्याण कार्यक्रम अधिक परिणामोन्मुख व उपयोग बन सकें।
6. ऐसी सम्भावनाओं की खोज करना जिसमें कि गैर सरकारी संगठनों का अधिकतम सहयोग अर्जित करते हुए इस कार्यक्रम की प्रभाविता व उपयोगिता में वृद्धि की जा सकें।

उपलब्ध साहित्य की समीक्षा

सम्बन्धित अध्ययन विषय से परिचित होने मुख्य समस्या को पहचानने व अध्ययन की एक निश्चित योजना बनाने के लिए विषय से सम्बन्धित साहित्य का गहन अवलोकन किया गया है। अवलोकित पुस्तकें अध्ययन विषय से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर केन्द्रित रही। ये पुस्तकें विषय के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक स्वरूप को समझने में सफल रही है। अध्ययन हेतु अवलोकित साहित्य में से निम्नलिखित महत्वपूर्ण है :–

यू.एन.डी.पी. द्वारा प्रकाशित ''ह्यूमन डवलपमेन्ट रिपोर्ट ने व्यक्ति को विशेषकर महिला एवं बच्चों के कल्याण कार्यक्रमों को केन्द्र में लाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिसके माध्यम से वर्ष 1995 में प्रथम बाल लिंग आधारित विकास सूचकांक को दर्शाया गया है। रिपोर्ट के माध्यम से 174 से अधिक देशों के मानव विकास के विभिन्न पहलुओं पर तथ्यात्मक सूचनाएं देकर देशों की वरीयता के क्रम में दर्शाया गया है। इस रिपोर्ट में बाल कल्याण के विषय को प्राथमिकता दी गयी है।

वर्ष 1999 में बालकों के स्तर के बारें में गठित संयुक्त राष्ट्र संघ के आयोग के प्रतिवेदन में यह अनुशंसा की गई है कि देश की भावी प्रगति के लिए आवश्यक है कि बाल सेवा कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने का भरसक प्रयास किया जाना चाहिए।

डॉ. दिनेश शर्मा एवं पुष्पा शर्मा ने अपनी पुस्तक **राजस्थान आज तक** आचमन पब्लिकेशन 2007–08 में महिलाओं के कल्याण की दिशा में किये जा रहे राजस्थान के प्रयासों विभिन्न योजनाओं कार्यक्रमों की आवश्यक जानकारी के साथ ही राज्य के अथक प्रयासों पर विशेष प्रभाव डालती है।

परिकल्पना एवं अवधारणाएँ

किसी भी शोध के आरम्भ करने से पूर्व परिकल्पनाएँ करनी पडती है। ताकि उनके प्रकाश में शोध अध्ययन के मार्ग को प्रशस्त किया जा सकें तथा यह ज्ञात हो सकें कि वे शोध के निष्कर्षो (कसौटी) पर खरी उतरी है। अथवा नहीं?

वर्तमान प्रस्तावित शोध अध्ययन में निहित मुख्य अवधारणाओं को निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया है –

1. महिला एवं बाल कल्याण कार्यक्रम बहुआयामी तथा कल्याण उन्मुख कार्यक्रम में यदि इसका क्रियान्वयन प्रभावी रूप से किया जाये तो निसंदेह बालकल्याण तथा महिला विकास सम्भव है।
2. कार्यक्रम को लागू करने वाला आंगनबाडी कार्यकर्ता, प्रयेता इत्यादि का इस कार्यक्रम में प्रति वचनबद्ध व लाभार्थी वर्ग के लिए संवेदन शील होना आवश्यक है।
3. इस कार्यक्रम के निष्पादन में महिला एवं बाल विकास विभाग स्वास्थ्य व चिकित्सा विभाग, शिक्षा विभाग आदि संलग्न है। उपरोक्त सभी विभागों में प्रभावी व समयबद्ध समन्वय व सहयोग अपेक्षित है।
4. इस कार्यक्रम में गैर सरकारी संस्थाओं का जुडाव भी लाभदायक हो सकता है।
5. कार्यक्रम को प्रभावित करने के लिये पर्याप्त धनराशि का आवंटन और उसके सदुपयोग को सुनिश्चित करना जरूरी है।
6. महिलाओं को शिक्षित एवं जागरूक बनाया जाना बाल कल्याण के लिये एक महत्वपूर्ण शर्त है।

अध्ययन का क्षेत्र

शोध अध्ययन का प्रमुख क्षेत्र जयपुर जिले में खण्ड स्तर पर कार्यरत परियोजना को रखा गया। महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा बालकों के कल्याण हेतु चलाये जा रहे बाल विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन का अध्ययन किया गया।

6 माह से 6 वर्ष तक के बच्चों के अलावा भी समेकित बाल विकास कार्यक्रम सामाजिक रूप से पिछडे गांवो और शहरी तंग बस्तियों में रहने वाली गर्भवती और दूध पिलाने वाली माताओं की जरूरी आवश्यकताओं का भी ध्यान रखता है। किसी भी परियोजना का चुनाव करते समय आर्थिक रूप से पिछडे अकाल पीडित क्षेत्र और ऐसे क्षेत्र जहां सामाजिक सेवाओं के विकास को मजबूी की जरूतर हो, को प्राथमिकता दी जाती है।

शोध प्रविधि

किसी भी सामाजिक अनुसंधान को सम्पन्न करने के लिए कुछ सुदृढ प्रविधियों एवं शैक्षणिक तकनीकीयों का प्रयोग करना आवश्यक है। ताकि शोध अध्ययन के निष्कर्षो को समय की कसौटी पर खरा उतारा जा सकें तभी शोध कार्य तर्क संगत होता है। सामाजिक विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो समाज के सन्दर्भ में विशिष्ट ज्ञान को जिसमें प्रयुक्त प्रणालियों एवं तकनीकें न केवल विशिष्ट व तर्क संगत होती है। वरन् उन्हें अध्ययन के लिये दोहराया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों का उपयोग किया गया है।। प्रस्तुत शोध अध्ययन प्रस्ताव राजस्थान के जयपुर जिले में संचालित महिला एवं बाल कल्याण कार्यक्रम के सन्दर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाना है। इसके लिये सम्बन्धित पुस्तकों, लेखों, सन्दर्भ ग्रन्थों व सरकारी प्रतिवेदनों दस्तावेजों व विज्ञप्तियाँ आदि के उपयोग का प्रयास किया गया है।।

शोध अध्ययन हेतु प्राथमिक स्त्रोतों के लिए जयपुर जिले के राजनीतिक, उच्च अधिकारियों का साक्षात्कार लिया गया है।। इसी तरह लाभार्थियों, चयनार्थियों एवं मध्यम व निम्न श्रेणी कार्मिक वर्ग इत्यादि से अनुसूची के माध्यम से ब्यौरा एकत्रित किया गया है।। जिसमें 50 पुरूष, 50 महिला एवं 50 बालकों को शामिल किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशियल वर्क इन इण्डिया, भारत सरकार
2. खान, एम. ए,, इन्टरप्रेन्यूरिल डवलपमेन्ट प्रोग्राम इन इण्डिया, न्यू देहली कनिष्ठ पब्लिशिंग हाऊस, 1992.
3. खन्ना, एस, के वीमेन एण्ड द ह्यामन राइटस न्यू देहली कॉपनवेल्थ पब्लिशर्स, 1998
4. खन्ना, गिरिजा एण्ड वारहो, इण्डियन वीमेन टुडे, न्यू देहली विकास, 1978
5. इम्पीरियल गजट ऑफ इण्डिया, द इण्डियन एम्पायर, वॉल्यूम–21, द क्लेरेन्डोन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1908
6. इन्द्रा, एम, एन, द स्टेट्स ऑफ वीमेन इन इण्डिया, मिनर्वा बुक मद्रास, 1940

ई कॉमर्स एवं इसका विकास

Ruchi Gupta
M.Phil. (Commerce) .APSU University Rewa.

इलेक्ट्रॉनिक कॉमर्स इंटरनेट जैसे बडे इलेक्ट्रनिका नेटवर्क पर व्यापार करने का एक तरीका है। ई कॉमर्स के अंतर्गत वस्तुओं या सेवाओ को खरीद या बिक्री इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम जैसे इंटरनेट के द्वारा होता है। यह इंटरनेट पर व्यापार है। ई कॉमर्स को व्यापक रुप से इंटरनेट पर उत्पादो की खरीददारी और ब्रिकी का बाजार माना जाता है।

ई कॉमर्स के जरिये देश विदेश में भी काफी व्यापार होता है जो वस्तु एवं सेवाओं को ग्राहक एवं उपभोक्ता के पास इंटरनेट के माध्यम से प्रदान किये जाते है। इंटरनेट और मोबाइल का प्रसार और आनलाइन भुगतान की बढती स्वीकार्यता तथ अनुकूल जनसंख्यिकी से देश के ई कॉमर्स का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित नही हुयी है। ई कॉमर्स के क्षेत्र को और अधिक व्यापक करने के लिए उसके विकास की ओर ध्यान देना आवश्यक है एवं इसका विकास तभी संभव है जब इंटरनेट उपयोगकर्ता की संख्या में वृद्धि हो, देश में अभी लगभग 42 करोड इंटरनेट उपयोगकर्त्ताहैं जो साल 2020 तक करीब 73 करोड हो जाने की संभावना है। वही ई कॉमर्स का बाजार 2 लाख करोड का है। तथ 10 करोड लोग इसका उपयोग करते है लेकिन रिसर्च का कहना है कि 2021 तक देश में यह बाजार 4 लाख करोड से भी अधिक का हो जाने की पूरी संभावना है। यह बाजार का पूर्ण प्रभुत्व तभी सम्भव है जब ई कॉमर्स द्वारा दी जाने वी सुविधाओं का सही तरह से संचालन हो। वर्तमान समय में ई कॉमर्स से होने वाली समस्याओं की शिकायतों का बोलबाला बढता ही जा रहा है। नेशनल कंज्यूमर हेल्पलाइन के अनुसार 2017 में ई कॉमर्स से जुडी 80000 शिकायते आ चुकी है। इसमें से 70 फीसदी शिकायते डिलीवरी में गडबडी, नकली समान और झूठे आफफर संबंधी थी।

शोध प्रविधिः– शोध कार्य को करने के लिए शोध विधियों का प्रयोग किया गया है आंकडो का संग्रहण द्वितीय विधि से किया गया है इसमें अपने क्षेत्र से संबंधित व्यक्तियों से साक्षात्कार करके बेबसाइट का प्रयोग , टेलीविजन एवं सामाचाार पत्रों में प्रकाशित सूचनाओं का आधार बनाकर जानकारी प्राप्त की गयी है। वर्गीकरण सारणीयन एवं विश्ले ाण विधि द्वारा निष्कर्श निकालने का प्रयास किया गया है।

परिकल्पनाः– समस्या से संबंधित समस्त तथ्यों को आसानी से एकत्रित किया जा सकता है अतः इसके लिये शोधार्थी को सुव्यवस्थित रुपरेखा एवं कौशल ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध में निम्न परिकल्पना को लेकर आगें बढने का प्रयास किया गया है।

समस्यायें एवं कठिनाईयॉः– अधिकांश उपभोक्ता एवं ग्राहको का ई कॉमर्स व्यापार के प्रति अविश्वास का होना ह तथ अन्य समस्याऐं इस प्रकार से है।

1. **स्मार्ट फोन का आभावः–** ई कॉमर्स का व्यापार इलेक्ट्रानिक माध्यम से किया जाता है इसके लिए स्मार्ट फोन की आवश्यकता होती है जो हर व्यक्ति के पास उपलब्ध हो सम्भव नही है जिस कारण भी व्यक्ति ऐसा व्यापार करने में अपने आप को असमर्थ पाता है।
2. **इंटरनेट की सुविधा का अभावः–** उपभोक्ता या ग्राहक के पास केवल मोबाइल की आवश्यकता ही पर्याप्त नही है बलकि इंटरनेट की भी सुविधा होना आवश्यक है जो ई कॉमर्स के व्यापार को सम्पन्न करने में सहायक होती है।

3. **व्यवहार करने संबंधी शिक्षा का अभाव**:– माबाइल या कम्प्यूटर एवं इंटरनेट कनेक्शन के साथ ई कॉमर्स के व्यवहार संबंधित शिक्षा का होना भी आवश्यक होता है।
4. **वस्तु या सेवा की डिलवरी संबंधित समस्या**:– इस व्यापार में वस्तु या सेवा की डिलवरी संबंधित समस्या भी उत्पन्न होती है जिससे ग्राहक परेशान होकर इस व्यापार को न करने का निर्णय लेता है।
5. **नकली सामान और झूठे ऑफर संबंधी समस्याएँ**:– इस व्यापार में ग्राहक वर्ग को नकली सामान और झूठे ऑफर संबंधी समस्याओं का सामना करना पडता है। जिससे ग्राहको में ई कॉमर्स के प्रति अविश्वास पैदा हो जाता है।

सुझाव:– प्रस्तुत शोध अध्ययन ई कॉमर्स एवं इसका विकास व्यावसायीकरण की नवस्थिति विवेचना पर आधारित है–

1. ई कॉमर्स की शिकायतों के लिए रेगुलेटर की आवश्यकता ।
2. सरल एवं स्पष्ट प्रचार प्रसार का निर्धारण किया जाना चाहिए।
3. इस व्यापार से संबंधित व्यवहार में उत्पन्न होने वाली समस्या का समाधान नि:शुल्क किया जाना चाहिए।
4. नकली सामान एवं झूठे ऑफर जैसी चीजों को निष्कर्श किया जाना चाहिए।
5. ई कॉमर्स के जरियें कियें जाने वाले व्यवहार की प्रकिया का संक्षेप में वर्णन किया जाना चाहिए।

निष्कर्श:–ई कॉमर्स व्यापार के प्रति अविश्वास एवं इसको कम महत्व का समझना ऐसा निष्कर्श है जो ई कॉमर्स के विकास के लिए जातक सिद्ध होते है। अगर हम भारत को डिजिटल इण्डिया बनाना चाहते है तो प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा बनाये गये कार्यक्रम '' मेक इन इण्डिया'' को देखते हुये बनाए जाने वाले उत्पादों की गुणवत्ता से कोई समझौता नही किया जाना चाहिए। ई कॉमर्स को देखते हुये उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की समीक्षा की जा रही है।

वर्तमान में ई कॉमर्स इंटरनेट के सबसे महत्तवपूर्ण पहलुओ में से एक है। ई कॉमर्स उपभोक्ता को समय या दूरी की बिना कोई बाधा के साथ वस्तुओ और सेवाओं का इलेक्ट्रानिक रुप से आदान प्रदान करने का भरपूर्ण प्रयास किया जाता है इंटरनेट पर सामान खरीदना और बेचना ई कॉमर्स के सबसे लोकप्रिय उदाहरणों मेंसे एक है।

संदर्भ ग्रंथ:–

1. समाचार पत्र (11/10/2017)
2. विकीपीडिया

वेदों में पर्यावरण

विनय कुमार शुक्ल .शोधार्थी
संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

वेद समस्त वैदिक वाङ्मय का बोधक शब्द है और इसी रूप में उसका प्रयोग भी होता आया है जैसे–व्याकरण शास्त्र या दर्शनशास्त्र आदि में शास्त्र शब्द उसके पूर्व में जुड़े हुए शब्द का द्योतन करता है,वैसे ही अपने मूल में वेद शब्द व्यवहृत होता हैं । वेद शब्द की उत्पत्ति ज्ञानार्थ विद् धातु से घञ् प्रत्यय लगने से हुयी हैं। अतः वेद का अर्थ है, ज्ञान।

आधुनिक पर्यावरण विदों नें भी पर्यावरण को अपने– अपने अनुसार परिभाषित करते हुए सुरच्छित जीवन जीने की सलाह दी है। आधुनिक विद्वान पर्यावरण शब्द के स्थान पर अंग्रेजी में इन्वारमेंट शब्द का प्रयोग करते हैं जिसका प्रादुर्भाव फ्रेंच के क्रिया शब्द म्दअपतवउमदज से हुआ है जिसका अर्थ है ज्व `नततवनदक पर्यावरण =(घेरना) अर्थात् वह घेरा जो चारों ओर से ढंके हो। इस प्रकार "पार्यावरण वह परिवृति है जो मानव को चारो ओर से घेरे हुए है तथा उसके जीवन तथा कियाओं पर प्रभाव डालती है।''

आज इक्कीसवी शताब्दी में पर्यावरण संरक्षण एक ज्वलंत समस्या है जिसका विचार भावना मानव मस्तिष्क में विद्यमान है। पर्यावरण संरक्षण के लिए मानव वर्तमान समय में विज्ञान पर अत्यधिक निर्भर है, परन्तु जनमानस का ध्यान पर्यावरण संरक्षण के प्रति आकृष्ट करने का एक माध्यम भारत का अलौकिक साहित्यिक समुदाय अर्थात् वैदिक साहित्य भी हो सकता है।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्– यदि इस शब्द पर हम विचार करें तो समस्त चेतन–अचेतन प्राणिमात्र की मूल ज्ञान राशि हैं।

यह हमें कर्म से ज्ञान तक जाने का मार्ग प्रशस्त कराता है। अतः यह पर्यावरण के रहस्यों पर प्रकाश डालने के उद्देश्य में भी मार्गदर्शक हो

सकता है। यह आधुनिक युग का एक महत्त्वपूर्ण शोध विषय है जिस पर अनेक पौर्वापर्य विद्वानों ने कार्य किया है, तथा अनेकों विद्यार्थी व अन्य समुदाय वर्तमान समय में कार्यरत हैं। पर्यावरण संरक्षण हेतु आधुनिक अन्वेषण शाखायें महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन कर रही है।

वर्तमान युग में पर्यावरण के सम्यक अध्ययन हेतु आंग्ल भाषा में अनेक ग्रंथ उपलब्ध है। साथ ही संस्कृत साहित्य में भी यह विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं इन ग्रंथों में वर्णित सिद्धांतों का मूलस्रोत वैज्ञानिक अन्वेषणों पर आधारित हैं। वैदिक वाङ्.मय पूर्व में जिस प्रकार से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आर्यो का मार्गदर्शन करता आया है उसी प्रकार पर्यावरण संरक्षण जैसें महान कार्य के संदर्भ में भी कुछ सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है। सृष्टि के विकास एवं संचालन में पंचतत्त्व आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी का अलौकिक संतुलन ही सृष्टि उत्पत्ति के मूल में द्रष्टव्य होता है क्योंकि किसी एक तत्त्व के अभाव में सृष्टि का संचालन अवरुद्ध होगा ।

कालांतर में इन्हीं का आवरण ही पर्यावरण माना गया है । वैदिक साहित्य में भी मंत्रों के माध्यम से इन्हीं तत्त्वों की उपासना की गई है तथा यज्ञों के विधान के द्वारा इन्हें प्रसन्न रखने तथा इनका संतुलन बनाये रखने के लिए अनेक उपाय बताये गये हैं ।

वैदिक ऋषि प्रकृति के प्रति जागरूक था वह सभी जीवों तथा पदार्थो को प्रकृति का नैसर्गिक अंग समझता था उनके संरक्षण को अपना नैतिक कर्त्तव्य मानता था सृष्ट के आरंभ में ईश्वर ने वेदो का स्मरण कर प्राणि मात्र के कल्याण हेतु उपदेश दिया उस समय प्रकृति के सभी अंगों में साम्यावस्था थी। अतः सर्वप्रथम हम वेदों का अध्ययन कर के ही पर्यावरण को समझ पायेंगें।

ऋग्वेद – यह वैदिक साहित्य का सुमेरु है । अन्य तीन वेद किसी न किसी रूप में ऋग्वेद से प्रभावित हैं । प्रारंभ में इसकी पॉच शाखायें थी सम्प्रति केवल साकल शाखा ही उपलब्ध है

इसके दो क्रम हैं । अष्टक और मण्डल । अष्टक क्रम के अनुसार संपूर्ण ग्रंथ आठ आष्टकों में विभक्त है और प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय वर्गों मे विभाजित हैं । अध्यायों की संख्या 64 तथा वर्गों की संख्या 206 है । मंडल क्रम के अनुसार ऋग्वेद 10 मंडलों में विभक्त है। जिनमें 1017 सूक्त हैं और प्रत्येक सूक्त में कई मंत्र हैं तथा मंत्रों की संख्या 10580 है । ऋग्वेद के अनेक सूक्तों मे दार्शनिक तत्त्वों का चिंतन विद्यमान है ।

यजुर्वेद – यजुष गद्यमय मंत्रों को कहते हैं जिसका संकलन यजुर्वेद में है । यजुष का अर्थ है पूजा और यज्ञ । यह दो भागों में विभक्त है । कृष्ण एवं शुक्ल यजुर्वेद । यजुर्वेद वैदिक कर्मकाण्ड का प्रधान आधार है । शुक्ल यजुर्वेद की संहिता को वाजसनेयी संहिता कहते हैं । जिसमें 40 अध्याय हैं तथा कृष्ण यजुर्वेद में 85 शाखायें थी जिनमें केवल 4 उपलब्ध हैं यह वेद ग्रंथ अपने विषय के गंभीरता से ओत–प्रोत है ।

सामवेद – सामवेद का प्रयोग उद्गाता यज्ञ संपादन के समय उद्गीय के रूप मे करता था । ये गान उच्च स्वर में गाये जाते थे । इनमें 1875 ऋचायें हैं जिनमें 1771 ऋचायें ऋग्वेद की हैं शेष 105 मंत्र नवीन हैं । इसमें भी वास्तविक ऋचाओं की संख्या 99 हैं । साम का अर्थ सुंदर सुखकर वचन । सामवेद की अनेक संहितायें थी जिनमें आज केवल तीन ही उपलब्ध हैं सामवेद की उपादेयता वैदिक साहित्य में भरा पड़ा है ।

अथर्ववेद – इस वेद में वैदिक विधियों के द्वारा उपचार तथा मारन, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि मंत्रों का संग्रह है । यह 20 काण्डों में विभक्त है तथा 9 शाखायें थी परन्तु आज दो शाखायें ही शेष हैं । इस वेद को ब्रह्म वेद की संज्ञा से भी जाना जाता है । लौकिक अभ्युदय के साथ पारलौकिक अभ्युदय का प्रतिपादन किया गया है । वेदों में पर्यावरण कि विस्तृत चर्चा है

पर्यावरण के अंतर्गत वायुमंडल, स्थलमंडल, और जलमंडल के सभी भैतिक तथा रासायनिक तत्त्वो को शामिल किया गया है। इस प्रकार पर्यावरण भैतिक एवं जैविक दो तत्त्वो से मिलकर बना है। जैविक पर्यावरण में समस्त जीव जगत् और सभी प्रकार के पौधे सम्मिलित हैं। भैतिक पर्यावरण में मृदा, जल, वायु, प्रकाश और ताप परिगणित होते हैं।

पर्यावरण का परिचय– परि+आवरणं = इति–पर्यावरणम्। पर्यावरण दो शब्दों के मेल से बना है, परितः=चारो ओर आवरण= ढका हुआ, अर्थात् चारो ओर से ढका हुआ। जिसका अभिप्राय यह है कि हमारे चारो तरफ का आवरण जिससे हम सब ढके हूए हैं, जो हमारे चारो तरफ फैलकर आवृत किये हुए हैं इस प्रकार – पर्यावरण वह परिवृत्ति है जो मानव को चारो ओर से घेरे हुए हैं तथा उसके जीवन तथा क्रियाओं पर प्रभाव डालती हैं इस परिवृत्ति में मनुष्य के समस्त घटक वस्तुऍ स्थितियॉ तथा दशाऍ सम्मिलित होती हैं, जो मानव के जीवन को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार प्राणी के चारो ओर जो कुछ भी भौतिक या अभौतिक वस्तुऍ हैं,वह उसका पर्यावरण है। मनुष्य के चारो ओर का परिवेश कई तरह की प्राकृतिक शक्तियों एवं पदार्थो जैसे– सूर्य, चन्द्र तारे ,पृथ्वी, हवा नदी ,पहाड़ वन ,जलवायु एवं ताप आदि तथा कई सामाजिक सांस्कृतिक, घटकों जैसं – समाज, समूह संस्था, प्रथा लोकाचार नैतिकता, धर्म सामाजिक ,मूल्यों आदि से घिरा हुआ है। इन सभी दशाओं को पर्यावरण कहा जा सकता है। इस प्रकार प्राणी के चारो तरफ पाई जाने वाली सभी दशाऍ–प्राकृतिक सामाजिक, एवं सांस्कृतिक, उसका पर्यावरण निर्मित करती हैं।

1 भैतिक पर्यावरण की इन वस्तुओं को प्राचीन काल में पंचतत्त्व–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और

आकाश के रूप में पूजित किया गया था, ताकि इन प्राकृतिक सम्पदाओं के प्रति हमारे मन एवं मस्तिष्क में श्रद्धा का भाव हो, जिससे हम इन्हें क्षति पहुँचाने का प्रयास न करें और प्रकृति में संतुलन बना रहे। आज वर्तमान काल में भी मानव मन में प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा के भाव का विकास करना होगा। इस कार्य में प्राचीन संस्कृत वाड्.मय का ज्ञान अत्यंत सहायक सिद्ध होगा, जिसका अवलोकन करने पर हम पाते है कि हमारे प्रचीन ऋषियों को प्राकृतिक उपादानों की महत्ता ज्ञात थी। यही कारण है कि उन्होंने इनमें देवभाव के दर्शन किए। वैदिक संस्कृत वाड्.मय में दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि उनमें पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और वनस्पति इत्यादि के महत्त्व को उल्लिखित करनें वाले मंत्र संगृहीत है। उक्त भाव अथर्ववेद के इस मंत्र में द्रष्टव्य है

''माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः''1(अथर्ववेद 12/1/12)

कहकर पृथिवी और मनुष्य में माता–पुत्रसंबंध को स्पष्टतया स्वीकार करता है और यह उद्घोष करता है कि धर्म से धारण की गयी शुभ, कल्याणकारी मातृभूति की हम सर्वदासेवा करें–

ध्रुवां भूमिं पृथिवी धर्मणा धृताम्। शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा।।2 (अथर्ववेद 12/1/17)

1 अभिनंदन भारती एवं संस्कृत वांड्मय में पर्यावरण चेतना, पृ. 49

वेदों में भूमि संरक्षण के लिए वृक्षों को काटने का निषेध किया गया है, क्योंकि वृक्षों को काटने से भूमि का क्षरण होता है। वृक्षारोपण के कार्य को अखण्ड पुण्य देने वाला माना गया हैं । **1** वातावरण की शुद्धि के लिए वैदिक काल में यज्ञों का विधान था। यज्ञ का ओषधीय धूम पर्यावरण को शुद्ध करता था। वेदों में पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण घटक जल का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है। वेदों में नदियों को पूज्यभाव से वर्णित किया गया है और जल में मधुरता एवं स्वच्छता को विशेष महत्त्व दिया गया है। जल को जीवनामृत के रूप वर्णित करते हुए ऋग्वेद लिखता है कि– **अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम् ।3 (ऋग्वेद 1/23/19)**

यहॉ जल में अमृतत्त्व एवं विश्व के समस्त ओषधीय गुणों का होना स्वीकार किया गया है– **अप्सु अंतः विश्वानि भेषजा ।4** (**ऋग्वेद 1/23/6**)

जल के इन्हीं ओषधीय गुणों एवं मानव जीवन के लिए उस प्राकृतिक स्रोत का महत्त्व दृष्टिगत रखते हुए वेदों ने

माऽपो हिंसीः 5 (यजुर्वेद 6/22)

कहकर उसे दूषित करने का निषेध किया है। वेदों में उल्लेख आता है कि यदि अग्नि को जलाकर उसमें उत्तम, आरोग्यदायक पदार्थो की हवि दी जाये तो उससे वायु में स्थित रोगाणु जल जाते हैं और वायु शुद्ध होकर निरोगता फैलाती है। इसी कारण अग्नि को पावक एवं रक्षसः दहः विशेषणों से संबोधित किया गया है। **2** सूर्य के प्रकाश के विषय में ऋग्वेद लिखता है कि सूर्य का तेज बहुत हितकारी है, इसके प्रकाश में रोगों को दूर करने की शक्ति है। सूर्य का प्रकाश सेवन करने से हृदय के सारे रोग मिट जाते हैं।

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय।।6(ऋग्वेद 1/50/11)

उक्त मंत्र सूर्य–किरण के सेवन की ओर संकेत करता है यह सर्व विदित है कि सूर्य विटामिन डी का सबसे बडा स्रोत है। वायु मानव–जीवन का आधार है, अतः वायुमंडल का शुद्धिकरण आवश्यक है। ऋग्वेद में वायु को अमृत का धारक कहा गया है –

यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः। तेन नो देहि जीवसे।।7(ऋग्वेद10/186/3)

यहॉ वायु से प्रार्थना की गयी है कि हे वायु! तेरे गृह में, अन्तस् में जो अमृत–निधि स्थापित

है,उसे हमारे जीवन के लिए दे। जहॉ ऋग्वेद में एक ओर वायु को अमृत माना गया है, वहीं उसके रक्षण की ओर भी संकेत किया गया है। यजुर्वेद में भी वायु को वातावरण की शुद्धि करने वाला माना गया है और इसे

शुचिपाः वायो (यजुर्वेद 7/7)

कहकर संबोधित किया गया है। अथर्ववेद में

आपो वाता ओषधयः(अथर्ववेद 4/25/1/7)

द्वारा वायु की शुद्धि की ओर संकेत किया गया है।

अथर्ववेद के एक अन्य उल्लेख में वायु व सूर्य को भुवनों का रक्षक माना गया है–

युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथः।। 8(अथर्ववेद 4/25/3)

वेदों में इन पंचतत्त्वों के महत्त्व संवर्धन एवं रक्षण के साथ–साथ वनस्पतियों एवं वृक्षों का भी महत्त्व वर्णित हैं वेदों में वृक्षों एवं वनस्पतियों को जीवनदायिनी शक्तियों के रूप में चित्रित किया गया हैं ऋग्वेद वनस्पतियों को चेतना एवं शुद्धता प्रदान करने वाला मानता है–

अवसृज नवस्पते देव देवेभ्यों हविः। प्रदातुरस्तु चेतनम्।।9(यजुर्वेद 1/13/11)

1 यजुर्वेद में वृक्षों एवं वनस्पतियों की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए उसमें शिव के रूद्र रूप की कल्पना की गयी है शिव का रूद्र स्वरूप प्रलयंकारी होता है। वृक्षों वनस्पतियों और औषधियों में रूद्रत्व की कल्पना सम्भवतः उनके क्षरण के दुष्परिणामों की ओर संकेत करती है। इस प्रसंग में यह मंत्र द्रष्टव्य है–

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः। क्षेत्राणां पतये नमः। वनानां पतये नमः। वृक्षाणां पतये नमः। ओषधीनां पतये नमः। कक्षाणां पतये नमः।। 10(यजुर्वेद 16/17/19)

वृक्षों का महत्त्व वर्णित करने के साथ ही ऋग्वेद वृक्षों को लगाने की ओर भी संकेत करता है और उनके रक्षण एवं पोषण को बताता है–

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वम् अखनन्त उत्सम्।।11(ऋग्वेद10/110/11)

2 वेदों में वनस्पतियों के प्रसंग में पीपल, पृश्निपर्णी, श्यामा, लाक्षा इत्यादि अनेक वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है, जो कार्यचिकित्सा में प्रयुक्त होती हैं । इसमें पीपल को आज भी देवरूप में पूजित किया जाता है। वास्तव में यह सर्वाधिक आक्सीजन देनेवाला वृक्ष है। इसकी महत्ता का गान करते हुए अथर्ववेद इसे देवसदन मानता है– **अश्वत्थो देवसदनः।12(अथर्ववेद 5/4/3)**

अथर्ववेद मे वनस्पतियों का सर्वाधिक उल्लेख मिलता है। वहॉ वनस्पतियों को मलनाशक माना गया है –

अघद्विष्टा देवजाता वीरूच्छपथयोपनी। आपो मलमिव प्राणैक्षीत्सर्वान् मच्छपथॉ अधि।।13(अथर्ववेद 2/7/1)

पंचतत्त्वों एवं वनस्पतियों के महत्त्व का मुक्त कण्ठ से गानकर वेदों ने पर्यावरण से जुडे इन घटकों का महत्त्व भलीभॉति समझा है और इन्हें संरक्षित करने का भरपूर प्रयास भी किया है। इस प्रसंग में संपूर्ण पर्यावरणीय तत्त्वों में शांति व सुव्यवस्था की कामना को प्रस्तुत करने वाला यह मंत्र उल्लेखनीय है–

1 संस्कृत वांड्यम में मानवीय एवं वैज्ञानिक चिंतन, पृ. 106, 2 वहीं....पृ. 108

1 आधुनिक पर्यावरण समस्या वैदिक समाधान , पृ. 36–37

2. अभिनंदन भारती एवं संस्कृत वांड्मय में पर्यावरण चेतना, पृ. 52

'' ऊॅ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षः शांतिः पृथवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांतिः। वनस्पतयः शांतिर्विश्वेदेवाः शांतिब्रह्म शांतिः सर्व शांतिः शान्तिरेव शांतिः सा मा शांतिरेधि।।14(यजुर्वेद 36/17)

आज आवश्यकता है कि इसी भाव को जन–चेतना में विकसित किया जाए। इस प्रकार निष्कर्षतः कह सकते है कि पर्यावरण का संबंध मानव जीवन के साथ जुड़ा है। जिसमें व्यक्ति सुख दुख के साथ जीवन निर्वहन करता है।

अतः वैदिक व वर्तमान दोनों विधाओं के सहयोग से सुन्दर वातावरण को उपस्थित कर हर परिस्थिति में सुखमय व शांतिमय परिवेश को पर्यावरण के रूप में देखने का सतत प्रयास किया जाये जिससे सुख व शांति रूप में जीवन निर्वहन हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- 'यजुर्वेद में पर्यावरण' डॉ. उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी, चौखम्भा संस्कृत भवन चौक वाराणसी ।
- अभिनंदन–भारती एवं संस्कृत वांङ्मय में पर्यावरण चेतना । प्रो. विद्याशंकर त्रिपाठी, डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी, डॉ. धर्मेन्द्र द्विवेदी, विश्व भारतीय अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर, भदोही।
- पर्यावरण शिक्षा' डॉ. जी.एस. वर्मा, डॉ. सविता कुमारी, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ ।
- 'पर्यावरण शिक्षा एवं भारतीय संदर्भ डॉ. के. पाण्डेय, डॉ. अमिता भारद्वाज, डॉ आशा पाण्डेय विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी।
- 'संस्कृत वाङ्मये विज्ञानम – डॉ. कमलनयन शुक्ल, डॉ. रहसविहारी द्विवेदी, संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग ,रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर प्रथम संस्करण दिसम्बर 2000।
- पर्यावरणीय शिक्षा' डॉ. सत्यनारायण दूबे (शरतेन्दु) शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।
- पर्यावरणीय नैतिक संचेतना एक वैज्ञानिक अनुशीलन डॉ. रज्जन कुमार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- संस्कृत वाङ्मय में मानवीय एवं वैज्ञानिक चिंतन, डॉ. कमलनयन शुक्ल आर. डी. बुक डिपोट दिल्ली ।
- आधुनिक पर्यावरण समस्या वैदिक समाधान स्वामी विवेकानन्द 'सरस्वती' स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान मेरठ।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

"बुन्देलखण्ड में 1857 ई0 के गदर (क्रान्ति) के दो फूल"

(राजा मर्दन सिंह तथा राजा बखत वली)

राजकमल

विषयः– इतिहास शोध छात्र, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

E-mail – bindalrajkamal336@gmail.comeks0 9457003479

सन् 1857 की क्रान्ति आधुनिक इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं रोमांचक घटना थी । 1757 के प्लासी के युद्व से लेकर 1857 के विद्रोह मध्य तक अग्रेजों ने न केवल यहाँ की भौगोलिक धरा एवं राजसत्ता पर एकाधिकार स्थापित किया तथा यहाँ के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के शोषण के दुश्चक्र को गतिमान किया। अंग्रेजों की इसी शोषणवादी नीतियो के विरूद्ध लगभग पिछली एक सदी से उपजा भारतीय जनमानस का जनाक्रोश 1857 में विद्रोह के रुप में ज्वालामुखी की भांति फूट पडा। भारत के प्रथम सौ वर्षो में (1757–1857) कई बार ब्रिटिश सत्ता को भारतीयों से चुनौतियाँ मिलीं। क्योंकि भारत में ब्रिटिश राज्य का तेजी से विस्तार हुआ फलतः शासन प्रणाली में परिवर्तन हुए, साथ ही लम्बे अरसे से भारतीय जनमानस जो परम्परागत तौर तरीकों से रहने की अभ्यस्त थी, अग्रेंजो के आगमन के पश्चात उनमें परिवर्तन होने लगा। इन बातों ने भारतीय जन जीवन की शांत धाराओ को आन्दोलित कर दिया तथा देश के विभिन्न भागों में असैनिक उपद्रव एवं स्थानीय देशी बगावतें प्रारम्भ हुई जिसमे सन्यासी विद्रोह, बहाबी आन्दोलन, कूका आन्दोलन, रामोसी विद्रोह, बुन्देला विद्रोह संथाल विद्रोह, आदि हुए ।

29 मार्च 1857 में मंगल पाण्डे के सैन्य विद्रोह की चिंगारी से उत्पन्न यह महाक्रान्ति शीघ्र ही दावानल का रूप धारण कर गई । उत्तर भारत के विभिन्न भू–भाग से लोग इस महा–यज्ञ में अपनी आहुति देने को तैयार हो गये । उत्तर भारत के राजवंश, जन मानस ने बुन्देलखण्ड क्षेत्र ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया । बुन्देलखण्ड और नर्मदा घाटी में संघर्ष के प्रमुख केन्द्र थे–सागर शाहगढ, गढाकोटा, दमोह, चन्देरी, झाँसी, बाँदा, छतरपुर और इनमें से झाँसी, सागर, बाँदा में तो अंग्रेजी सत्ता समाप्त हो गई थी।

मराठा शासित झाँसी की रानी राज्य की ओर से 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की वीरांगना थी। उन्होंने अल्प आयु में ही अंग्रेज साम्राज्य की सेना से संग्राम किया और जीते जी अंग्रेजों को अपनी झांसी पर कब्जा नहीं करने दिया ।

बुन्देलखण्ड मे सन् 1842 में ब्रिटिश कर्नल ओंसले द्वारा घोषित राजस्व नीति के परिणाम स्वरूप यहाँ के जमीदार ,जागीरदार और राजा महाराजा तो शोषण के शिकार हो ही रहे थे, साथ ही इसका प्रभाव आम जनमानस पर भी पड़ रहा था । ओंसले की इस राजस्व नीति के तहत अनेक भू–स्वामियो की भूमि छीन ली गई। इसके अतिरिक्त अनेक जागीरदारों की जागीरों एवं अनेक राजाओं की रियासतें छीन ली गई 2 तथा अनेक भूस्वामियों की जमीनें कुर्क कर ली गई। जिससे बुन्देला वीरों का खून खोल उठा और देश भक्त बुन्देली वीर अंग्रेजो के विरूद्व खड़े हुए । विद्रोह व संघर्ष की शुरूआत नारहार के वीर बुन्देला मधुकर शाह तथा गणेश जू एवं चन्द्रपुर के मालगुजार जवाहर सिंह द्वारा की गई । 8 अप्रैल 1842 को मधुकर शाह, गणेश जू तथा जवाहर सिंह ने अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया। इसी के साथ बुन्देलखण्ड मे संघर्ष की लहर चारों ओर फैल गई।

क्रान्तिकारी लगातार संघर्ष करते रहे उन्होंने जून 1842 में चन्द्रपुर तथा खुरई पर आक्रमण कर दिया क्योंकि ये अंग्रेजी सत्ता के केन्द्र थे। बेसरा गाँव के थाने मे क्रान्तिकारियों ने आग लगा दी। 16 जुलाई 1842 को इन्हीं क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों के अभ्युदय दुर्ग धामौनी पर हमला कर उसे जीत लिया। 5 अरबी घोड़े, 7780 रूपये तथा पर्याप्त मात्रा में अस्त्र–शस्त्र क्रान्तिकारियों को मिले। इसके बाद

शाहगढ के राजा बखत वली तथा बानपुर राजा मर्दन सिंह भी इन क्रान्तिकारियों के साथ हो लिये इस प्रकार समस्त बुन्देलखण्ड अंग्रेजों के खिलाफ हो गया। दिसम्बर 1842 तक लगातार क्रान्तिकारी गतिविधियाँ जारी रहीं। अंग्रेजों ने इन क्रान्तिकारियों की गिरफ्तारी पर इनाम बढा दी। फरवरी 1843 में कैप्टन हैमिल्टन द्वारा मधुकर शाह को बीमारी हालत में गिरफ्तार कर लिया और मधुकर शाह को फांसी दे दी गई। बुन्देलखण्ड के इन वीरों ने आजादी की अलख जगाते हुए अंग्रेजों से लडने का होंसला दिया। इस प्रकार 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के पूर्व इस बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लोगों में ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष विद्यमान था एवं धीरे–धीरे 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठ भूमि तैयार हो रही थी। हमें जो आजादी 15 अगस्त 1947 को मिली उसकी नींव 1857 में रखी गयी। 1857 ई0 की क्रान्ति देश की पहली जन क्रान्ति थी। चर्वी लगे कारतूसों के प्रयोग से चारों तरफ व्याप्त असन्तोष ने विद्रोह के लिए निर्धारित तिथि से पूर्व ही विस्फोट को जन्म दिया। चर्वी युक्त कारतूसों के प्रयोग के विरूद्ध पहली घटना 29 मार्च 1857 को बैरकपुर की छावनी में घटी जहाँ मंगल पाण्डे नामक एक सिपाही ने चर्वी लगे कारतूस के प्रयोग से इंकार करते हुए अपने अधिकारी की हत्या कर दी। 18 अप्रैल 1857 को सैनिक अदालत के निर्णय वाद मंगल पाण्डे को फांसी की सजा दे दी गई ।

10 मई 1857 से इस महान क्रान्ति की शुरूआत हुई। 11 मई को दिल्ली पर मुगल बादशाह बहादुंर शाह द्वित्तीय ''जफर'' का पुनः अधिकार हो गया। और उन्हें भारत का सम्राट और विद्रोह का नेता घोषित कर दिया गया। इस प्रकार दिल्ली विजय का समाचार समूचे देश मे फैल गया, देखते–देखते विद्रोह ने अपनी चपेट में कानपुर से नाना साहब, लखनऊ से बेगम हजरत महल, झॉसी से रानी लक्ष्मी बाई, इलाहाबाद से लियाकत अली, बांदा से नबावअली बहादुर, बानपुर से राजा मर्दन सिंह, शाहगढ से राजा बखत वली, वरेली से खान बहादुर आदि को ले लिया।

दक्षिण पश्चिम बुन्देलखण्ड में 1857 ई0 की क्रान्ति का मुख्य केन्द्र सागर बना हुआ था । यहां पर क्रान्ति का नेतृत्व करने वाले अंग्रेजी नेताओं में बानपुर के राजा मर्दन सिंह तथा शाहगढ के राजा बखत वली थे। बुन्देलखण्ड का कानपुर, चन्देरी राज्य बुन्देला राजा रूद्रप्रताप सिंह द्वारा स्थापित प्रसिद्ध 'ओरछा' राज्य की ही एक शाखा थी। बुन्देला ओरछा नरेश महाराजा रामशाह की ग्यारहवी पीढी मे राजा मर्दन सिंह का जन्म हुआ तथा पिता का नाम मोर प्रहलाद था। वे बानपुर के राजा थे। 1842 ई0 में पिता मोर प्रहलाद के देहान्त के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र राजा मर्दन सिंह बानपुर गद्दी पर आसीन हुए। मर्दन सिंह बुद्धिमान, नीति कुशल और अत्यन्त निर्भीक व्यक्ति थे। लाहौर के असिस्टेण्ट कमिश्नर सी0 एच0 मार्शल ने मर्दन सिंह 3 को ''हाईली इण्टेलीजेण्ट नेटिव जैण्टिलमैंन'' कहा था। मर्दन सिंह बानपुर की छोटी सी गद्दी पर बैठे लेकिन उनका सिंहसनारोहण शान्तिपूर्ण नहीं रहा क्योंकि ग्वालियर दरबार चन्देरी जिले के भाग रूप में बानपुर पर दावा कर रहा था। लेकिन ग्वालियर के इस दावे को अंग्रेजों का समर्थन नहीं मिला और यह खारिज कर दिया गया। इसलिए मर्दन सिंह अंग्रेजो के प्रति सहानुभूति रखते थे। मर्दन सिंह ने भी प्रमुख बुन्देला विद्रोह दबाने की कोशिश की।

यद्यपि 1842–43 के कठिन समय में मर्दन सिंह ने ब्रिटिश सरकार की मदद की लेकिन 1857 की क्रान्ति तक मर्दन सिंह अंग्रेजो के खिलाफ हो गये।

कम्पन्नी सरकार के बढते तनाव के फलस्वरूप मर्दन सिंह 21 नवम्बर 1853 ई0 को गंगाधर राव की मृत्यु पर बुन्देली परम्परानुसार फेरा करने गये। मर्दनसिंह ने ढांढस बंधाते हुए कहा ''बाई सा मैं इन अंग्रेजन को साफ करके रहूँगा''।

मर्दन सिंह ने 1857 की क्रान्ति की घटना से पूर्व ही भारतीय सैनिकी मे। स्वदेश के प्रति राष्ट्र चेतना को जाग्रत करने का सफल प्रयास किया था। क्रान्ति होते ही उन्होंने अपने आस–पास के क्षेत्र में अंग्रेजी शासन का विध्वंस किया । महारानी लक्ष्मी बाई की सहायता करने में सर्वस्व बलिदान कर दिया। इस प्रकार

राजा मर्दन सिंह ने 1857 ई0 की क्रान्ति में निर्णायक भुमिका निभाई ।

1858 ई0 में अंग्रेजो ने न्याय का नाटक कर उन्हे विद्रोही करार देते हुए आजीवन कारावास का दण्ड दे दिया। लगभग 21 वर्ष की कठोर यातनायें सहते एवं भगवान श्री कृष्ण की भक्ति में तल्लीन प्रथम स्वाधीनता संग्राम का यह महान योद्धा राजा मर्दन सिंह 22 जुलाई 1879 को अपनी बुन्देलीधरा के दर्शन का अधूरा स्वप्न लिये ही महान ज्योति में विलीन हो गया।

मर्दन सिंह की भांति शाहगढ का राजा बखत वली भी ब्रिटिश सरकार से नाराज था । शाहगढ का क्षेत्र गढाकोटा स्टेट का हिस्सा था इसके बचे हुए भाग सागर स्थिति पेशवा प्रबन्धन अथवा ग्वालियर के राजा सिन्धिया के नियंत्रण मे चला गया था। गढाकोटा या शाहगढ रियासत के वंशज छत्रसाल के पुत्र हृदय भाह के वंशज थे। 1817 की सन्धि के अनुच्छेद 13 द्वारा पेशवा बाजीराव द्वितीय ने सागर का क्षेत्र अंग्रेजो के पक्ष मे छोड़ दिया था । सागर के शासक विनायक राव को हटाकर इस क्षेत्र को 1818 में ब्रिटिया सरकार ने अपने नियंत्रण में ले लिया था। लेकिन ब्रिटिश आधिपत्य से पहले ही शाहगढ के राजा से सिन्धिया गढाकोटा रियासत पर नियन्त्रण कर चुका था। यहाँ से निश्कासित होने के बाद उसने शाहगढ मे शरण ले ली थी। इसी बीच अंग्रेजो ने सिन्धिया की ओर से गढाकोटा पर अधिकार कर लिया ।

1857 के बिद्रोह के समय शाहगढ के राजा बखत वली गढाकोटा की जागीर तक अपना बंशानुगत नियन्त्रण मानते थें । इस प्रकार शाहगढ का राजा भी अंग्रेजो से असन्तुष्ट था वह इस आशा में था कि जैसे ही ब्रिटिश हुकूमत उखाड़ दी जायेगी, वैसे ही बखत वली गढकोटा पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेगा।

बानपुर के शासक मर्दन सिंह के सहयोग और सागर जिले के जागीरदारों, उबारीदारों के अंग्रेज विरोधी रूख के कारण शाहगढ के राजा बखत वली का साहस बढा। 13 जुलाई 1857 की रात को बखतवली के सिपाहियों ने अंग्रेजों के पंचमनगर के थाने पर हमला कर जीत लिया । इसके बाद क्षेत्र की जनता तथा अंग्रेजो के मध्य संघर्ष हुआ। 14 जुलाई 1857 को बखत वली का राज्य कायम हो गया किन्तु उसे अंग्रेजी शासन ने मान्यता नहीं दी इसी बीच बखत वली का सम्पर्क देश के अनेक क्रांन्तिकारियों से हो चुका था जिसमें बाँदा के नबाव अलीबहादुर, तात्या टोपे आदि प्रमुख थे। 10 फरवरी 1858 को गढाकोटा पर अंग्रेजों ने हमला बोल दिया तथा 7 मार्च 1858 शाहगढ रियासत को कब्जा कर लिया ।

शाहगढ राजा बखत वली तथा तात्या टोपे 7 मार्च को मऊरानीपुर में मिलते हैं ये सब क्रान्तिकारी आगे बढते हैं कि बरूआसागर के निकट बेतवा नदी के किनारे अंग्रेजी सेना से भीषण मुकाबला हुआ। यहाँ क्रान्तिकारियो को भारी नुकसान उठाना पडता है। फिर बखत वली कोंच पहुँचकर रानी लक्ष्मीबाई का सहयोग करते है।

ब्रिटिश सरकार के लगातार दमन व दबाव से 5 जुलाई 1858 को बखत वली थारेन्टन के सामने आत्मसमर्पण करते हैं। इसके बाद उन्हें लाहौर जेल भेज दिया जाता है। उनकी इच्छानुसार 1873 में वृन्दावन लाया जाता है और 29 सितम्बर 1873 को बखत वली अन्तिम सांस लेते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- झांसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूप – एप0पी0 पाठक रामानन्द विद्या भवन कालका जी नई दिल्ली।
- दि रिवोल्ट ऑफ 1857ई0 बुन्देलखण्ड – डॉ0 श्याम नरायण सिन्हा अनिल पब्लिकेशन लखनऊ उ0प्र0।
- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास – गोरे लाल तिवारी काशी नगरी।
- विद्रोही बानपुर – बासुदेव गोस्वामी म0प्र0।
- बुन्देलो का इतिहास –भगवान दास खरे।

- बुन्देली माटी के सपूत – हीरा सिंह ठाकुर दमोह म0प्र0।
- जय बुन्देली भूमि – सीता राम चतुर्वेदी 'अटल' झांसी।
- आधुनिक भारत का इतिहास – बी0एल0 ग्रोवर तथा यशपाल, नई दिल्ली।

Website

http://hi.m.Wikipedia.org

http://sanityashilpi.com

http://www.jhansi.nic.in

http://lalitpur.nic.in

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

महात्मा गाँधी नरेगा की उपयोजना कपिलधारा का तुलनात्मक अध्ययन

(मध्यप्रदेश के सीधी जिले में कपिलधारा प्रारंभ से पूर्व एवं पश्चात् की स्थितियों का अध्ययन)

त्रिलोचन सिंह
शोध छात्र, अ.प्र.सि.वि.वि. रीवा (म.प्र.)

1. परिचय – महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना केन्द्र सरकार का एक फ्लेगशीप कार्यक्रम है जो देश के ग्रामीण क्षेत्रों में गृहस्थियों की आजीविका की सुरक्षा को प्रत्येक ऐसी गृहस्थी को जिसके व्यस्क सदस्य अकुशल शारीरिक कार्य करने के लिए स्वेच्छा से आगे आते है प्रत्येक वित्तीय वर्ष में कम से कम सौ दिनों की गारंटीकृत मजदूरी नियोजन उपलब्ध करना है। यह अधिनियम 5 सितम्बर 2005 को बना एवं 2 फरवरी 2006 को प्रथम चरण में देश के पिछड़े 200 जिलों मे लागू किया गया। इसके बाद 2007–08 में द्वितीय चरण में देश के 130 जिलों मे तथा तीसरे चरण में देश के सम्पूर्ण जिलों मे लागू किया गया। यह अधिनियम मध्यप्रदेश के सभी जिलों में वर्तमान में लागू है तथा यह पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग के पंचायतीराज संस्थाओं के माध्यम से महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के रूप में कार्यरत है।

यह योजना हमारे ''काम के अधिकार'' की वास्तविकता बोधक है। इस योजना से ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका के साधन बढ़े है एवं सामाजिक एवं आर्थिक विकास हुआ है। इससे सुखा, वनो का विनाश एवं मृदा अपरदन के कार्य कम हुये है। सिंचाई क्षमता बढ़ने से आर्थिक विकास हुआ है और पिछले तीन दशकों से व्याप्त गरीबी में कमी आई है। इस योजना में मुख्यतः जल सरंक्षण और जल शस्य संचय, सूखारोधी, भूमि सुधार एवं सिंचाई सुविधा, पारंपरिक जल निकायों का नवीकरण, भूमि विकास, बाढ़ नियंत्रण संरक्षण कार्य, सभी मौसमों में ग्रामीण क्षेत्रो में पहुंच की व्यवस्था एवं स्थाई परिसम्पत्तियों का निर्माण एवं रख रखाव शामिल है। इसी के अन्तर्गत मध्यप्रदेश शासन द्वारा सन् 2006–07 में कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ की गई जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, गरीबी रेखा से नीचे के परिवार, भूमि सुधार के हितग्राही एवं इंदिरा आवास के हितग्राहीयो को सिंचाई हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध कराती है जिसका हम अध्ययन कर रहे है।

2. अध्ययन का उददेश्य

1. कपिलधारा के प्रभाव का सीधी जिले में योजना प्रारंभ से पूर्व एवं पश्चात् की स्थिति का अध्ययन करना ।
2. कपिलधारा की प्रमुख उपलब्धियों एवं समस्याओं को जानना ।
3. कपिलधारा से लाभार्थियों में हुए सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन का विश्लेषण करना।
4. भविष्य के विकास के लिये नीति निर्धारित करना एवं सुझाव।

3. शोध विधि – शोध कार्य हेतु विभिन्न विधियां उपयोग की जाती है। इस कार्य में हमने प्राथमिक एवं द्वितियक आकड़ों का एकत्रीकरण कर शोध कार्य किया है । प्राथमिक आकड़ों के संग्रहण हेतु प्रश्नावली के माध्यम से लाभार्थियों से जानकारी एकत्र कर एवं द्वितियक आकड़ो के संग्रहण हेतु सम्बंधित भाासकीय कार्यालयो से जानकारी एकत्र कर किया गया है।

4. कपिलधारा उपयोजना – आवश्यकता एवं कार्य क्षेत्र– वर्षा आधारित एवं सिंचाई सुविधा विहिन कृशि क्षेत्रो में वर्शा की अनियमितता अथवा कमी के कारण कृशि उत्पादन प्रभावित होता है। इन क्षेत्रो के अपेक्षाकृत पिछड़े परन्तु जागरूक कृशक जो समुचित कृशि भूमि धारित करते है और जो कृशि हेतु अधोसंरचनात्मक व्यवस्थाये जुटाने में सक्षम है यदि उनकी कृषि भूमि की सिंचाई हेतु पानी का कारगर स्त्रोत उपलब्ध करा दिया जाये तो कृशि उत्पादन में सुनिश्चितता तथा ऐसे कृशको की आजीविका मे गुणात्मक सुधार संभव है। इस परिप्रेक्ष्य में कृशि भूमि हेतु सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने के लिए कपिलधारा उपयोजना का क्रियान्वयन किया गया है।

कपिल धारा उपयोजना का कार्य क्षेत्र महात्मा गांधी नरेगा में शामिल जिलों के सभी ग्राम होगे।

5. लिये जा सकने वाले कार्य –

कपिलधारा उपयोजना के निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पानी का सुनिश्चित एवं कारगार स्त्रोत विकसित किया जाता है जिसमें निम्नानुसार कार्य लिये जाते है –

5.1 नवीन कुआं – भूजल पुर्नभरण की व्यवस्था के साथ (Dug well with ground wates recharge structure)
5.2 खेत तालाब (Form Pond/Dugout Pond)
5.3 मैसेनरी चेक डेम/स्टॉप डेम/आर.एम.एस
5.4 लघु तालाब (Micro Tank)

6. आयोजना / हितग्राही परिवार का चयन– राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी एक्ट की अनुसूची 1 में निम्न वर्ग के हितग्राहियों की स्वामित्व वाली कृशि भूमि हेतु सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया है–

- अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के परिवार।
- गरीबी रेखा के नीचे के परिवार।
- भूमि सुधार (Land Reform) के हितग्राही।
- इंदिरा आवास योजना के हितग्राही।

7. अध्ययन क्षेत्र की पृष्ठभूमि– सीधी जिले का भौगोलिक विस्तार 23^0 47′ से 24^0 42′ उत्तरी अक्षांश तथा 81^0 18′ से 82^0 49′ पूर्वी देशान्तर के मध्य है। जिले की समुद्र तट से निम्नतम ऊॅचाई 243.68 मीटर तथा अधिकतम ऊॅचाई 609.60 मीटर है। सम्पूर्ण जिला कैमोर पर्वत श्रेणी के दक्षिण में स्थित है। भारत की प्रमाणिक देशान्तर रेखा 82^0 जिले को पूर्व–पश्चिम दो भागों में बाटती है। सीधी जिले की पूर्वी–पश्चिमी लम्बाई 155 कि.मी. तथा उत्तर–दक्षिण चौड़ाई 95 किलोमीटर है। जिले का कुल क्षेत्रफल 4720 वर्ग किलोमीटर है। जिले की कुल जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 11,27,033 है। कृशि, ग्रामीण लोगों का प्रमुख व्यवसाय है। जिले में कृषि, वन, खनिज, एवं पशुधन पर आधारित कई उद्योगो की संभावना है।

8. अध्ययन क्षेत्र – कपिल धारा उपयोजना के अध्ययन हेतु मध्यप्रदेश के सीधी जिले का चयन किया गया, जिसमें सीधी जिले के 5 विकासखण्डों की 10–10 पंचायतो के प्रत्येक पंचायत से 5–5 हितग्राही कपिलधारा के इस प्रकार कुल 250 हितग्राहियों का चयन कर तैयार अनुसूची की मदद से बातचीत की गई। चयन के लिये सर्वाधिक जनसंख्या की पंचायत, सबसे कम जनसंख्या की पंचायत, अनुसूचित जाति बाहुल्य, अनुसूचित जनजाति बाहुल्य एवं पठारी धरातल की पंचायत का चयन किया गया। जिसमें कपिलधारा के हितग्राहियों से जानकारी प्राप्त कर, प्राप्त जानकारियों का विश्लेषण किया गया है। जिससे हम पता लगा सकते है कि शासन द्वारा संचालित इन उपयोजनाओं से समाज का कितना विकास हुआ।

9. कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ से पूर्व एवं पश्चात् की स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन–अध्ययन क्षेत्र के 5 विकासखण्ड़ो के 250 हितग्राहियों का अध्ययन करने पर पाया गया कि योजना प्रांरभ से पूर्व में समस्त हितग्राही वर्षा जल या पारम्परिक सिंचाई के साधन जैसे–नदी, नालों, तालाब, नहरों पर आश्रित रहते थे किन्तु कपिलधारा उपयोजना के प्रारंभ होने के पष्चात् कुओं के माध्यम से आवश्यकतानुसार सिंचाई करने लगे है जिसका प्रभाव यह हुआ कि पहले हितग्राही सिर्फ वर्शा पर निर्भर रहते थे किन्तु अब हितग्राही आवश्यकतानुसार सिंचाई करके रबी की फसलों में गेंहू, चना, तिलहन, मटर एवं उड़द तथा जायद की फसलों में आलू, प्याज, भिंड़ी एवं तोरई जैसी सब्जियों का उत्पादन करने लगे है।

10. सिचांई की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन – कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने से पूर्व हितग्राहियों की स्थिति का विश्लेशण करने पर ज्ञात होता है कि कुल हितग्राहियों में से 1 एकड़ खेत में सिंचाई करने वाले हितग्राहियों की संख्या कपिलधारा आने के पूर्व

67.6 प्रतिशत थी जो कपिलधारा का लाभ देने के पश्चात् कम होकर 17.6 प्रतिशत रह गई। 1 एकड़ तक सिंचाई करने वालो की संख्या 73.96 प्रतिशत कम हुई है। जबकि 2–3 एकड़ खेत में सिंचाई करने वाले हितग्राहियों की संख्या कपिलधारा आने के पूर्व 31.6 प्रतिशत थी जो बढ़कर 77.2 हो गई, जिसमें 144.30 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार 5 एकड़ तक सिंचाई करने वाले हितग्राहियों की संख्या 0.8 प्रतिशत थी जो बढ़कर 5.2 प्रतिशत हो गई है, जिसमें 550 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। इससे स्पष्ट होता है कि हितग्राहियों को कपिलधारा उपयोजना का लाभ देने के बाद सिंचाई का क्षेत्र बढ़ा है पहले अधिकतर हितग्राही पारंपरिक जलस्रोतों से 1–2 एकड़ तक खेत की सिंचाई कर पाते थे जो अब बढ़कर 3–5 एकड़ तक सिंचाई करने लगे है। कपिलधारा उपयोजना का लाभ मिलने के उपरांत कृषकों की स्थिति में परिवर्तन आया है। कपिलधारा उपयोजना से हितग्राहियों को सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी मिलने से वे हर मौसम में फसल का उत्पादन एवं विकास कर रहे है इससे रोजगार का सृजन हुआ है पलायन कम हुआ है साथ ही परिसम्पत्ति का निर्माण भी हुआ है।

11. फसल उत्पादन की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन – कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने के पूर्व हितग्राहियों के द्वारा उत्पादित की जाने वाली फसलों का औसत उत्पादन कम था। कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने से पहले हितग्राही एक एकड़ में औसतन 9 क्विटंल तक चावल का उत्पादन करते थे जो अब बढ़कर 12 क्विंटल प्रति एकड़ तक हो गया है, इसमें 33. 33 प्रति ात की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने से पहले हितग्राही एक एकड़ में 6 क्विटंल तक गेहूं का उत्पादन करते थे जो अब बढ़कर 8 क्विटंल तक हो रहा है इसमें भी 33.33 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। साथ ही एक एकड़ खेत में कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने से पहले अरहर का उत्पादन 3 क्विटंल प्रति एकड़ तक होता था जो अब बढ़कर 7 क्विंटल प्रति एकड़ तक हो गया है इसमें 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार ज्वार का उत्पादन कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने से पहले 3 क्विटंल प्रति एकड़ तक होता था जो अब बढ़कर 5 क्विंटल प्रति एकड़ तक हो गया है इसमें भी 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने से पहले चने का उत्पादन 4 क्विंटल प्रति एकड़ था जो अब बढ़कर 5 क्विंटल प्रति एकड़ तक हो गया है इसमें 25 प्रतिशत वृद्धि हुई है, और कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने से पहले प्रति एकड़ तिलहन का उत्पादन 3 तक क्विटंल प्रति एकड़ तक था जो अब बढ़कर 5 क्विंटल प्रति एकड़ तक हो गया है इसमें 33. 33 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जिससे उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आया है, यह सभी कपिलधारा उपयोजना द्वारा ही संभव हो पाया है।

12. मौसमवार फसलो के उत्पादन का तुलनात्मक अध्ययन – कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ से पूर्व एवं पश्चात् की स्थिति का अध्ययन करने पर पाया गया कि मौसम के अनुसार खरीफ के मौसम में फसल उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 100 प्रतिशत थी जो कपिलधारा उपयोजना के प चात् भी उतनी ही है, क्योंकि भारत में कृशि प्राचीन काल से मानसून पर आधारित रही है और मानसून आने से होने वाली वर्शा से सभी कृशक खेती का कार्य करते है जो कि पारम्परिक है। इसिलिये इस मौसम में कृशि करने वाले हितग्राहियों की संख्या 100 प्रतिशत है।

कपिलधारा आने से पूर्व खरीफ एवं रबी दो मौसम में फसल उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 45.20 प्रतिशत थी जो कपिलधारा आने के पश्चात् बढ़कर 82.40 प्रतिशत हो गई है जिसमें 82.30 प्रति ात की वृद्धि हुई है। जल की उपलब्धता के कारण रबी के मौसम में कृषि करने वाले हितग्राहियों की संख्या बढ़ गई है जिससे कृशकों के रोजगार में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार कपिलधारा आने से पूर्व खरीफ, रबी एवं जायद तीनो मौसमों में फसल उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 3.60 प्रतिशत थी। जायद के मौसम में वे हितग्राही ही फसल का उत्पादन करते थे जिनके खेत नदी या तालाब के करीब है। किन्तु कपिलधारा आने के पश्चात् तीनों ऋतुओं में कृषि करने वाले हितग्राहियों की संख्या

बढकर 29.60 प्रति ात तक हो गई है जिसमें 722.22 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जिससे वे अब खरीफ में चावल, ज्वार, मक्का एवं अरहर रबी में गेंहू, चना, एवं तिलहन जायद में लौकी, तोरई, कद्दू एवं खीरे आदि सब्जियों का उत्पादन करने लगे है। जिससे उनकी स्थिति मे सुधार आया है रोजगार के अवसर बढ़े है आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है।

13. ऋतुवार फसलो के उत्पादन का तुलनात्मक अध्ययन – कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने के पूर्व हितग्राहियों का खरीफ ऋतु में उत्पादकता का अध्ययन करने पर पाया गया कि कुल हितग्राहियों में से चावल का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 97.20 प्रतिशत है जिसका कारण यह है कि इनके खेत उबड़–खाबड़ एवं पठारी भाग में है जिसमें की जल का संग्रह कर पाना असम्भव था किन्तु अब कपिलधारा आने के बाद जल पर्याप्त उपलब्ध हो रहा है एवं हितग्राहियों की संख्या बढ़कर 100 प्रतिशत हो गई है जिसमें 2.88 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने के पूर्व अरहर के उत्पादकों की संख्या 87.60 प्रति ात थी जो अब बढ़कर 94.80 प्रतिशत हो गई है जिसमें 8.21 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ होने के पूर्व ज्वार का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 10.40 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 41.20 प्रतिशत हो गई है इसमे 296.15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस प्रकार हम अध्ययन के दौरान पाते है कि खरीफ की ऋतु में फसल उत्पादकों की संख्या में वृद्वि हुई है।

रबी की ऋतु में फसलों के उत्पादन प्रकार का अध्ययन करने पर पाते है कि कपिलधारा उपयोजना के प्रारंभ होने से पहले हितग्राही रबी में गेंहू की पैदावार करने वाले हितग्राहियों की संख्या 49.20 प्रतिशत थी जो जल की उपलब्धता के कारण अब बढ़कर 85. 60 प्रतिशत तक हो गई है इसमें 73.98 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसी तरह चने का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 15.60 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 93.20 प्रतिशत हो गई है इसमें 150.53 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। मसूर की फसल का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 20.80 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 62.80 प्रतिशत हो गई है इसमें 201.92 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। तिलहन की फसल का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 65.20 प्रतिशत थी जो अब 88.40 प्रतिशत हो गई है इसमें 35.58 प्रति ात की वृद्धि हुई है। उड़द का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 13.60 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 34.40 प्रतिशत हो गई है इसमें 152.94 प्रति ात की वृद्धि हुई है, और प्याज की पैदावार करने वाले हितग्राहियों की संख्या 20.80 प्रति ात थी जो अब बढ़कर 93.60 प्रतिशत हो गई है इसमें 350 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अतः हम कह सकते है यह सभी कपिलधारा उपयोजना द्वारा ही संभव हो पाया है, अन्यथा हितग्राहियों को सीमित फसल उत्पादन पर ही निर्भर रहना पड़ता।

जायद की ऋतु में फसलों के उत्पादन प्रकार का अध्ययन करने पर पाते है कि कपिलधारा उपयोजना के प्रारंभ होने से पहले हितग्राही अन्य फसलों के साथ–साथ मौसमी सब्जियों का बहुत कम उत्पादन करते थे किन्तु अब जल की उपलब्धता के कारण जायद की ऋतु में सब्जियों का पर्याप्त उत्पादन करने लगे है। जिसमें तोरई का उत्पादन पहले 37.20 प्रतिशत हितग्राही करते थे अब वे बढ़कर 92.80 प्रतिशत तक हो गये है इसमें 149.46 प्रति ात की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार कद्दू का उत्पादन करने वाले कुल हितग्राहियों की संख्या 28.40 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 65.20 प्रति ात हो गई है इसमें 129.57 प्रति ात की वृद्धि हुई है। पहले खीरा का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 65.20 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 82.40 प्रतिशत हो गई है इसमे 26.38 प्रति ात की वृद्धि हुई है। पहले टमाटर का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 13.06 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 31.20 प्रति ात हो गई है इसमें 129.41 प्रति ात की वृद्धि हुई है। पहले भिंडी का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 20.80 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 58.80 प्रतिशत हो गई इसमें 182.69 प्रति ात की वृद्धि हुई है और लौंकी का उत्पादन करने वाले हितग्राहियों की संख्या 28.40 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 69.20 प्रतिशत हो गई है इसमें

143.66 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इस प्रकार हितग्राही फसलों के साथ–साथ सब्जियों की खेती कर अपनी आजीविका एवं आर्थिक स्थिति को सुद्ढ़ बना रहे है।

14. हितग्राहियों की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण– कपिलधारा उपयोजना के हितग्राहियों का सर्वेक्षण कर प्राप्त जानकारियों का वि लेशण कर पाया गया कि अध्ययन क्षेत्र के हितग्राहियों पर इस उपयोजना का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है जिससे इनके सामाजिक और आर्थिक जीवन में परिवर्तन आया है इस उपयोजना के प्रारंभ होने के पूर्व चयनित हितग्राहियों में से 7.2 प्रतिशत हितग्राहियों की सामाजिक स्थिति ठीक थी आशय यह कि इन परिवारों के यहां वर्श भर के लिये दोनों समय का भोजन पर्याप्त उपलब्ध होता है इनके बच्चे स्कूल जाते है रहने के लिये घर है किन्तु कपिलधारा आने के पश्चात् 15.6 प्रतिशत हितग्राही के पारिवारिक रहन–सहन में सुधार हुआ है उनके खाने की वस्तुओं में वृद्वि एवं सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है बच्चों की शिक्षा के साथ–साथ सामाजिक गतिविधियों जैसे–वार्ड़ का चुनाव लड़ना, ग्राम समितियों में जाना, सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेना आदि गतिविधियों से स्पश्ट है कि उनकी सामाजिक स्थिति में 116. 66 प्रतिशत तक सुधार हुआ है। इसके अतिरिक्त कपिलधारा प्रारंभ के पूर्व की स्थिति का अध्ययन करने पर पाया गया कि पहले 23. 60 प्रतिशत हितग्राहियों की स्थिति ठीक थी किन्तु कपिलधारा के प चात् 53.60 प्रति ात लोगों की आर्थिक स्थिती में सुधार हुआ है इनके यहां पर्याप्त वस्त्र एवं इनके घरो में उपयोग हेतु आव यक वस्तुओं का होना यह स्पश्ट करता है कि आर्थिक सुधार हुआ है। पहले की अपेक्षा 127.11 प्रति ात आर्थिक सुधार में वृद्धि हुई है। जिसके परिणाम स्परूप उनमे क्रय क्षमता का विकास हुआ है। घर में उपयोग की वस्तुओं में वृद्वि, कपड़े एवं अन्य उपयोगी संसाधन खरीद रहे है। बच्चों को विद्यालय जाने के लिए प्रेरित कर रहे है तथा सामान्य स्थित के हितग्राहियों की संख्या 64.73 प्रतिशत रही है।

15. हितग्राहियों की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण– आय के विभिन्न स्त्रोत होने के बावजूद हितग्राही चयन में आर्थिक स्थिति यह दर्शाती है कि वर्तमान में हितग्राहियों की आय में वृद्धि हुई है। कपिलधारा उपयोजना प्रारंभ से पूर्व 80.80 प्रतिशत हितग्राहियों की आय 1000 से 2000 रूपये प्रतिमाह थी जिनकी संख्या में कमी हुई है तथा अब उनकी संख्या 58.40 प्रतिशत रह गई है इसमें 27.72 प्रति ात की कमी दर्ज की गई है। इसी प्रकार 2001 से 3000 रुपये प्रतिमाह तक आय अर्जित करने वाले हितग्राहियों की संख्या 12.40 प्रति ात थी जो अब बढ़कर 23.60 प्रतिशत हो गई है इसमें 90.32 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 3001 से 4000 रुपये प्रतिमाह तक आय अर्जित करने वाले हितग्राहियों की संख्या 05.60 प्रति ात थी जो बढ़कर 13.20 प्रति ात हो गई है इसमें 135.71 प्रति ात की वृद्धि हुई है। इसी प्रकार 4001 से 5000 रुपये प्रतिमाह तक आय अर्जित करने वाले हितग्राहियों की संख्या 1.20 प्रतिशत थी जिनकी संख्या बढ़कर 5.20 प्रतिशत हो गई है इसमें 333.33 प्रति ात की वृद्धि हुई है। इसमें जिससे प्रतीत होता है कि कपिलधारा उपयोजना हितग्राहियों के लिए वरदान सिद्ध हुई है।

16. समस्याऐं –

1. हितग्राही द्वारा कुंआ बनाने से पहले जल की पर्याप्त उपलब्धता वाले स्थान का चयन न करने से कुछ कुओं में जल अपर्याप्त पाया गया ।
2. सिंचाई हेतु 50 प्रतिशत लाभार्थियों के पास पम्प एवं पाइप तक नही है किराये से पम्प एवं पाइप लेकर सिंचाई करते है। हितग्राहीयों को अनुदान स्वरुप दिया गया डीजल पम्प खर्चीला है जिससे ईंधन खरीदने में व्यय अधिक होता है ।
3. शासकीय विभागो द्वारा योजनाओं के अभिशरण की पुर्णतः जानकारी हितग्राहीयों को प्रदान न करने के

कारण हितग्राही योजनाओ का लाभ नहीं ले पाते है ।

4. अधिकतर हितग्राहीयों के पास कृशि भूमि कम होने के कारण आय का अधिकतम भाग ईंधन, खाद, बीज आदि खरीदने में व्यय हो जाता है।

17. निष्कर्ष एवं सुझाव –

- कपिलधारा उपयोजना से पीने के लिए, घरेलू उपयोग के लिए एवं सिंचाई हेतु जल साल भर उपलब्ध रहता है ।
- सीधी जिले के किसान पहले बरसात के मौसम पर निर्भर थे तब वे धान, कोदो, कुटकी और मक्का पैदा करते थे किन्तु 2014–15 के बाद 93 प्रतिशत किसान डबल फसल रबी और खरीफ की फसल उत्पादन करे लगे है। जिससे अनाज एवं सब्जियों की पर्याप्तता बनी हुई है।
- सीधी जिले में 11,000 एकड़ भूमि महात्मा गांधी नरेगा से सिंचित हुई है।
- सीधी जिले में कुओं का निर्माण अच्छा किया गया है। किन्तु 4 प्रतिशत हितग्राहियों ने पानी की पर्याप्तता के लिए अपने कुओं मे बोर करवाया है।
- जल की उपलब्धता के कारण 3 प्रतिशत पड़त भूमि मे पौधा रोपण किया गया है।
- अध्ययन क्षेत्र में 49 प्रतिशत लाभार्थियों को स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना एवं आई टी डी पी से डीजल पम्प प्रदान किया गया है।
- अध्ययन क्षेत्र में कृषि विभाग द्वारा लाभार्थियों को बीज उपलब्ध कराए जावे।
- सिंचाई के उद्देश्य के लिए कुएँ की गहराई का स्तर कृषि वैज्ञानिक और आर ई एस विशेषज्ञों की समिति द्वारा निर्धारित तथा कुओं एवं भूजल के रिचार्ज हेतु विशेष प्रबंध होना चाहिए।

18. सारांश – सीधी जिले का अध्ययन के लिए चयन किया गया था और विकासखण्डों में कपिलधारा के 250 हितग्राहियों से बातचीत की गई उससे पता लगा कि परिवारो के सामाजिक–आर्थिक स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं आया है क्योंकि अधिकांश लाभार्थियों के पास अधिकतम 3 एकड़ तक जोत है। कपिलधारा के द्वारा कुआं उपलब्ध करा दी गई है लेकिन सिंचाई हेतु 50 प्रति ात लाभार्थियों के पास पम्प एवं पाइप तक नही है वे किराये से पम्प एवं पाइप लेकर सिंचाई करते है। जिससे वे वर्श भर कार्य करने के पश्चात् पूरे वर्श भोजन हेतु अनाज पैदा कर लेते है किन्तु अपने उपयोग के लिए किसी भी प्रकार के भौतिक सुख–सुविधा की सामग्री जैसे–रेडियो, टी.वी., साईकिल, मोटरसाइकिल आदि खरीदने हेतु पैसा बचा नही पाते है। उनके यहां उनके उपयोग हेतु बैलजोड़ी, कृशि उपकरण, हल एवं बैलगाडी आदि उपलब्ध है। हम उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिती बदलना चाहते है अतः उन्हे पर्याप्त बिजली उपलब्ध कराने की जरूरत है क्योंकि डीजल पम्प महंगा पड़ता है साथ ही अन्य योजनाओं से अभिसरण करवाकर प्रशिक्षण, बीज, खाद आधुनिक तकनीकी प्रदान करना होगा साथ ही आदिवासी विकास विभाग द्वारा भी कृषि उपकरण एवं बैलजोड़ी आदि उपलब्ध कराने की आव यकता है।

19. सन्दर्भ स्रोत –

1. क्षेत्र भ्रमण, प्राथमिक आकडे एवं द्विवितियक आकडों का संकलन कर।
2. किसान एवं कृषि विकास कार्यालय जिला सीधी से प्राप्त जानकारी।
3. एन.आई.सी. सीधी से प्राप्त जानकारी।
4. म.प्र. शासन एवं भारत शासन की नियमावली से प्राप्त जानकारी।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

Age Differences and Psychological Skills

Deependra Yadav

Dep. of Physical Education, RDVV Jabalpur MP

It has been properly suggested by Vealey (1988), that psychological skill's training be targeted for use not only in the elite sports population, but also in other sport populations, such as youth sports. The proposed rationale is that the young athletes, while still physically and psychologically developing may be the perfect candidates for incorporating psychological skills and relating them back to sport performance. This is in opposition to older athletes who have already "internalized dysfunctional responses to competition" (Vealey, 1988, p. 323). While older athletes may indeed have internalized ineffective strategies to competition that does not imply that they are not willing to attempt different approaches to promote successful competitive performances. It has been noted within the literature that older athletes will seek that "extra edge" in order to compensate for their declining physical abilities (Harby, 1997). In addition, as with any athlete, senior sport competitors have the desire to succeed as much as their younger counterparts within a chosen sport. Whether success is defined by winning or by achieving a personal standard, it is in the best interest of the older athlete to thoroughly prepare both physically and mentally for their event. From this standpoint, it is reasonable to propose that the senior athlete will stand to benefit from the use of psychological skills to enhance performance.

Psychological Characteristics of Outstanding Athletes : A number of approaches have been taken to examining the psychological characteristics of outstanding athletes and considerable progress has been made in our understanding of this area. Morgan and his colleagues (e.g., Morgan, 1978, 1980) conducted some of the earliest investigations in the area, studying the personality characteristics of national and Olympic runners, rowers and wrestlers using the Profile of Mood State. Support was found for a mental health or iceberg profile model where more versus less successful athletes exhibited greater positive mental health (vigor is above the mean for the population while the negative moods of tension, depression, anger, fatigue and confusion are below).

Other researchers (e.g., Gould, Weiss, & Weinberg, 1981; Mahoney & Avener, 1977) have taken a different approach, looking at cognitive strategy differences between more and less successful athletes. For example, Smith, Schultz, Smoll, and Ptacek (1995) developed the Athletic Coping Skills Inventory-28, a multidimensional measure of sport specific psychological skills (coping with adversity, peaking under pressure, goal setting and mental preparation, concentration, freedom from worry, confidence and achievement motivation, and coach ability) and found that it discriminated between more and less successful professional baseball players. Specifically, more successful players and players who remained in the league longer demonstrated higher psychological skills scores.

Finally, other investigators (Gould, Eklund, & Jackson, 1992a, 1992b; Gould, Guinan, Greenleaf, Medbery, & Peterson, 1999; Greenleaf, Gould, & Dieffenbach, 2001; Orlick & Partington, 1988) have examined psychological variables affecting the performance of Olympicathletes, chiefly through qualitative interviews. For example, Orlick and Partington (1988)found that (a) the ability to focus- attention, (b) control of performance imagery, (c) a total commitment to the pursuit of excellence, (d) the setting of practice goals, (e) competition simulation, (f)mental preparation, (g) detailed competition plans, and

(h) having distraction plans were common variables characterizing the successful athletes. Those Olympic athletes who did not perform up to their potential reported not being prepared to deal with distractions, changing things that worked, experiencing late team selection, and not being able to focus after distractions.

After carefully reviewing this research, Williams and Krane (2001) concluded that a number of specific mental skills and psychological characteristics, such as (a) having a well-developed competitive routine and plan, (b) high levels of motivation and commitment, (c) coping skills for dealing with distractions and unexpected events, (d) heightened concentration, (e)high levels of self-confidence, (f) self-regulation of arousal, (g) goal setting, and (h) visualization were associated with peak performance. One would expect that highly successful Olympic athletes would exhibit these mental skills and characteristics.

Gender Differences and Psychological Skills : As stated previously, using psychological skills may prove to be beneficial to athletes regardless of gender. In a study assessing mental practice and the use of associative strategies in masters track and field athletes' men and women who ranged in age from 30-88 years old reported equal use of mental strategies (Unger eider, Golding Porter, & Foster, 1989). Gender was a factor in a study assessing mood and psychological skills in elite and sub-elite equestrian athletes. In this study, male athletes tended to score higher on measure of achievement motivation and anxiety management than female competitors as assessed by the Psychological Skills Inventory for Sports (Meyers, Bourgeois, LeUnes, & Murray, 1999). In a study assessing psychological skills in rodeo athletes it was found that males scored significantly higher in psychological skills such as anxiety management, concentration, and confidence than their female counterparts (Meyers, LeUnes, & Bourgeois, 1996). The differences in the use of psychological skills between female and male athletes may be due to societal values that did not emphasize participation in sport for women, thereby not developing a need to use psychological skills. With the exception of the study conducted by Unger eider et al. (1989), research in the sport psychology domain has not assessed the use of psychological skills in senior athletes and how their use may differ across gender.

To become an elite athlete in any sports requires a very high level of persistence, dedication, commitment, and also a supportive environment. Sports psychological studies have shown that athletic coping skills, anxiety, and stress are rather good predictors of sport success (Renger, 1993; Smith & Christen, 1995; Porat, Lufi & Tenenbaum, 1989). Also, psychological variables like anxiety, the stress level of a situation, and coping skills may very well influence performance of athletes either in a positive or negative way. (Hannin, 1989; Martens, Vealy& Burton, 1990).

Based upon the literature examining the use of psychological skills in younger populations and the senior athlete's desire to remain competent in a sport, it would also be expected that senior athletes would use psychological skills in an attempt to enhancetheir performance within a competitive setting.

STATEMENT OF THE PROBLEM : The purpose of the study was to assess specific psychological skills of Indian Judokas [medalist and non-medalist; both male and female] of different levels of achievement i.e. National and University Judokas.

SUB-PROBLEM : The secondary purpose of the study was to prepare the psychological profile of Indian judokas.

DELIMITATIONS :

1. The study was delimited to Indian male and female judokas of different levels of achievement (ie; National level and University level).

2. The study was delimited to medalists and non-medalists of respective Championships.

3. The study was further delimited to "Athletic Coping Skills Inventory" (ACSI) developed by Smith, Schutz, Smoll, and Ptacek (1995) for the purpose of assessing psychological skills of judokas.

LIMITATIONS : Certain factors like diet, daily routine, life style, habits etc. could not be controlled by the scholar, so it may also be considered as a limitation. The authenticity of response given by the subjects in questionnaire technique was considered as another limitation of this study. No special techniques were used to influence the subject's psychological skills and their performance while administering the questionnaire was another limitation.

DEFINITION AND EXPLANATION OF TERMS :

PSYCHOLOGICAL SKILL : Psychological skills have been broadly defined as including anxiety management, imagery, goal setting, concentration, self-talk, thought stoppage, and relaxation and energy techniques (Weinberg & Williams, 1993).

Psychological skills include the ability to help others develop and grow, the ability to create harmony in difficult situations, the ability to know how to motivate others, the ability to understand another's true motives when interacting with them, and many others. By developing psychological skills, you increase the motivation and energy of those around you, and you increases your chance for success, joy, and happiness in life.

COPING : A face-saving mechanism employed to meet perceived threats to prestige and self-esteem (for example, after losing a competition). Coping applies to teams and individuals and is regarded as being positive if it enables threats to be successfully dealt with.

According to Lazarus and Folkman (1984) Coping is "constantly changing cognitive and behavioral efforts to manage specific external and or internal demands that are appraised as taking or exceeding the resources of person".

COPING STATEGIES : A deliberate, rationally planned programme of specific techniques employed to overcome, tolerate, reduce, or minimize stressful events. In sport, coping strategies include behavioural and psychological techniques used to help an athlete deal with other competitors or situations that might otherwise produce excessive anxiety and stress.

CONCENTRATION : Perhaps the most important mental skill is the ability to focus and concentrate. For some it can be the most difficult skill to master. It is believed that effective concentration is a vital prerequisite of athletes achieving optimal performance. Wilson, Schmid and Peper (2006) defined concentration as the ability to focus on relevant tasks cues while ignoring distractions, and is considered to be an important component of attention.

Making matter worse, concentration can be effected by several other mental and physical factors. The two most common ones seen in sport that are anxiety and self-confidence, two inter-related factors. When people are nervous or lack self-confidence, their ability to focus and concentrate is less.

SPORTS SELF-CONFIDENCE : Most athletes will admit that a great percentage of their success is due to their belief in their ability to achieve success. A confident individual in sport has strong positive thoughts about his performance. Confidence leads to proper mental images useful for skill execution.

According to Martens (1987) sports self-confidence is an accumulation of the athlete's unique experiences in achieving many different things, which results in the specific expectations

he or she has about achieving success in a future activity.

SPORTS ACHIEVEMENT MOTIVATION : Motivation is an essential element of human personality. It directs a person's activity and makes it more or less dynamic and inspires to do something. Without the desire to succeed other psychological features and abilities do not provide nearly so much influence on performance. Motivation inspires an individual to do something.

Sports Achievement motivation refers to a person's efforts to master a task, achieve excellence, overcome obstacles, perform better than others and pride in exercising talent (Weinberg and Gould, 2004).

COPING WITH ADVERSITY : Having the ability to handle stress and cope with adversity allowed these athletes the capacity to deal with the routine setbacks and anxiety associated with training and competing in developmental and elite levels of competition. They are low trait anxious (personalities that predisposed them to view evaluation and competition as less threatening), have high levels of emotional control and the ability to peak under pressure. One coach described his athlete's ability to handle pressure, "He was good under pressure, you know. It almost seemed like the more pressure he had on him the better he did.

COACHABILITY : Coach is a motivator and teacher of athletes. Ideally, a coach is moulder of theoretical and practical training, and translator of technical information.

Coach ability means open to and learns from instruction; accepts constructive criticism without taking it personally or becoming upset.

FREEDOM FROM WORRY : Freedom from Worry means does not put pressure on self by worrying about performing poorly or making mistakes; does not worry about what others will think if he/she performs poorly.

PEAKING UNDER PRESSURE : Peaking under Pressure is challenged rather than threatened by pressure situations and performs well under pressure; a clutch performer.

SIGNIFICANCE OF THE STUDY : Competition can bring out the best or the worst in athletes, and the psychological demands are especially high when individuals or teams are striving to achieve the same goals. When physical skills are evenly matched, it is often the competitor with the stronger mental approach, who can control his or her mind before and during events, who wins. Research has revealed that at least 50% of athletic performance success and even more athletic performance errors and failures are due to mental factors. Often talents plus physical and technical training can take athletes and teams only so far before they reach a performance plateau. It is mental training that will carry them to the next level.

However, many athletes wrongly assume that mental aspects of performance are innate and unchangeable when, in reality, systematic mental training can have a similar impact on performance as physical workouts. Psychological skills can be learned, practiced and applied in both training and competition situations.

The findings of the study would contribute to the existing knowledge in the field of physical education and sports in the following ways:

1. The results of the study would educate the coaches, trainers and physical education teachers about the role played by the psychological skills during the competition.

2. The results of the study will educate the coaches, trainers and physical education teachers to identify the psychological skills needed to be successful in the different levels of Judo Competitions.

3. The findings of the study will help coaches to design different psychological skill training

programmes necessary for peak performance at different levels of achievement.

4. The study will create interest and awareness among judokas regarding psychological skills.

5. The results of the study will be used as a screening tool in assessing psychological skills of judokas at different age groups and sex.

6. The results of the study will provide guidelines for preparing psychological skill profile of judokas at different levels of achievement.

7. This study may help the coaches, physical educators to select and utilize a well-planned, effective training method to develop psychological skills for better performances.

8. The results will help the coaches to develop a champion's psychological skill profile for peak performance.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

The Determinants of Job Satisfaction and Morale

Aradhana Pachori
Research Scholar, Mahatma Gandhi Chitrakoot Gramodhaya Vishwavidhayalaya Chitrakoot, Satna

Job satisfaction and morale is derived from and is caused by many inter-related factors. Although these factors can never be completely isolated from one another for analysis, they can by the use of statistical techniques, be separated enough to give an indication of their relative importance to job satisfaction and morale to employees' performance.

Job Satisfaction : Job satisfaction is one of the most popular and widely researched topics in the field of organizational psychology (Spector, 1997). Locke (1976) defines job satisfaction as a pleasurable or positive emotional state resulting from the appraisal of one's job or job experiences. Job satisfaction has been studied both as a consequence of many individual and work environment characteristics and as an antecedent to many outcomes. Employees who have higher job satisfaction are usually less absent, less likely to leave, more productive, more likely to display organizational commitment, and more likely to be satisfied with their lives (Lease, 1998). Job satisfaction is an attitude, which Porter, Steers, Mowday and Boulian (1974) state is a more "rapidly formed" and a "transitory" work attitude "largely associated with specific and tangible aspects of the work environment". There are different perspectives on job satisfaction and two major classifications of job satisfaction (Naumann, 1993) are content (Herzberg, 1968; Maslow, 1987; Alderfer, 1972) and process theories (Adams, 1965; Vroom, 1964; Locke, 1976; Hackman & Oldham, 1975).

Today's work environment is undergoing a major shift; factors such as globalisation, growing economies, and improved technology are constantly presenting new challenges and creating new opportunities for people. With these changes, people's perceptions regarding their jobs are also changing. In this grow-or-die marketplace, the success of any organisation relies on its workforce. Satisfied and committed employees are the most significant assets of any organisation, including banks. As banking institutions are the backbone of a nation's economy, the efficient management of human resources and the maintenance of higher job satisfaction levels affect the growth and performance of an entire economy. The Indian banking sector is a fast-growing financial service sector that has seen tremendous progress following liberalization. The Indian banking system can be broadly categorised into "scheduled commercial banks" and "non-scheduled commercial banks". Scheduled commercial banks can be further classified into public sector banks, private sector banks (old and new) and foreign banks. Over time, differences have been observed between public sector banks and private sector banks in terms of various operational and efficiency parameters.

Job satisfaction describes how content an individual is with his or her job. It is a relatively recent term since in previous centuries the jobs available to a particular person were often predetermined by the occupation of that person's parent. There are a variety of factors that can influence a person's level of job satisfaction. Some of these factors include the level of pay and benefits, the perceived fairness of the promotion system within a company, the quality of the working conditions, leadership and social relationships, the job itself (the variety of tasks involved, the interest and challenge the job generates, and the clarity of the job description/requirements). The happier people are within their job, the more satisfied they are said to be. Job satisfaction is not the same as motivation,

although it is clearly linked. Job design aims to enhance job satisfaction and performance methods include job rotation, job enlargement and job enrichment. Other influences on satisfaction include the management style and culture, employee involvement, empowerment and autonomous workgroups. Job satisfaction is a very important attribute which is frequently measured by organizations. The most common way of measurement is the use of rating scales where employees report their reactions to their jobs. Questions relate to relate of pay, work responsibilities, variety of tasks, promotional opportunities the work itself and co-workers. Some questioners ask yes or no questions while others ask to rate satisfaction on 1 – 5 scale where 1 represents "not all satisfied" and 5 represents "extremely satisfied".

This means that achieving motivation and job satisfaction to develop organizational commitment is not simple or easy and works according to the context of individual firms. Although, there are best practices within industries, it is up to the individual organisations to determine which human resource strategies meet its needs and objectives. To determine the manner that individual industries develop and achieve organizational commitment through job satisfaction and motivation, the study will investigate in-depth the human resource strategies of M.P. Power Management Company Limited Jabalpur.

Definition And \Importance \Of Job Satisfaction : Despite its vide usage in scientific research, as well as in everyday life, there is still no general agreement regarding what job satisfaction is. In fact there is no final definition on what Job represents. Therefore before a definition on job satisfaction can be given, the nature and importance of work as a universal human activity must be considered. Different authors have different approaches towards defining job satisfaction. Some of the most commonly cited definitions on job satisfaction are analyzed in the text that follows.

Hop pock defined job satisfaction as any combination of psychological, physiological and environmental circumstances that cause a person truthfully to say I am satisfied with my job (Hop pock, 1935). According to this approach although job satisfaction is under the influence of many external factors, it remains something internal that has to do with the way how the employee feels. That is job satisfaction presents a set of factors that cause a feeling of satisfaction. Vroom in his definition on job satisfaction focuses on the role of the employee in the workplace. Thus he defines job satisfaction as affective orientations on the part of individuals toward work roles which they are presently occupying (Vroom, 1964). One of the most often cited definitions on job satisfaction is the one given by Spector according to whom job satisfaction has to do with the way how people feel about their job and its various aspects. It has to do with Job satisfaction is a worker's sense of achievement and success on the job. It is generally perceived to be directly linked to productivity as well as to personal well-being. Job satisfaction implies doing a job one enjoys, doing it well and being rewarded for one's efforts. Job satisfaction further implies enthusiasm and happiness with one's work.

Job satisfaction is the key ingredient that leads to recognition, income, promotion, and the achievement of other goals that lead to a feeling of fulfillment (Kaliski, 2007).

Job satisfaction can be defined also as the extent to which a worker is content with the rewards he or she gets out of his or her job, particularly in terms of intrinsic motivation (Statt, 2004).

The term job satisfaction refers to the attitude and feelings people have about their work. Positive and favorable attitudes towards the job indicate job satisfaction. Negative and

unfavorable attitudes towards the job indicate job dissatisfaction (Armstrong, 2006). Job satisfaction is the collection of feeling and beliefs that people have about their current job. People's levels of degrees of job satisfaction can range from extreme satisfaction to extreme dissatisfaction. In addition to having attitudes about their jobs as a whole. People also can have attitudes about various aspects of their jobs such as the kind of work they do, their coworkers, supervisors or subordinates and their pay (George et al., 2008).

Job satisfaction is a complex and multifaceted concept which can mean different things to different people. Job satisfaction is usually linked with motivation, but the nature of this relationship is not clear. Satisfaction is not the same as motivation. Job satisfaction is more of an attitude, an internal state. It could, for example, be associated with a personal feeling of achievement, either quantitative or qualitative (Mullins, 2005). We consider that job satisfaction represents a feeling that appears as a result of the perception that the job enables the material and psychological needs (Azeri, 2008).

Job satisfaction can be considered as one of the main factors when it comes to efficiency and effectiveness of business organizations. In fact the new managerial paradigm which insists that employees should be treated and considered primarily as human beans that have their own wants, needs, personal desires is a very good.

Management Research and Practice Issue 4 December 2011 indicator for the importance of job satisfaction in contemporary companies. When analyzing job satisfaction the logic that a satisfied employee is a happy employee and a happy employee is a successful employee. The importance of job satisfaction specially emerges to surface if had in mind the many negative consequences of job dissatisfaction such a lack of loyalty, increased absenteeism, increase number of accidents etc. Spector (1997) lists three important features of job satisfaction. First, organizations should be guided by human values. Such organizations will be oriented towards treating workers fairly and with respect. In such cases the assessment of job satisfaction may serve as a good indicator of employee effectiveness. High levels of job satisfaction may be sign of a good emotional and mental state of employees. Second, the behavior of workers depending on their level of job satisfaction will affect the functioning and activities of the organization's business. From this it can be concluded that job satisfaction will result in positive behavior and vice versa, dissatisfaction from the work will result in negative behavior of employees. Third, job satisfaction may serve as indicators of organizational activities. Through job satisfaction evaluation different levels of satisfaction in different organizational units can be defined, but in turn can serve as a good indication regarding in which organizational unit changes that would boost performance should be made. Christen, Iyer and Soberman (2006) provide a model of job satisfaction presented.

Lawler and Porter (1967) give their model of job satisfaction which unlike the previous model places a special importance on the impact of rewards on job satisfaction, According to this model the intrinsic and extrinsic rewards are not directly connected with job satisfaction, because of the employees perceptions regarding the deserved level of pay. Locke and Latham (1990) provide a somewhat different model of job satisfaction. They proceed from the assumption that the objectives set at the highest level and high expectations for success in work provides achievement and success in performing tasks. Success is analyzed as a factor that creates job satisfaction.

Job Satisfaction is under the influence of a series of factors such as: The nature of work, Salary, Advancement opportunities, Management, Work groups and Work conditions. A somewhat different approach regarding the factors of job

satisfaction is provided by Rue and Boyars, Management Research and Practice Volume3, Issue4/December2011Manager'sconcernforpeople Job design (scope, depth, interest, perceived value) - Compensation (external and internal consistency) – Working conditions-Social relationships - Perceived long-range opportunities Perceived opportunities elsewhere Levels of aspiration and need achievement Job satisfaction/dissatisfaction Commitment to organization Turnover, absenteeism, tardiness, accidents, strikes, grievances, sabotage etc.

Effects Of Job Satisfaction : Job satisfaction causes a series of influences on various aspects of organizational life. Some of them such as the influence of job satisfaction on employee productivity, loyalty and absenteeism are analyzed as part of this text.

The preponderance of research evidence indicates that there is no strong linkage between satisfaction and productivity. For example a comprehensive meta-analysis of the research literature finds only a.17 best- estimate correlation between job satisfaction and productivity Satisfied workers will not necessarily be the highest producers. There are many possible moderating variables the most important of which seems to be rewards. If people receive rewards they feel are equitable, they will be satisfies and this is likely to result in greater performance effort. Also, recent research evidence indicates that satisfaction may not necessarily lead to individual performance improvement but does lead to departmental and organizational level improvements. Finally there are still considerable debate weather satisfaction leads to performance or performance leads to satisfaction (Luthans, 1998).

Factors Inherent In The Job :

1) Type of work : The most important factors inherent in the job are type of work. In the research it is clear that employees working in the banks are satisfied with their work. As we know that job market is not expanding in Bangladesh, most of the people who get the job of a bank are very satisfied. There are mainly four departments in a bank and study reveal that employees working in the Cash Department suffer stress and their satisfaction level is reduced substantially. Most satisfied employees found in the Investment Department. Banking sector has got a tradition of rotational services especially for entry level officers. It means changing of counter, brings some level of dynamism. While for the rest of the employees repetitive and monotonous task looks boring.

2) Skill required : Skill in relation to job satisfaction has a bearing on several other factors, kind of work, responsibility and others. A study of the relation of skill to job satisfaction concluded that where skill exists to a considerable degree, it tends to become the first source of satisfaction to the workman, satisfaction in condition of work. Research indicates that most of the employees in every department get required skills to perform their job effectively and efficiently. Again, many respondents think they are not appropriately suited to the job that they are specified and ultimately this reduces their job satisfaction and morale towards the organization.

3) Occupation status : Occupation status is related to, but not identical with job satisfaction. Occupational status is always valued in terms of others opinion. It has been seen that employees who are working at the lower position seems to look for other job, where they can have greater job satisfaction. It has been seen that employees are more dissatisfied in jobs that have loss social status and prestige. Study discloses that most of the employees working in the banks seem to be quite satisfied with their occupational status and they are quite happy to say other about their job in the society.

4) Commitment to the organization : Level of commitment to the organization is such an important factor in the performance of employee. Ultimately, level of commitment indicates how much employees are satisfied with their work and

toward organization. Study indicates that though dominant percentage of employees are very much committed with the organization few of them responded negatively and saying that they will leave the organization if they get better chance any where, this eventually indicates lower satisfaction level and morale of the employees towards their work and organization.

5) Size of organization : In a small organization, employees get a greater chance to interact with other employees and can seek co-operation of others very easily. While in a large organization this can be possible but depending upon requirement of the organization and the task which it has assigned to the employees. It is observed in the research on an average there are 27 employees working in each branch which is well above the industry average and considered to be overcrowded. Still many employees blame they have to take too much responsibility because there are not Enough workforces to do the job effectively.

6) Present place of work : Employees' level of job satisfaction varies with the present place of work. Employees working in rural and semi urban branches seem less satisfied than employees with urban and metropolitan branches. As the business is carried in branch wise, this is located in rural, semi-urban, urban and in metropolitan cities. In comparison to metro and urban branches, semi-urban and rural branches are small and the employees of these branches are having a better opportunity to interact with one another, while in big city branches, this seems to be a rare one. Most of the respondents in the research response positively that is, they are quite satisfied with their present place of work.

Purpose And Uses Of Job Analysis :

- **Recruitment & Selection :** Job Analysis provides information about what the job entails and what human characteristics are required to perform the job. This information, in the form of job description and specifications, helps management decide what sort of people to recruit and hire.

- **Compensation :** Job analysis is crucial for estimating the value of each job & it's appropriate compensation. Compensation (such as salary and bonus) usually depends upon the job's required skill and education level, safety hazards, degree of responsibility and so on - all the factors we can assess through job analysis.

- **Performance Appraisal :** A performance appraisal compares each employee's actual performance with his or her performance standards. Managers use job analysis to determine the job's specific activities and performance standards.

- **Training :** The job description should show the activities and skills – and therefore the training - that job requires.

- **Discovering unassigned duties :** Job analysis can also help reveal unassigned duties. For example, a company's production manager says Mr. X is responsible for a dozen or so duties, such as production scheduling and raw material purchasing. However any reference of raw material inventory management was missing. On further study, the manager finds that none of the other manufacturing people are responsible of inventory management. Thus a manger has uncovered an essential unassigned duty with regards to job analysis.

Advantages of Job Analysis

- Job analysis helps the personnel manager at the time of recruitment and selection of right man on right job.
- It helps him to understand extent and scope of training required in that field.
- It helps in evaluating the job in which the worth of the job has to be evaluated.

- In those instances where smooth work force is required in concern.
- When he has to avoid overlapping of authority- responsibility relationship so that distortion in chain of command doesn't exist.
- It also helps to chalk out the compensation plans for the employees.
- It also helps the personnel manager to undertake performance appraisal effectively in a concern.

References :

1. Logasakthi, K., and Rajagopal, K. (2013) "A Study on Employee Health, Safety and Welfare Measures of Chemical Industry in the View of Salem Region." International Journal of Research in Business Management, Vol.1, No.1, June.
2. Misra, K.K. (1974). "Labour Welfare in Indian Industries." Meenakshi Prakashan, Meetut.
3. Neetha, N. (2001). "Gender and Technology: Impact of flexible Organization and Production on Female Labour in the Tiruppur Knitwear Industry." V.V. Giri NationalLabour Institute, Noida.
4. Padhi, P.K. (2007). "Labour and Industrial Laws." Prentice Hall India.
5. Rama Satya Narayana, M., and Jayaprakash Reddy. R. (2012). "Labour Welfare Measures in Cement Industries in India." International Journal of Physical and Social Sciences, Vol.2, No.7, July.
6. Report of National Commission on Labour, Government of India, 2002.
7. Sailesh Sindhu, (2012). "Role of Organization in Welfare Measures for Employees." International Journal in IT Management, Vol.2, No.9, September.
8. Saiyadin Mirza, S. (19830). "Voluntary Welfare in India", Lok Udyog, October, PP.29-33.
9. Satheeskumar, L., and Selvaraj. (2009). "Industrial Relations and HRM: Tensions, Dilemmas and Contradictions – An International Perspective." Economic Panorama, Vol.19, No.1, pp. 30-38.
10. Shobha Mishra., and Manju Bhagat. (2010)."Principles for Successful Implementation of Labour Welfare Activities from Police Theory to Functional Theory Retrieved." http://www.tesionline.com /intl/indepth.jsp?id=575, June.
11. Kahn W.A. 'Psychological conditions of personal engagement and disengagement at work, Academy of Management Journal, (1990)
12. Maslach C. Schaufelli W.B. and Leiter M.P., 'Job burnout, Annual Review of Psychology, 52, 397-422 (2001)

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

महिला उद्यमियों की सामाजिक एवं अर्थिक स्थिति का मूल्यांकन समस्या

ज्योति तिवारी
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

शोध सार :– भारत वर्ष में महिलाओं की समाजिक एवं अर्थिक स्थिति अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग महिलाओं का विकास कार्यक्रम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार की विकास योजनाओं का केन्द्र रहा है(महिला उद्यमी के समाजिक एवं अर्थिक राजनैतिक स्तर की पुरूषों की भार्ति ऊपर विकास के मुख्य भाग में जाकर जाना चाहिए आधुनिक व्यावसायिक क्षेत्रों में जैसेः– इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर प्रोगामिंग, होटल प्रबंध फैशन, ब्यूटी कल्चर रेडीमेड गारमेंट, कार्यालय प्रबंध आदि के प्रशिक्षण के लिए महिलाओं की प्राथमिकता दी जाती है। और महिला उद्यमी को अग्रसर किया जाता है।

मुख्य शब्द (की वर्ड) :– महिला उद्यमी सामाजिक व अर्थिक स्थिति विकसित देशो मे सामाजिक एवं अर्थिक परिदृश्य में परिवर्तन होने के पश्चात् महिला उद्यमियों की संख्या में वृद्धि हुई आधुनिकीरण के युग कृषि उद्योग व सेवा क्षेत्र में महिलाओं के लिए नवीन रोजगार के नवीन अवसरों का मगन सृजन हो रहा है। भारत में शहरी एवं ग्रमीण क्षेत्रों में वृद्धि हो रही है। परन्तु आज महिलाएँ घरेलू काम तक ही सीमित है। इनमे कला होने के वावजूद भी आज उद्यम स्थापित करने एवं स्पष्ट निर्णय लेने में असमर्थ है। किन्तु महिलाएँ उद्यमियों में अपनें उद्यम के प्रति कुशलता एवं तत्परता होना जरूरी है। ताकि वह एक कुशल उद्यमी बन सके।

राठौर एवं छापरा (1991). ने अपने बोध अध्ययन बताया कि भारतीय महिला उघमियों को दोहरी भूमिका का निवर्हन करना होता है। एक तरफ पारस्परिक ग्रहणी के रूप में कार्य करना पडता है। तो दूसरी ओर व्यवसाय एवं उद्योग मे पुरूषो से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पडता है। अधिकांश महिला उद्यमी परिवार एवं बच्चो को प्रर्याप्त समय देने मे असमर्थ होती है। इन समस्याओ के समाधान हेतु समाजिक सोच मे परिवर्तन आवाश्यक है।

डॉ पदमा अय्यर (2002) ने आपने अध्ययन उत्तरांचल राज्य मे महिला उद्यमी मे महिला उद्यमियो के समक्ष उत्पन्न विभिन्न समस्याओ का विशलेषण किया है। उनका मानना है कि महिला उद्यमियो को उद्यम स्थापना प्रबंध एवं संचालन के दौरान अनेक समस्याओ से अबरू होना पड़ता है। मुख्य समस्याएँ अधीसंरचना सुविधाओ का अभाव वित्त तकनीकी कर्मचारियो से सबंधी और उत्पाद के विक्रय एवं विपणन से सबंधी होती है। उपरोक्त समस्यॉए लगभग संपमर्ण देश मे ही विधमान है। इसके साथ ह महिलाओ को घरेलू विरोध एवं समाजिक धारणाओं का भी सामना करने की चुनौतिया होती है।

शोध प्रविधि :– प्रस्तुत शोध कार्य मे प्राथमिक एव द्वितीयक पर अधारित है। दैव निर्देशन विधि के द्वारा महिला उद्यमियो से प्रश्नावली व साक्षात्कर की सूचनाओ का सकलन किया गया है।

तलिका क्रमांक 1
महिला उद्यमिता आयु वर्ग के अनुसार

आयु	संख्या	प्रतिशत
20–30	30	50
30–40	15	25
40–50	11	18
30–60	04	07
कुल	60	100

तालिका क्रमशः से स्पष्ट है। कि महिला उद्यमिता के सबंध को आयु वर्ग के सबंध मे आयु वर्ग के विशलेषण से यह स्पष्ट है कि सर्वाधिक महिला उद्यमी 20–30 वर्ष की आयू वर्ग की 50 प्रतिशत है। जबकि सबसे कम महिला उद्यमी का प्रतिशत (50–60) वर्ष (4) 7 प्रतिशत महिला उद्यमी है।

तालिका क्रमांक 2
महिला उद्यमिता स्वरोजगार के अधार पर वर्गीकरण

विवरण	सख्या	प्रतिशत
हाँ	65	81.25
नही	15	17.75
कुल	80	100.00

तालिका क्रमांक 2 से स्पष्ट होता है। कि महिला उद्यमी स्वारोजगार के अधार पर 65 (81.25) प्रतिशत जुड़ी है। जबकि अभी तक किसी भी प्रकार के रोजगार मे (17.75) नही जुड़ पायी।

तालिका क्रमांक 3
महिला उद्यमिता मासिक आपके अधार पर वर्गीकरण

विवरण	संस्था	प्रतिशत
500 से 1500	28	47
1500 से 2000	11	18
2000 से 2500	9	15
2500 से 3000	8	13
कुल	60	100

मासिक आप इस तालिका क्रं. 3 से अवलोकन से स्पष्ट होता है। कि 47 प्रतिशत महिलाओ कि मासिक आप 500 से कम है और 7 प्रतिशत महिलाए जो कि 3000 से अधिक मासिक आय प्राप्त करती है।

समस्याएँ :– महिला उद्यमी मे स्वयं निर्णय लेने की क्षमता का अभाव होने के कारण उद्यमी के रूप मे उनकी सफलता को प्रमाणित करती है।

- महिलाओं मे शिक्षा स्तर मे गिरावट
- महिलाओ को परिवार और अपने काम के बीच सामजाप स्थापित करने मे बहुत कठनाईयो का सामना करना पडता है।
- महिलाओ का जीवन अनेक समास्याओ से घिरा हुआ होता है। पुरूषो कि दोहरी मानस्किता अपनी उद्यमी पत्नी की सफलताओ को सहन नहीं कर पाते।

सुझाव :–

1. महिलाओ मे आत्मविश्वास और आत्मनिर्भता की भावना पैदा करने के लिए कार्यक्रमो की सहायता प्रदाय करनी चाहिए।
2. महिलाओ मे शिक्षा के स्तर को सूधारने के महिला शिक्षा पर आपके प्रयास किये जाने चाहिए।

निष्कर्ष :– भारत में महिलाओं में उद्यतशीलता के गुण विकसित करने के लिए बढ़ी संख्या में प्रशिक्षण और प्रोत्साहन कार्यक्रम चलायें जा रहे है। समय समय पर महिलाओं के कौशल तथा व्यक्तिगत विकास हेतु अभेद प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जा रहे है। व्यवसाय व्यापार का क्षेत्र एक विशाल क्षेत्र है। यदि महिला उद्यमी एक बड़ी रूचि के साथ छोटे पैमाने पर ही अपना करोबार शुरू करे। तो यह कदम उनका आत्मविश्वास बढ़ता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. त्रिपाठी डॉ. नरेश चक्र उद्यमिता विकास भ पू.
2. कोठारी डॉ. मिलिण्ड महिला उद्यमिता विकास
3. डॉ अरूण गंगेले महिला उद्यमिता
4. शर्मा दत्त महिला विकास और सशक्ति पब्लिशिन।
5. योजना – मासिक नई दिल्ली।
6. कुरूक्षेत्र, महिला उद्यम नई दिल्ली

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

पन्ना के दर्शनीय स्थल एवं पर्यटन

डॉ. मनीषा खरे
अतिथि. विद्वान–वाणिज्य, शासकीय छत्रसाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना

पर्यटन आदिकाल से ही मनुष्यों का स्वाभाव रहा हैं। घूमना फिरना भी मनुष्य के जीवन को आनंद से भर देता है। इसका पता लोगों ने बहुत पता लगा लिया था। पहले लोग पैदल चलकर या समुद्र मार्ग से लम्बी–लम्बी दूरियों तय कर अपने भ्रमण के शौक को पूरा करते थे। जहाँ तक भारत के लोगों की बात है हमारे यहाँ धार्मिक दृष्टी से की गई यात्राओं की बड़ी महत्ता रही है। हमारा देश विभिन्न भारतीय ऐतहासिक स्थलों, पारंपरिक स्थलों, रहस्यमय स्थानों के साथ धार्मिक स्थानों एवं दर्शनीय पर्यटन स्थलों से भरा हुआ है।

पन्ना जिले का सामान्य परिचय – पन्ना जिला प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सुरम्य घाटियों से संपन्न अपने अंचल में प्रचुर खनिज सम्पदा संजोय हुए है। पन्ना जिले की स्थापना। अप्रैल 1949 को हुई थी। यह जिला 7135 वर्ग किलोमीटर भू–भाग पर फैला हुआ है। पन्ना मध्य रेलवे सतना स्टेशन से लगभग 95 किलोमीटर और खजुराहो हवाई अड्डे से लगभग 50 किलोमीटर दूर स्थित है।

राष्ट्र के विकास में पर्यटन न केवल महत्वपूर्ण आर्थिक क्रिया है बल्कि विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन लाने का महत्वपूर्ण माध्यम है। पन्ना जिला में अनेक पर्यटन स्थल एवं धार्मिक दृष्टी से महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल है। पर्यटन नगरी पन्ना 17 वीं 18 वीं एवं 19 वीं शताब्दी के बने हिन्दू मंदिरों, तालाबों, एवं हीरा खदानों के लिए पूरे भारत में प्रसिद्ध है।

पन्ना शहर के दर्शनीय पर्यटन स्थल

1. **श्री जुगल किशोर जी का मंदिर** :– श्री जुगत किशोर जी का मंदिर एक शक्ति पीठ स्थल है। यहाँ पर लोगों की मनोकामनायें पूर्ण होती है। मंदिर के गर्भगृह में श्री कृष्ण जी एवं राधा जी की मूर्ति विराजमान हैं। बतलाते हैं की विक्रम संवत 1665 में महाराजा छत्रसाल के पिता श्री चम्पतराय ने जुगल किशोर जी के मंदिर का निर्माण करवाकर श्री कृष्ण जी की मूर्ति की प्रतिष्ठा मंदिर के गर्भगृह में विधि विधान से करवाई थी। उस वक्त तत्कालीन ओरछा नरेश वीर सिंह जू देव ने इस मंदिर के सबसे ऊपर वाले शिखर पर सवा मन सोने का कलश चढ़ाया था। परन्तु मौजूदा समय में उस सोने के कलश का कोई पता नहीं है। कब से वह कलश मंदिर के शिखर पर नहीं है यह कोई नहीं है यह कोई नहीं बता पा रहा है। पन्ना राज्य के गजेटियर के पेज क्रमांक 174 में इस बात का उल्लेख है की संवत् 1773 में पन्ना नरेश हिन्दुपत द्वारा मंदिर का जीर्णोद्धार कराया गया था तथा राधिका जी की मूर्ति वृन्दावन से लाकर प्राण प्रतिष्ठा कराई गई थी। इस मंदिर में निर्माणकाल से आज तक लगातार हजारो की संख्या में श्रद्धालू जन आते हैं।

समूचे बुन्देलखण्ड वासियों के लिए भगवान जुगल किशोर का पवित्र मंदिर आस्था का केंद्र है। जन्माष्टमी के दिन यहाँ पर श्रद्धालुओं की इतनी भीड़ रहती है की भगवान जुगल किशोर की एक झलक पाना तक बड़ा कठिन होता है। प्रत्येक अमावस्या के दिन समूचे बुन्देलखण्ड से श्रद्धालु भगवान के दर्शन करने के लिए आते हैं। ऐसी मान्यता है की अमावस्या के दिन यहाँ जुगल किशोर से मांगने पर हर मनोकामना पूरी होती हैं। यह भी जन मान्यता है कि चारों धाम की यात्रा की हो या किसी भी तीर्थ स्थल की यात्रा से लौटकर यहाँ हाजरी दे देने से कार्य निश्चित सफल होते हैं। कहा जाता है की श्री कृष्ण की मुरली में वेशकीमती हीरे जड़े गए थे। विश्वास और सच्चे मन से दर्शन करने से दर्शनार्थियों की मनोकामना पूर्ण होती हैं। यह मंदिर एक सिद्ध शक्तिपीठ हैं।

2. **श्री बलदाऊ जी का मंदिर** :– हलषष्ठी पर्व देश में धूम धाम से मनाया जाता है। बुन्देलखण्ड और महाकौशल में इसे हरछट के नाम से मनाते हैं। यह पर्व श्री कृष्ण के भाई बलदाऊ को समर्पित है। श्री बलदाऊ जी के मंदिर का निर्माण सन 1876 में पन्ना नरेश रूद्र प्रताप सिंह जूदेव द्वारा करवाया गया था। यह मंदिर 16 कलाओं से सुसज्जित करके बनाया गया। कहा जाता है। कि कृषिकार्य में उनकी विशेष रूचि थी जिसकी वजह से उन्होंने हल धारण किये श्री बल्दाऊ जी के मंदिर का निर्माण कराया। मंदिर का निर्माण यूरोपियन स्टाइल के कैथोलिक शैली में ब्रिटिश इंजीनियरों द्वारा किया गया। इनकी वास्तु शैली पूर्व और पश्चिम के धर्म का संगम कराती प्रतीत होती हैं। मंदिर कई विशेषताओं से परिपूर्ण है। बाहर से देखने

पर मंदिर किसी शानदार और विशाल चर्च की तरह नजर आता है। जबकि अन्दर से एक भव्य मंदिर का रूप लिए है। इस मंदिर के निर्माण में भगवान् श्री कृष्ण की 16 कलाओं का विशेष ध्यान रखा गया है मंदिर में प्रवेश करने के लिए 16 सीढ़िया हैं, अन्दर 16 मंडप और 16 झरोखे हैं। मंदिर 16 विशाल स्तंभों पर टिका है। मंदिर के गर्भगृह में श्री बल्दाऊ जी की विशाल शालिग्राम की प्रतिमा है जो अत्यंत आकर्षक और मनोहारी है। वैसे सभी त्योहारों पर यहाँ विशेष पूजा अर्चना होती है पर हलषष्ठी पर्व की बात कुछ अलग होती है। देव बल्दाऊ को समर्पित इस पर्व पर पूजा अर्चना करने के लिए जिला भर से लोग आते हैं। परंपरागत रूप से राजपरिवार के लोग इस दिन यहाँ पूजा करने आते हैं। माना जाता है की सम्पूर्ण देश में बल्दाऊ की यह अद्वितीय मूर्ति है। देश भर में न तो उनका कहीं ऐसा मंदिर है और न ही ऐसी मूर्ति देखने को मिलती है। कहा जाता है की यह इटली के एक चर्च की प्रतिकृति है। यह मंदिर अपने सौन्दर्य एवं भव्यता के लिए एक अलग पहचान बने हुए है जो अद्वितीय है।

3. **श्री राम जानकी मंदिर** :– बताया जाता है कि राम जानकी जी का मंदिर महारानी सुजान कुँवर द्वारा संवत् 1652 में बनवाया गया था। परन्तु इस मंदिर का जीर्णोद्धार पन्ना नरेश श्री यादवेन्द्र सिंह जू देव द्वारा सन् 1920 में करवाकर श्री राम–सीता एवं लक्ष्मण जी की मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा करवाई गई। इस मंदिर की अंदर की दीवारों में सातो काण्ड रामायण का सचित्र उल्लेख किया गया है। जो अपने आप में पूर्णतः कला से भरा हुआ है। पन्ना के रामजानकी जी के मंदिर में रामनवमी के दिन श्री राम जन्म उत्सव मनाया जाता है। इस दिन मंदिर का विशाल प्रागंण श्रद्धालुओं से भरा होता है। श्री राम जानकी और भाई लक्ष्मण जी की प्रतिमा के साथ–साथ यहाँ की कलाकृति अपने आप में अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है।

4. **श्री जगदीश स्वामी जी का मंदिर** :– यह एक ऐतिहासिक मंदिर पन्ना नरेश जी किशोर सिंह जू देव द्वारा सन् 1813 में बनवाया गया था। मंदिर के गर्भ गृह में श्री जगन्नाथ स्वामी जी की मूर्ति स्थापित की गई है। श्री जगदीश स्वामी के मंदिर में जगन्नाथ पुरी की तरह रथयात्रा का आयोजन पारंपरिक तरीके से किया जाता है।

5. **श्री गोविन्द जी का मंदिर** :– यह मंदिर पन्ना नरेश श्री रूद्र प्रताप सिंह जू देव की रानी बगियावाली सरकार ने बनवाया था। इस मंदिर का निर्माण सन् 1880 के लगभग होना माना जाता है। इस मंदिर के गर्म गृह में गोविन्द जी की बहुत ही सुन्दर एवं आकर्षक प्रतिमा विराजमान है।

6. **बड़ी देवी (पदमावती देवी) मंदिर** :– यह मंदिर पन्ना से दो किलोमीटर की दूरी पर अजयगढ़ बायपास रोड के किनारे किल नदी के तट पर एक पथरीले क्षेत्र में बना हुआ है। यह मंदिर भी एक शक्तिपीठ के रूप में है। इस मंदिर में माँ दुर्गा अपनी सातों बहनों के साथ विराजमान है। यह अत्यंत प्राचीन है जो गौड़वाने राज के समय से विधमान है।

7. **स्वामी श्री प्राणनाम जी का मंदिर** :– स्वामी जी प्राणनाथ जी का प्राकस्य गुजरात के जामनगर में विक्रम संवत 1675 में हुआ था और संवत् 1751 में श्रावण कृष्ण पथ तृतीया दोपहर के समय वे ब्रम्हलीन हुए। उनके पिता का नाम श्रीमती धनबाई था। महामति श्री प्राणनाथ जी महाराजा छत्रसाल के गुरू थे। महामति श्री प्राणनाथ एवं उनके साथ आये सुन्दरनाथ शिष्य मण्डली की अनवरतफ साधना, भक्ति और ज्ञानमयी चर्चा के कारण श्री प्राणनाथ जी की ध्यान स्थली का प्रतीक मन्दिर श्री गुम्मट जी अपनी अद्भुत सुन्दरता एवं अद्भुत बनावट कृति में जो रहस्य समाया हुआ है, यह परम सौभाग्य पन्ना को महातीर्थ होने का गौरव प्रदान करता है। जिसे मुक्तिपीठ भी कहते है।

श्री प्राणनाथ जी मन्दिर के अंतर्गत मुख्य रूप से छः मंदिरो का उल्लेख एवं दर्शन होता है। 1) श्री गुम्मट जी 2) श्री बंगला जी 3) श्री देव चन्द्र जी मंदिर 4) श्री महारानी जी मंदिर 5) श्री चौपड़ा मंदिर 6) श्री खेजड़ा मंदिर। ये सभी मंदिर अपनी अपनी मुख्य विशेषता के लिए जाने जाते है।

महामति श्री प्राणनाथ जी ने समय सन् 1688 में समस्त सुन्दरनाथ शिष्यों ने अपने श्रमदान द्वारा एक श्राव्य मंदिर का निर्माण किया जिसे श्री गुम्मट जी कहते है। श्री गुम्मट जी श्री प्राणनाथ जी का साधना स्थल है अर्थात श्री प्राणनाथ में पूर्ण ब्रम्ह परमात्मा का अवतरण हुआ और वे महामति प्राणनाथ हुये। जैसे ही हम मंदिर में प्रवेश करते है एक विशाल दरवाजा जिसकी लम्बाई 12–15 फीट की है और यह दरवाजा आगे से चांदी का और पीछे जर्मन सिल्वर का इसमें बहुत सुन्दर चित्र नुमा कार्य किया गया है मंदिर के अन्दर प्रवेश करने पर छत की दीवार पर अखंडरास करती हुई आकर्षण कृष्ण गोपी की आकृतियां आपको अपनी और आकर्षित कर लेती है मंदिर की परिकृमा में बहुत ही बारीक कलाकृति, शीशे लगे हुए है।

महामति श्री प्राणनाथ जी का सिंहासन स्वर्ण से बना हुआ है जिसके 8 पाये, 8 कलश अपनी सुन्दरता से चमक रहे हैं मंदिर को जब हम बाहर से देखते है तो वह पूर्ण संगमरमर से बना है जिसे देखते ही हमें ताज महल की याद आ जाती है। इसके आठ विशाल गुरज गुम्तियां बनी हैं और एक गुम्मज बीच में है इस प्रकार 9 गुम्मज हैं जिसके ऊपर स्वर्ण कलश एवं पताकायें लहरा रही है। बीच की गुरज में श्री प्राणनाथ जी का आशीर्वाद स्वरूप पंचशक्ति प्रतीक पंजा शोभायमान है जो की सोने से बना हुआ है।

दूसरा श्री बंगला जी का मंदिर है जिसे सभा भवन भी कहते है। ताम्रपत्र से इसके ऊपर की सीलिंग का निर्माण हुआ है। इस मंदिर में प्रवेश करने पर आपको ब्रज की लीलाओं का वर्णन यहां की परिम्क्रमा की दीवारों पर मिलता है। यहां पर भी एक विशाल चांदी का सिंहासन है जिसपर बैठ कर श्री प्राणनाथ जी ब्रहम वाणी का चर्चा करते थ।

8. **पाण्डव फॉल** :– यह फॉल पन्ना से 11 कि. मी की दूरी पर पन्न छतरपुर मार्ग पर स्थित है। इसमे एक पहाड़ी नाला गिरता है। यह फॉल की तलहटी में एक जल कुण्ड की तरह भरा रहता हैं। ऊपर की और बगैर किसी सोर्स के पहाड़ के कटाव से पत्थर की हवाई जड़ों से निर्मल स्वच्छ जल रहता है। यह पत्थरों की हवाई जड़ों से झरता हुआ पानी पूर्णतः विसलरी वाटर है जिसकों कलकत्ता से स्वीस नागरिक मिस्टर बोहनिन ब्लूस्ट जील सा ने टेस्ट करवाया था जिसमें पूरे तथ्य बिसलरी वाटर के होना विधमान है। बतलाते है कि पाण्डवों ने बनवास काल में अज्ञात वास के लिए यह जबह चुनी थी। यहां पर पाचों पाण्डव काफी समय तक रूके ऐसी किम्बदंती है। इसके बगल में बीच पहाड़ के किनार आने जाने हेतु सुरंग नुमा गुफा बनी हुई है जो भी आज यथा स्थिति में हैं।

9. **ब्रहस्पति कुण्ड** :– ब्रहस्पति कुण्ड की दूरी पन्ना से लगभग 35 कि.मी. पूर्व दिशा में पन्ना पहाड़ीखेडा रोड पर तथा गजना धरमपुर ग्राम से तीन किलोमीटर पश्चिम दिशा की और स्थित है। प्राचानी काल से यह किंबदती चील आ रही है। कि इन्द्र देव के गुश्र ब्रहस्पति जी किसी वजह से इन्द्र से रूष्ट होरक पृथ्वीलोक चले आये थे। वे इसी कुण्ड की तलहठी में एक पत्थर की शिला पर आसन लगाकर लम्बे समय तक ईश्वर के ध्यान में मग्न हुये थे। अपने गुरू को मनाने के लिए साक्षात इन्द्र देव अपने रथ से इसी स्थली पर उतरे थे। जहां पर इन्द्रदेव का रथ खड़ा रहा, वहां की शिलाओं में चिन्हों के साथ साथ दरारें सी पड़ गई थी जो चट्टानों पर आज भी दिखलाई देती है। इस जगह के पत्थर कुछ पिघले हुए से दिखाई देते हैं। मौर्य वंश के शासन के समय समुद्र गुप्त मौर्य यहां बैठकर अपने सेनापतियों के साथ युद्ध की रणनीति बनाते थे। यह स्थली उन्हें बहुत प्रिय थी। सिलाओं पर उस समय की पुरानी कई बैठके बनी हुई हैं। यह अत्यंत सिद्ध स्थली है। इस तपोभूमि पर कई ऋषि मुनियों ने तपस्या की तथा सिद्धि प्राप्त की है। एक पहाड़ी नाला इस कुंड में गिरता है। इस स्थल के आस पास उथली हीरा खदानें भी है। घने वनों एवं पहाड़ो के बीचो बीच स्थित यह रचना बहुत ही खूबसूरत पर्यटन स्थल हैं। यहां से देखने पर नीचे की और की पहाड़ियों एवं घने वन प्रवेश बहुत ही सुन्दर दिखलाई देते हैं। यहां के पर्वत पुरातन समय में ज्वालामुखी के विस्फोटों से तथा पृथ्वी की उथल पुथल से बने हुए प्रतीत होते है। खगोल शास्त्र के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है की ज्वालामुखी के विस्फोटों से यहां की पृथ्वी, पत्थर च चट्टाने लावा के रूप में पिघल कर चारों तरफ बनी होंगी। इस उथल–फुथल से यह दुर्गम स्थल बना, जो पृथ्वी की उथल–फुथल का ही कारण भी माना जाता है। इस कुण्ड की गहराई लगभग 200 मीटर होगी। पन्ना के सभी वन्य स्थलों में यह सबसे सुन्दर है। कहा जाता है की इस कुंड के एक कटाव में अगस्त मुनि की रसायन प्रयोगशाला थी, जहां पर ऋषियों द्वारा अमोध अस्त्र शस्त्र बनाये जाते थे। वर्तमान में उस रसायन प्रयोगशाला की जगह एक अत्यंत प्राचीन शिवलिंग स्थापित है तथा बगल में एक छोटा सा पानी का कुंड हमेशा भरा रहता है।

संदर्भ सूची :–

1. तिवारी गोले लाल – बुन्देलखण्ड संक्षिप्त इतिहास
2. पाण्डेय अयोध्या प्रसाद – चंदेल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास
3. बुन्देली राधा कृष्ण – बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन
4. सूर्य भान सिंह परमार – पर्यटन नगरी पन्ना दर्शन
5. रिछारिया रामसेवक – बुन्देलखण्ड के किले और गढ़ियां
6. पंडित ब्रजबासी लाल दुबे – पन्ना परम धाम में पूजा एवं पर्व संस्कृति

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

माध्यमिक स्तर की छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन के प्रभाव का अध्ययन

श्वेता गुप्ता
शोधार्थी, शिक्षा संकाय, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल
डॉ. कालिका यादव
प्राध्यापक, शिक्षा संकाय, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रस्तुत शोध पत्र में माध्यमिक स्तर की छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 100 छात्राओं का चयन कर उन पर 'व्यक्तिगत मूल्य मापनी' एवं 'टेलीविजन प्रभाव प्रश्नावली' का प्रशासन किया गया तथा टेलीविजन प्रभाव प्रश्नावली के आधार पर छात्राओं को सकारात्मक एवं नकारात्मक समूह में बांट कर छात्राओं के विभिन्न मूल्यों पर टेलीविजन के प्रभाव का अध्ययन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार छात्राओं के ईमानदारी, प्रेम, मददगारिता, शिष्टाचार, विश्वसनीयता, अनुशासन मूल्यों पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया जबकि साहस, स्वच्छता मूल्यों पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव पाया गया।

प्राचीन समय से भारतीय सभ्यता व संस्कृति सम्पूर्ण विश्व में विख्यात रही है जिसमें मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हमारे देश में बड़ों का आदर करना, अतिथि सत्कार, भाईचारे की भावना सभी धर्मों का आदर करना जैसे संस्कारों को सदैव से ही महत्व दिया गया है। जो किसी भी देश के विकास के लिए अत्यंत ही आवश्यक है। यदि देश में शांति, नैतिकता, अहिंसा आदि मूल्य व्याप्त होंगे तो निश्चित ही देश तरक्की की ओर अग्रसर होगा। इसलिए देश के प्रत्येक नागरिक के जीवन में मूल्यों का विशेष योगदान है। शास्त्रों में भी मूल्यविहीन व्यक्ति की तुलना पशु से की गई है। किसी भी व्यक्ति में निहित मूल्य उस व्यक्ति की अभिव्यक्ति, निर्णय क्षमता, व्यवहार उसके सामाजिक संबंध तथा उसकी सोच तक को प्रदर्शित करते हैं अतः मूल्य हमारे जीवन में पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करते हैं।

मनुष्य जिस भी परिवेश में रहता है वह उससे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है तथा यह प्रभाव उसके व्यवहार में स्पष्ट एवं दृष्टिगोचर होते हैं। अतः मनुष्य का सांस्कृतिक वातावरण उत्तम होना चाहिए इस हेतु पारिवारिक वातावरण, शैक्षिक वातावरण, सामाजिक वातावरण आदि का अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान है किन्तु वर्तमान समय में हमारे सांस्कृतिक वातावरण को प्रभावित करने में प्रमुख भूमिका जनसंचार के साधनों की भी है जिसमें सबसे अधिक सशक्त साधन टेलीविजन है। प्रत्येक व्यक्ति को औपचारिक रूप से मूल्यों की शिक्षा देना असंभव ही जान पड़ता है लेकिन इस कार्य को टेलीविजन के माध्यम से कर पाना संभव हुआ है जो कि जनसंचार का एक अनौपचारिक साधन है। टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले विभिन्न कार्यक्रम हर उम्र, हम समुदाय व हर सम्प्रदाय के लोगों के लिए होते हैं जिन्हें देखकर वे उनसे प्रभावित होते हैं और यह जनसंचार का एक ऐसा साधन है जो कि देखने व सुनने दोनों की सुविधा प्रदान करता है। एडगर डेल महोदय ने भी स्पष्ट किया है कि यदि किसी सूचना को देखा व सुना जाता है तो इसका प्रभाव उसके मस्तिष्क पर अधिक समय तक रहता है। आज प्रत्येक अवस्था के व्यक्ति टेलीविजन का प्रयोग कर रहे हैं। चाहे वह शैशवावस्था हो अथवा प्रौढ़ावस्था। विभिन्न शोधों के आधार पर टेलीविजन से होने वाले अच्छे व बुरे प्रभावों को समाज के सामने उजागर किया जाता रहा है किन्तु इसके बाद भी इसके दर्शकों की संख्या में वृद्धि हुई है। अतः आज इस बात की आवश्यकता महसूस की जा रही है कि विभिन्न जनसंचार के माध्यमों से भावी पीढ़ी के मूल्यों के उन्नयन हेतु प्रयास किये जायें। इस हेतु उनके मूल्यों पर टेलीविजन के प्रभाव को जानने की आवश्यकता जान पड़ती है।

जीवन मूल्यों से आशय – मूल्य एक ऐसी आचरण संहिता या सद्गुणों का समावेश है जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर समाज में प्रभावशाली तथा विश्वसनीय बनकर उभरता है, वहीं ''बहुजन हित'' जीवन मूल्यों की कसौटी मानी जाती है। जीवन मूल्य व्यक्ति का वह आन्तरिक गुण है जो उसे विकास की ओर ले जाते हुए उसके जीवन को संरक्षित रखते हैं। स्पष्ट है कि जीवन मूल्य कोई बाहरी वस्तु

नहीं बल्कि व्यक्ति की अंतर्रात्मा का आंतरिक गुण है जिसे दूसरे शब्दों में हम सद्गुण भी कह सकते हैं।

जीवन को व्यवस्थित रूप से चलाने हेतु जिन जीवन मूल्यों की आवश्यकता होती है वे सच्चाई, सहयोग, साहस, दृढ़–निश्चय, ईमानदारी, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूति, धैर्य, अनुशासन, निर्भिकता आदि हैं।

शोध से संबंधित पूर्व अध्ययन – वास्तव में संबंधित साहित्य शोध कार्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इसके अभाव में शोधकर्ता उचित दिशा में एक भी कदम आगे नहीं बढ़ सकता। अतः निम्नलिखित शोधकार्य पूर्व में हुए हैं –

एन्डर्सन, डी.आर. (2001) इन्होंने ''टेलीविजन इफेक्ट ऑन रिडींग एंड ऐकेडमिक एचीवमेन्ट'' शीर्षक पर अध्ययन किया जिसमें निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए –

1. 2 से 7 वर्ष की आयु तक के अमेरिकन बच्चे सप्ताह में लगभग 25 घंटे टी.वी. देखते हैं।
2. 2 से 7 वर्ष की आयु तक के 20 प्रतिशत बच्चों, 8 से 12 वर्ष की आयु तक के 46 प्रतिशत बच्चों व 13 से 17 वर्ष की आयु तक के 18 प्रतिशत बच्चों के शयन कक्ष में टेलीविजन पाया गया।
3. सोने के अतिरिक्त अन्य गतिविधियों की अपेक्षा बच्चे दूरदर्शन देखने में अधिक समय व्यतीत करते हैं।
4. दूरदर्शन देखने का पढ़ने पर व अन्य शैक्षणिक दक्षताओं पर प्रभाव इस पर निर्भर करता है कि हम दूरदर्शन पर किस प्रकार के कार्यक्रम देखते हैं व इस पर की हम कितनी देर कार्यक्रम देखते हैं।

सिंह, प्रतिमा एवं कौर, दिलशाद (2002) इनके द्वारा ''ए स्टडी ऑफ पेरेन्ट चाईल्ड इन्ट्रक्शन एण्ड पेरेन्टल रेस्ट्रिकेशन्स ऑन टी.वी. व्यूइंग अमंग चिल्ड्रन'' अध्ययन किया गया। शोध के प्राप्त निष्कर्ष में जिन बच्चों के माता–पिता बच्चों के साथ कम रहते थे उन पर दूरदर्शन का नकारात्मक प्रभाव पड़ा। वहीं बच्चों पर यदि कार्यक्रम देखने संबंधी नियंत्रण रहता है कि उन्हें क्या, कब और कैसे कार्यक्रम देखना है तो उसका सकारात्मक प्रभाव दिखाई पड़ता है। बच्चों को यह भी समझाना आवश्यक है कि वास्तविक दुनिया और टेलीविजन में कितना अन्तर है।

तिवारी, महेन्द्र कुमार (2014) के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि सरस्वती विद्यामंदिर में अध्ययनरत छात्रों में उच्च सामाजिक मूल्य, छात्राओं में अति उच्च सामाजिक मूल्य जबकि विद्यार्थियों में उच्च सामाजिक मूल्य पाये गये। छात्राओं में छात्रों से अधिक सामाजिक मूल्य पाये गये।

टोटलीकर, प्रियंका (2016) ये जो एक विकसित छठवीं इन्द्रिय वाली साधिका है, ने अध्ययन किया कि जब कोई दूरदर्शन पर मनोरंजक/हिंसक कार्यक्रम देखता है तो आध्यात्मिक आयाम में क्या घटता है? इस विश्लेषण में उन्होंने पाया कि सत्व प्रधान कार्यक्रम जैसे – संत का सत्संग आदि देखने का हमारे ऊपर आध्यात्मिक रूप से लाभदायक प्रभाव होता है। वहीं पाया गया कि जब कार्यक्रम में हिंसा, हत्या, नग्नता, कामुकता व गाली–गलौज, धर्म–निन्दा व तम प्रधान भाषा का प्रयोग किया जाता है तो इसका दर्शक पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

उद्देश्य – माध्यमिक स्तर की छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना – माध्यमिक स्तर की छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

उपकरण –

1. व्यक्तिगत मूल्य मापनी – मधुलिका वर्मा एवं विंध्येश्वरी पंवार

2. टेलीविजन का प्रभाव जानने हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली।

विधि – प्रस्तुत शोधकार्य हेतु खण्डवा शहर के चार शासकीय व अशासकीय माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा 10 में अध्ययनरत् 100 छात्राओं का ''यादृच्छिक न्यादर्श विधि'' द्वारा चयन किया गया व उन पर ''व्यक्तिगत मूल्य मापनी'' तथा स्वनिर्मित ''टेलीविजन का प्रभाव जानने हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली'' का प्रशासन किया गया।

''टेलीविजन का प्रभाव जानने हेतु प्रश्नावली'' के प्राप्तांकों के आधार पर छात्राओं को सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव के वर्गों में विभाजित किया गया व उन छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन का प्रभाव

जानने हेतु मास्टर शीट तैयार की गई। मध्यमान, मानव विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आँकड़ों का विश्लेषण किया गया एवं प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण –

परिकल्पना : माध्यमिक स्तर की छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

तालिका

माध्यमिक स्तर की छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन के प्रभाव संबंधी तुलनात्मक परिणाम

मूल्य	टेलीविजन का प्रभाव	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
ईमानदारी	सकारात्मक	61	14.03	2.01	0.62	> 0.05
	नकारात्मक	39	13.74	2.38		
प्रेम	सकारात्मक	61	13.28	2.21	1.68	> 0.05
	नकारात्मक	39	12.59	1.85		
मददगारिता	सकारात्मक	61	13.97	2.37	0.73	> 0.05
	नकारात्मक	39	13.62	2.35		
साहस	सकारात्मक	61	11.39	2.02	2.86	< 0.01
	नकारात्मक	39	12.82	2.64		
शिष्टाचार	सकारात्मक	61	13.43	1.99	0.98	> 0.05
	नकारात्मक	39	13.00	2.12		
विश्वसनीयता	सकारात्मक	61	18.38	2.95	0.45	> 0.05
	नकारात्मक	39	18.08	3.46		
अनुशासन	सकारात्मक	61	14.07	2.02	0.96	> 0.05
	नकारात्मक	39	13.62	2.46		
स्वच्छता	सकारात्मक	61	14.44	2.23	3.51	< 0.01
	नकारात्मक	39	12.72	2.52		

स्वतंत्रता के अंश – 98

0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान – 1.98
0.01 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान – 2.63

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर की सकारात्मक एवं नकारात्मक टेलीविजन प्रभाव वाली छात्राओं के मध्य ईमानदारी, प्रेम, मददगारिता, शिष्टाचार, विश्वसनीयता, अनुशासन मूल्यों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि इन मूल्यों के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 0.62, 1.68, 0.73, 0.98, 0.45, 0.96 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 से कम हैं जबकि साहस, स्वच्छता मूल्यों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि इन मूल्यों के लिए प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 2.86, 3.51 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 2.63 से अधिक हैं।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है माध्यमिक स्तर की सकारात्मक एवं नकारात्मक टेलीविजन प्रभाव वाली छात्राओं के मध्य ईमानदारी, प्रेम, मददगारिता, शिष्टाचार, विश्वसनीयता, अनुशासन मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि साहस, स्वच्छता मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया तथा नकारात्मक टेलीविजन प्रभाव वाली छात्राओं में साहस मूल्य सकारात्मक टेलीविजन प्रभाव वाली छात्राओं की तुलना में बेहतर पाए गए परंतु सकारात्मक टेलीविजन प्रभाव वाली

छात्राओं में स्वच्छता मूल्य नकारात्मक टेलीविजन प्रभाव वाली छात्राओं की तुलना में बेहतर पाए गए, अर्थात् माध्यमिक स्तर की छात्राओं के ईमानदारी, प्रेम, मददगारिता, शिष्टाचार, विश्वसनीयता, अनुशासन मूल्यों पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया जबकि साहस, स्वच्छता मूल्यों पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव पाया गया।

परिणामों की व्याख्या – छात्राओं के विभिन्न जीवन मूल्यों, ईमानदारी, प्रेम, मददगारिता, शिष्टाचार, विश्वसनीयता व अनुशासन पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया जिससे यह बात प्रदर्शित होती है कि टेलीविजन से छात्राओं के उपरोक्त मूल्य प्रभावित नहीं होते हैं अर्थात् छात्राओं द्वारा टेलीविजन तो देखा जाता है किन्तु उन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों से वे उन्हीं बातों को ग्रहण करते हैं जो उन्हें उचित लगती है और इसका कारण पारिवारिक वातावरण, शैक्षिक वातावरण आदि भी हो सकते हैं।

छात्राओं के जीवन मूल्य स्वच्छता व साहस पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव पाया गया जिससे यह बात प्रदर्शित होती है कि छात्राएँ टेलीविजन देखकर स्वच्छता के संबंध में जागरूक होती हैं साथ ही इससे उनके साहस मूल्य में भी वृद्धि होती है। अतः विभिन्न शोधों के आधार पर यह कहा जा सकता हैं कि टेलीविजन का उचित प्रयोग समाज के विकास में सहायक सिद्ध होगा।

निष्कर्ष – माध्यमिक स्तर की छात्राओं के ईमानदारी, प्रेम, मददगारिता, शिष्टाचार, विश्वसनीयता, अनुशासन मूल्यों पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया जबकि साहस, स्वच्छता मूल्यों पर टेलीविजन का सार्थक प्रभाव पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. गुप्ता, एस. पी. (2005) : **सांख्किीय विधियां,** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
2. जोशी, उमा (2009) : **मीडिया रिसर्च,** आर्थर्स प्रेस, नई दिल्ली
3. पाण्डेय, रामशकल (2000) : **मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य**, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
4. पाण्डेय, रामशकल (2008) : **धर्म दर्शन और शिक्षा,** आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
5. रूहेला सत्यपाल (2009) : **मूल्य शिक्षा : क्या, क्यों, कैसे?,** अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा शर्मा, आर.ए. (1995) : **मानव मूल्य एवं शिक्षा**, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
6. सरीन एवं सरीन (2007) : **शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ,** विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
7. श्रीवास्तव महेन्द्रनाथ (2014): **शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी,** अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
8. **दूरदर्शन और सिनेमा के आध्यात्मिक प्रभाव** : (https : //www.spiritualresearch foundation.org
9. **तिवारी, महेन्द्र कुमार (2014)** ''सरस्वती विद्या मंदिर के विद्यार्थियों में पाये जाने वाले सामाजिक मूल्यों का अध्ययन'', सामाजिक शोध योजना, वॉल्यूम 2, अंक 3, वर्ष 2, जुलाई 2014, पेज नं. 99–101
10. **टोटलीकर, प्रियंका** ''दूरदर्शन और सिनेमा के आध्यात्मिक प्रभाव'', https://www.spiritual Researchfoundation.org

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

संगीता गलफट
शोधार्थी, शिक्षा संकाय, आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल
डॉ. आशीष बाजपेयी
प्राध्यापक, वेदिका कॉलेज ऑफ एजुकेशन, आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इसके लिये बैतूल शहर में स्थित शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा 10 वीं में अध्ययनरत 200 विद्यार्थियों का चयन किया गया। शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए कक्षा 10 वीं की बार्षिक परीक्षा के प्राप्तांक मूल प्राप्तांक के रूप में लिए गये। प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए क्रांतिक अनुपात परीक्षण का प्रयोग किया गया। शोध परिणामों से यह ज्ञात हुआ कि माध्यमिक स्तर के अशासकीय विद्यालयों के छात्रों/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, शासकीय विद्यालयों के छात्रों/विद्यार्थियों से उच्च पायी गयी परंतु शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों की छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मुख्य शब्द :– माध्यमिक स्तर, शैक्षणिक उपलब्धि, शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय

मानवजाती के विकास तथा प्रगति में शिक्षा की सर्वप्रमुख भूमिका है। शिक्षा समाज की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति का मुख्य आधार है। शिक्षा के अभाव में सामाजिक, आर्थिक एवं सास्कृतिक गतिशीलता की कल्पना करना निरर्थक है। शिक्षा जीवन पर्यनत चलने वाली समाज की प्राचीनतम घटना है जो शिशु के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त चलती रहती है। वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित होते जा रहा है एवं वर्तमान में शिक्षा पाठ्यक्रम केन्द्रित होने के स्थान पर बालक्रेंदित हो गई है, परंतु वर्तमान में बालकों की व्यक्तिगत सफलताएँ ही परिवार तथा विद्यालयों का मुख्य लक्ष्य बनती जा रही हैं। और इस सफलता में बालकों के सवार्गीण व्यक्तिव विकास की उपेक्षा कर सिर्फ उसके बौद्धिक विकास पर या कहें तो उसके द्वारा परीक्षा में प्राप्त अंकों को ही महत्व दिया जा रहा है। परन्तु पिछले कुछ समय में विभिन्न आयोगों, समितियों व राष्ट्रीय पाठचर्या की रूपरेखा में इस बात पर बहुत अधिक जोर दिया गया कि बच्चों के सवार्गीण विकास के सभी पक्षों पर ध्यान दिया जाए तथा विद्यार्थियों की उपलब्धियों का मापन करते समय सिर्फ शैक्षणिक क्षेत्रों पर ही ध्यान नहीं दिया जाय अपितु गैर शैक्षणिक क्षेत्रों में भी उसके द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाए। फिर भी वर्तमान की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में शैक्षणिक उपलब्धि सबसे अधिक महत्व रखती है। वास्तव में स्कूलों में औपचारिक शिक्षा के दौरान शैक्षणिक उपलब्धि पर ही विशेष जोर दिया जाता है। अतः शोधकर्ता ने यह देखने का प्रयास किया है कि क्या विद्यार्थियों के विद्यालय प्रबंधन की प्रकृति शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करती है या नहीं। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधार्थी ने माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास इस अध्ययन द्वारा किया है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये हैं जैसे – **सारस्वत, अनिल (1988)** के परिणामों में यह स्पष्ट हुआ कि उत्तम वातावरण में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अधिक रहती है। **मुखोपाध्याय, दिलीप कुमार (1988)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक सुविधाओं का शैक्षणिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया जाता है। **दार्जिगपूई (1989)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि विद्यालय का प्रकार, विज्ञान विषय में शैक्षिक उपलब्धि तथा विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति को बढ़ाने में धनात्मक प्रभाव डालते हैं। **पाण्डेय, विष्णु प्रकाश (1989)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि सरस्वती विद्या मंदिर के विद्यार्थियों की गणित विषय में उपलब्धि, शासकीय एवं निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों से सार्थक रूप से उच्च पाई गई जबकि कान्वेंट विद्यालयों के विद्यार्थियों के समान पाई गई। **प्रधान (1991)** ने अपने अध्ययन में पाया कि

विद्यालयीन संस्थागत वातावरण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को सार्थक रूप से प्रभावित करता है। **फैलोज, अंजना (2011)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया गया कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा अशासकीय विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि, शासकीय विद्यालयों के छात्रों से उच्च पाई गई।

उद्देश्य :– माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना :– माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

उपकरण :– प्रस्तुत शोधकार्य हेतु शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए सत्र 2016–17 में म.प्र. माध्यमिक शिक्षा मण्डल द्वारा आयोजित कक्षा 10 वीं की बार्षिक परीक्षा के प्राप्तांक मूल प्राप्तांक के रूप में लिए गये हैं।

विधि :– सर्वप्रथम बैतूल शहर के म.प्र. माध्यमिक शिक्षा मण्डल से संबद्ध माध्यमिक विद्यालयों की सूची प्राप्त की गई तथा इस सूची में से चार विद्यालयों का चयन किया गया (2 शासकीय विद्यालय एवं 2 अशासकीय विद्यालयं) तथा इन विद्यालयों की कक्षा दसवीं में सत्र 2016–17 में अध्ययनरत् 200 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया, जिसमें 100 विद्यार्थी शासकीय विद्यालयों के (50 छात्र एवं 50 छात्राएं) तथा 100 विद्यार्थी अशासकीय विद्यालयों के (50 छात्र एवं 50 छात्राएं) थे। इन विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि के मापन के लिए म.प्र. माध्यमिक शिक्षा मण्डल द्वारा आयोजित कक्षा 10 वीं की बार्षिक परीक्षा के प्राप्तांक मूल प्राप्तांक के रूप में लिए गये। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया एवं प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण :–

तालिका

माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/छात्रा/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समूह	विद्यालय का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
छात्र	शासकीय	50	303.78	55.83	3.82	< 0.01
	अशासकीय	50	344.20	49.73		
छात्रा	शासकीय	50	337.16	61.39	1.95	> 0.05
	अशासकीय	50	359.64	53.45		
विद्यार्थी	शासकीय	100	320.47	59.37	3.96	< 0.01
	अशासकीय	100	351.92	52.69		

स्वतंत्रता के अंश 98, 198 0.05, 0.01 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान – 1.98, 2.63, 2.60

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है क्योंकि इन दोनों समूहों के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 3.82, 3.96 स्वतंत्रता के अंश 98 व 198 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान क्रमशः 2.63 व 2.60 से अधिक हैं जबकि छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है क्योंकि इन के लिये प्राप्त क्रांतिक अनुपात का मान 1.95 स्वतंत्रता के अंश

98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए न्यूनतम निर्धारित मान 1.98 से कम है।

अतः उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों से उच्च पाई गई जबकि छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

निष्कर्ष :– माध्यमिक स्तर के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि में सार्थक अंतर पाया गया तथा अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र/विद्यार्थियों से उच्च पाई गई जबकि छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि संबंधी में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. गुप्ता, मधु (2000) : **शिक्षा संस्कार एवं उपलब्धि**, क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।
2. गुप्ता, एस.पी. (2005) : **साँख्यिकीय विधियाँ,** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. **सारस्वत, अनिल (1980)** "विभिन्न विद्यालयीन परिवेश के किशोरों की शैक्षिक उपलब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरणा तथा व्यवसायिक आकांक्षा पर एक अध्ययन", Ph.D., Edu. Agra Univ. Fifth survey of Education Research (1988-92) Vol. II, Page No. 1911-1912.
4. **Mukhopadhya, Dilip Kumar (1989)** ''Identification of school climate and study of its effect on the scholastic achievement and developments of certain personality characteristics of students of secondary schools''. Ph.D., Edu. Visva-Bharati. Fifth survey of Education Research (1988-92) Vol. II, Page No. 1888-1889.
5. **Darchingpui (1989)** "A study of Science Achievement, Science Attitude and Porblem. Solving ability amang Secondary School Students in Aizawal'', Ph.D. Edu. North-Eastern Hill univ. Fifth survey of Education Research (1988-92) Vol. II, Page No. 1239-1240.
6. **Pandey, Vishnu Prakash (1989)** "A study of the Saraswati Vidyamandirs with reference to the students academic achievement and psychosocial development'', Ph.D., Edu., Univ. of Lucknow, In Fifth Survey of Edu. Research (1988-92), Vol - II, Pg. No. 1338-39
7. **Pradhan, C. (1991)** "Effect of school organisational climate on the creativity, adjustment and academic achievement of secondary school students of Orissa", Ph.D. Edu., Utkal Univ., In Fifth Survey of Educational Research (1988-92), Vol. II, Pg. No. 1840.
8. **Fellows, Anjana (2011)** "To Study the relationship between self concept and academic achievement of early adolescent Private & Government School boys (14-15) years", Research Hunt, Vol - VI, Issue IV, Dec. 2011, Pg. No. 8-11.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

श्रीमती पूनम अवस्थी
शोधार्थी, शिक्षा संकाय, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल
डॉ. श्रीमती ज्योत्स्ना खरे
प्राचार्य, एन. ई. एस. महाविद्यालय, होशंगाबाद

प्रस्तुत शोध पत्र में अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 100 छात्राओं (50 अनुसूचित जनजाति एवं 50 गैर अनुसूचित जनजाति) का चयन कर उन पर 'नैतिक मूल्य मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के मध्य विभिन्न नैतिक मूल्यों – ईमानदारी, विन्रमता में सार्थक अंतर पाया गया जबकि नैतिक मूल्य – लगनशीलता, मानवता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

हमारा देश अत्याधिक प्राचीन संस्कृति वाला देश है, जिसमें हमेशा ही मनुष्य के जीवन में नैतिकता व चरित्र को प्रधानता दी गयी है, और सादा जीवन उच्च विचार भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र रहे हैं, किंतु भौतिक जीवन को भी पर्याप्त महत्व दिया गया और गुरूकुलों में नैतिक, अध्यात्मिक शिक्षा के साथ ही भौतिक जीवन से जुड़े क्रियाकलापों व व्यवहारिक ज्ञान की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। वर्तमान में भी हमारा अपनी संस्कृति और मूल्यों के लिये विश्वविख्यात है, मगर विगत वर्षों में हमारे समाज में मूल्यों में गिरावट महसूस की गई है। आज हमारा देश परिवर्तन काल से गुजर रहा है, आज हम नैतिकता एवं सादगी त्यागकर भौतिकतावाद को अपनाते जा रहे हैं परिणामस्वरूप आज हर तरफ आतंक, भ्रष्टाचार, शोषण, हिंसा, बेईमानी जैसे दुर्गुण समाज में बढ़ते जा रहे हैं। भौतिकतावाद, औद्योगिकीकरण एवं वैश्वीकरण के कारण समाज में आर्थिक विषमता बढती जा रही है, एवं व्यक्ति किसी भी तरह उच्च पद एवं आर्थिक स्तर पाना चाहता है, इस अंधी दौड़ के कारण समाज के नैतिक चरित्र में गिरावट आती जा रही है, जिसका प्रभाव परिवार एवं समाज पर भी पड़ रहा है। बालकों के चरित्र निर्माण एवं उसके नैतिक मूल्यों के निर्माण से ही देश का निर्माण होता है। अतः यदि बालकों का हमें उचित चरित्र निर्माण करना है तो उसे ऐसा वातावरण प्रदान करना होगा जिससे उसमें स्वयं अनुकरण के द्वारा नैतिक मूल्यों का विकास हो, क्योंकि आज के विद्यार्थी ही राष्ट्र एवं समाज के भावी कर्णधार व देश का भविष्य है, अतः यदि हमारे विद्यार्थी अपने जीवन में उच्च नैतिक व मानवीय मूल्यों को आत्मसात् करेंगें तो भविष्य में आदर्श व नैतिक मानवीय समाज की कल्पना साकार हो सकेगीं।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोधकिये गये हैं जैसे – **अजवानी एवं वर्मा (2004)** ने अपने अध्ययन में पाया कि उच्च सैद्धांतिक व उच्च सामाजिक एवं उच्च सामाजिक व उच्च धार्मिक समूह वाले विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया। **बाला (2007)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्य में अंतर पाया गया और छात्राओं के नैतिक मूल्य, छात्रों की तुलना में उच्च पाए। **बाकलीवाल एवं अग्रवाल (2009)** ने अपने अध्ययन में पाया की व्यवसाय शिक्षा के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में लिंग के आधार पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया। **कोष्ठा, व अन्य (2009)** ने अपने अध्ययन में पाया कि विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पंजाबी, हिन्दू, मुस्लिम के छात्रों के नैतिक मूल्य – ईमानदारी/मानवीयता पर सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। **बाजपेयी; श्रीवास्तव एवं पाठक (2013)** के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों–ईमानदारी/मानवता/विनम्रता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि नैतिक मूल्य–लगनशीलता में सार्थक अंतर पाया गया तथा छात्राओं में नैतिक मूल्य–लगनशीलता, छात्रों की तुलना में उच्च पाये गये। **तिवारी (2014)** के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि सरस्वती विद्यामंदिर में अध्ययनरत छात्रों में उच्च सामाजिक मूल्य, छात्राओं में अति उच्च सामाजिक मूल्य जबकि विद्यार्थियों में उच्च सामाजिक मूल्य पाये गये।

उद्देश्य – अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के नैतिक मूल्य–ईमानदारी,

लगनशीलता, मानवता, विनम्रता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना – अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के नैतिक मूल्य–ईमानदारी, लगनशीलता, मानवता, विनम्रता में सार्थक अंतर नहीं है।

न्यादर्श – न्यादर्श के रूप में 100 छात्राओं (50 अनुसूचित जनजाति एवं 50 गैर अनुसूचित जनजाति) का चयन किया गया है।

उपकरण – उपकरण के रूप में विद्याभारती प्रकाशन, जबलपुर की नैतिक मूल्य मापनी का उपयोग किया गया।

विधि – सर्वप्रथम होशंगाबाद जिले में स्थित माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की कक्षा दसवीं में अध्ययनरत् 100 छात्राओं (50 अनुसूचित जनजाति एवं 50 गैर अनुसूचित जनजाति) का चयन उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श विधि द्वारा कर उन पर 'नैतिक मूल्य मापनी' का प्रशासन किया गया एवं प्राप्तांकों के आधार पर मास्टर शीट तैयार की गई। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण –

सारणी

अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के विभिन्न नैतिक मूल्यों संबंधी तुलनात्मक परिणाम

नैतिक मूल्य	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
ईमानदारी	अनुसूचित जनजाति	50	10.84	3.07	2.24	0.05 स्तर पर सार्थक
	गैर अनुसूचित जनजाति	50	9.52	2.85		
लगनशीलता	अनुसूचित जनजाति	50	10.38	3.46	1.85	0.05 स्तर पर असार्थक
	गैर अनुसूचित जनजाति	50	9.16	3.09		
मानवता	अनुसूचित जनजाति	50	10.28	3.35	0.81	0.05 स्तर पर असार्थक
	गैर अनुसूचित जनजाति	50	10.86	3.79		
विनम्रता	अनुसूचित जनजाति	50	9.54	3.47	2.14	0.05 स्तर पर सार्थक
	गैर अनुसूचित जनजाति	50	11.12	3.85		

स्वतंत्रता के अंश – 98 0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान – 1.98

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के नैतिक मूल्य – ईमानदारी, विनम्रता में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 2.24, 2.14 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 कि अपेक्षाकृत अधिक हैं, जबकि नैतिक मूल्य–लगनशीलता, मानवता में अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के मध्य सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 1.85, 0. 81 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 2.63 कि अपेक्षाकृत कम हैं।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के मध्य नैतिक मूल्य – ईमानदारी, विनम्रता में सार्थक अंतर पाया गया तथा अनुसूचित जनजाति की छात्राओं में नैतिक मूल्य – ईमानदारी, गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गई जबकि नैतिक मूल्य – विनम्रता गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं में, अनुसूचित जनजाति की छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गई। अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के मध्य नैतिक मूल्य

– लगनशीलता, मानवता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

निष्कर्ष – अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के मध्य नैतिक मूल्य – ईमानदारी, विनम्रता में सार्थक अंतर पाया गया तथा अनुसूचित जनजाति की छात्राओं में नैतिक मूल्य – ईमानदारी, गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गई जबकि नैतिक मूल्य – विनम्रता गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं में, अनुसूचित जनजाति की छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गई। अनुसूचित जनजाति एवं गैर अनुसूचित जनजाति की छात्राओं के मध्य नैतिक मूल्य – लगनशीलता, मानवता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

गुप्ता, डॉ. एस.पी. (2005) **सांख्यिकीय विधियां**, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

पाण्डेय, रामसकल (2000) **मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य**, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ

शर्मा, आर.के. व दुबे, श्रीकृष्ण (2007) **मूल्यों का शिक्षण**, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा

शर्मा, आर.ए., (1995) **मानव मूल्य एवं शिक्षा**,आर.लाल बुक डिपो, मेरठ

जर्नल्स एवं सर्वे :–

Ajwani, J.C. and Verma, Sandhya (2004) "A study of values as the correlates of moral value", Prachi journal of psycho-cultural dimension, vol. 20 (2), Pg. No. 124-125

बाजपेयी, आशीष; श्रीवास्तव, अर्चना एवं पाठक, स्वाति (2013) ''माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन'', सामाजिक शोध योजना, वॉल्यूम 1, अंक 2, वर्ष 1, जनवरी 2013, पेज नं. 45–50

बाजपेयी, गोविंद कृष्ण (2004) ''बालकों के नैतिक मूल्यों के विकास पर शिक्षा, साहित्य, पारिवारिक परिवेश, आर्थिक–सामाजिक स्तर के प्रभाव का विवेचनात्मक अध्ययन'', अप्रकाशित शोधप्रबंध, शिक्षाशास्त्र, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, पृष्ठ क्रमांक 238–240

बाकलीवाल, ममता एवं अग्रवाल, रंजना (2009) ''व्यवसायिक शिक्षा के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का अध्ययन'', रिसर्च लिंक – 62, वाल्यूम -VIII (3), मई 2009, 121–123

बाला, मुकेश (2007) ''नवोदय विद्यालय एवं अन्य विद्यालयों के विद्यार्थियों के शालेय वातावरण का नैतिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन'', अप्रकाशित शोधप्रबंध, गृह विज्ञान संकाय, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

कोष्ठा, लता; पटेल, लाजवंती एवं निगम, भूपेन्द्र (2009) ''विभिन्न सांस्कृतिक प्रष्ठभूमि के विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं के नैतिक मूल्य में अंतर का अध्ययन'', रिसर्च हंट, वाल्यूम -IV, इश्यू -II, मार्च–अप्रैल 2009, 181–185।

पाण्डेय, राजेश एवं मुखर्जी पापिया (2008) ''सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूकता का अध्ययन'', रिसर्च लिंक – 57, वाल्यूम -VII (10), दिसंबर 2008, 84–87

तिवारी, महेन्द्र कुमार (2014) ''सरस्वती विद्या मंदिर के विद्यार्थियों में पाये जाने वाले सामाजिक मूल्यों का अध्ययन'', सामाजिक शोध योजना, वॉल्यूम 2, अंक 3, वर्ष 2, जुलाई 2014, पेज नं. 99–101

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. स्वाती पाठक
सहा. प्राध्यापक, शिक्षा संकाय, वेदिका कॉलेज ऑफ एजुकेशन, भोपाल
डॉ. ममता बाकलीवाल
प्राध्यापक, शिक्षा संकाय, राजीव गाँधी महाविद्यालय, त्रिलंगा, भोपाल
डॉ. हरगोविन्द शुक्ला
सहायक प्राध्यापक, सी. वी. रमन कॉलेज ऑफ एजुकेशन, होशंगाबाद

इस शोध अध्ययन में किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। न्यादर्श के रूप में 50 छात्र एवं 50 छात्राओं का चयन कर उन पर किशोरावस्था समस्या मापनी का प्रशासन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की संवेगात्मक समस्याओं में सार्थक अंतर पाया गया तथा छात्रों में संवेगात्मक समस्याएं, छात्राओं की तुलना में उच्च पाई गयीं जबकि छात्र व छात्राओं के मध्य सामाजिक/व्यावसायिक समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

शिक्षा विद्यार्थियों की सर्वांगीण उन्नति का महत्वपूर्ण साधन हैं। वास्तव में शिक्षा का आरंभ उसी क्षण हो जाता है, जब हम वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। शिक्षा प्राप्त कर रहा एक बड़ा वर्ग किशोरावस्था के विद्यार्थियों का है। किशोरावस्था किसी भी व्यक्ति के जीवन का महत्वपूर्ण भाग है। इस अवस्था में बड़ी तेजी से परिवर्तन आते हैं, जिसके कारण इस अवस्था में जहां एक ओर छात्र–छात्राओं का ध्यान शारीरिक और भावनात्मक परिवर्तनों के कारण शिक्षा से हटता है वहीं उनका इस अवस्था में शिक्षा के प्रति लगन बनाये रखना और पथ भ्रष्ट होने से बचाना बहुत ही आवश्यक है। इस काल में किशोर बालक और बालिका में घोर शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होते हैं और उनके संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप बदल जाता है, व उनमें स्फूर्ति और जोश का संचार हो जाता है। इन परिवर्तनों के साथ ही किशोरों को इस अवस्था में बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। किशोर ही राष्ट्र एवं समाज के भावी कर्णधार व देश का भविष्य है, इसलिए किशोरावस्था के विद्यार्थियों की समस्याएं जानकर उनका निराकरण करना अत्यधिक आवश्यक है जिससे वह उचित प्रकार से समायोजित होकर समस्याग्रस्त होने से बच सके। अतः इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु शोधार्थी ने किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की समस्याओं की तुलना करने का प्रयास इस अध्ययन द्वारा किया है।

प्रस्तुत शोध से संबंधित पूर्व में भी कुछ शोध कार्य किये गये हैं जैसे – **बैली (1960)** द्वारा किये गये अध्ययनों से ज्ञात होता है कि माँ अपनी बेटी की अपेक्षा बेटे का अधिक पक्ष लेती हैं, अतः जिन बालकों को लगता है कि उनको महत्व नहीं दिया जा रहा है, वह बालक कुण्ठित, हीन भावना से ग्रसित तथा उग्रस्वभाव के हो जाते हैं। **वॉट्सन (1970)** ने अपने अध्ययन में पाया कि कुछ परिवारों में बालकों को, बालिकाओं की अपेक्षा अत्याधिक छूट मिलती है तथा उन पर कोई नियंत्रण नही रखा जाता है, ऐसे बालक नियंत्रण से बाहर हो जाते हैं। **भाटिया (1984)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि भारतीय वातावरण में लड़कियों के लिये घर का वातावरण अधिक तनावपूर्ण तथा दुखदायी था। अधिकांश परिवारों में माता–पिता लड़कों का पक्ष अधिक लेते थे। **सिंह, एस. (1984)** के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि माता–पिता के व्यवहार में अपने पाल्यों के प्रति स्नेह, सुरक्षा, अस्वीकृती के व्यवहार में लिंग भिन्नता पायी गयी। **पंडित (1985)** ने अपने अध्ययन में पाया कि किशोरों में किशोरियों की तुलना में अधिक संवेगात्मक तथा सामाजिक समायोजन पाया गया। **कश्यप (1989)** ने अपने अध्ययन में पाया कि किशोरावस्था के छात्र एवं छात्राओं की समस्या में कोई सार्थक अंतर नहीं था। **राठेर, के.आर. (1990)** के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि छात्रों में विद्यालयीन, आर्थिक, पुनः निर्माण, पारिवारिक क्षेत्रों में समस्या, छात्राओं की तुलना में सार्थक रूप से उच्च पाई गई। **शर्मा (1999)** ने अपने अध्ययन में पाया कि मध्य एवं उत्तर किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की शैक्षिक संवेगात्मक एवं सामाजिक समस्याओं में अंतर नहीं था। **दुबे (2008)** ने अपने अध्ययन में पाया कि

किशोरों में व्यक्तिगत विद्यालयी एवं पारिवारिक समस्याएं सामाजिक समस्याओं की तुलना में अधिक थीं। **बाजपेयी, शुक्ला एवं माकवे (2009), वैदय एवं उपाध्याय (2010)** के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि लड़के, लड़कियों की अपेक्षा अधिक समायोजित पाए गए। **नासिर, मलिहा (2012)** ने अपने अध्ययन में पाया कि समायोजन में लिंग भिन्नाता नहीं पाई जाती है। **बाजपेयी, अग्रवाल एवं बाकलीवाल (2013)** के अध्ययन से प्राप्त परिणामों के अनुसार किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की संवेगात्मक/सामाजिक/व्यवसायिक समस्या में सार्थक अंतर पाया गया। छात्रों में संवेगात्मक समस्या छात्राओं से अधिक पाई गई जबकि छात्राओं में सामाजिक व व्यवसायिक समस्या छात्रों से अधिक पाई गई।

उद्देश्य :– किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की संवेगात्मक/सामाजिक/व्यावसायिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना :– किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की संवेगात्मक/सामाजिक/व्यावसायिक समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

उपकरण :– किशोरावस्था समस्या मापनी – आशीष बाजपेयी, हरगोविंद शुक्ला एवं अमित गुप्ता

विधि :– सर्वप्रथम होशंगाबाद जिले में स्थित दो माध्यमिक विद्यालयों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा कर इन विद्यालयों की कक्षा नवमीं में अध्ययनरत् 100 विद्यार्थियों (50 छात्र एवं 50 छात्राओं) का चयन कर उन पर 'किशोरावस्था समस्या मापनी' का प्रशासन किया गया। संपूर्ण प्रदत्तों को छात्र व छात्राओं में विभाजित कर किशोरावस्था समस्या मापनी के तीनों क्षेत्रों का अलग अलग फलांकन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मास्टर शीट तैयार की गई। मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया तथा प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किये गये।

परिणामों का विश्लेषण :–

तालिका

किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की विभिन्न समस्याओं संबंधी तुलनात्मक परिणाम

किशोरावस्था की समस्याएं	समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	'पी' मान
संवेगात्मक	छात्र	50	11.38	2.88	2.03	< 0.05
	छात्राएं	50	10.16	3.05		
सामाजिक	छात्र	50	6.84	2.79	1.44	> 0.05
	छात्राएं	50	7.66	2.93		
व्यावसायिक	छात्र	50	6.44	2.33	1.96	> 0.05
	छात्राएं	50	5.68	2.15		

स्वतंत्रता के अंश – 98 **0.05 स्तर के लिये निधार्रित न्यूनतम मान – 1.98**

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणाामों से यह स्पष्ट है कि किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की संवेगात्मक समस्याओं के लिये प्राप्त क्रातिक अनुपात का मान 2.03 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0. 05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षा अधिक है जबकि सामाजिक, व्यावसायिक समस्याओं के लिये प्राप्त क्रातिक अनुपात के मान क्रमशः 1.44, 1.96 स्वतंत्रता के अंश 98 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिये निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षा कम हैं।

अतः उपरोक्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं के मध्य संवेगात्मक समस्याओं में सार्थक अंतर पाया गया तथा छात्रों में संवेगात्मक समस्याएं, छात्राओं की तुलना में अधिक पाई गयीं, जबकि छात्र व छात्राओं के मध्य सामाजिक, व्यावसायिक समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

निष्कर्ष :– किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं के मध्य संवेगात्मक समस्याओं में सार्थक अंतर पाया गया तथा छात्रों में संवेगात्मक समस्याएं, छात्राओं की तुलना में अधिक पाई गयीं, जबकि छात्र व छात्राओं के मध्य सामाजिक, व्यावसायिक समस्याओं में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. गुप्ता, एस. पी. (2005) ''सांख्किीय विधियां'' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. वालिया, जे.एस. (2005) ''शिक्षा मनोविज्ञान की बुनियादें'' पाल पब्लिशर्स, जालंधर।
3. बाजपेयी, आशीष, शुक्ला, हरगोविन्द एवं माकवे, जमना प्रसाद (2009) ''किशोरावस्था के विद्यार्थियों के समयोजन का लिंग के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन'', रिसर्च हंट, वाल्यूम–IV, अंक–IV, जुलाई–अगस्त (2009), पेज नं. 233–237
4. बाजपेयी, आशीष; अग्रवाल, रंजना एवं बाकलीवाल, ममता (2013) ''किशोरावस्था के छात्र व छात्राओं की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन'', अमिताराधन, वर्ष –1–2, अंक–2–3 (सयुक्तांक)ए नवम्बर (2013), पेज नं. 125–130
5. Bhatia, K.T. (1984) "The Emotional, personal and social Problems of Adjustment of Adolescents under Indian Conditions with special reference to values of life", Ph.D. Edu., Bombay University, In fourth Survey of Research in Education (1983-88), Vol.- I, Pg. No. - 347.
6. Kashyap, Veena (1989) "Psychological determinants of adolescents Problem", Ph.D. Edu., Agra Univ., In Fifth Survey of Educational Research (1988-92), Vol. - II, Pg. No. – 894
7. Pandit, I. (1985) "A Study of the Psychological Needs and Self-Concept of Adolescents and their Bearing on Adjustment", Ph.D. Edu., Bombay University, In fourth Survey of Research in Education (1983-88), Vol - I, Pg. No. - 410, 411.
8. Rather, A.R. (1990) "Adjustment among middle school students in relation to socio-economic status and social structure of the school", Indian Educational Review, Vol 25 (3) : 25-31, in Fifth Servey of Educationl Research (1988-1992), Vol. 2, Pg. No. 1020-1021.
9. Singh,S.(1984) "Relationship of Home Enisonment, Need for Achievement and Aecdenic Motivation with Academic Achievement", Ph.D. Psy., Mag. U., Fourth Survey of Edu. Reserch, Vol. - I, Page No. 856-857.
10. Vaidya, Rani & H. Upadhyay (2010) "Affect of emotional quotient of adjustment of adolescence students", Research Hunt : Vol-V, Issue - VII, September 2010, Pg. No. - 95-99.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन

श्रीमती विनीता शुक्ला
शोधार्थी, शिक्षा संकाय, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल
डॉ. श्रीमती ज्योत्स्ना खरे
प्राचार्य, एन. ई. एस. महाविद्यालय, होशंगाबाद

प्रस्तुत शोध पत्र में अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। प्रारंभिक न्यादर्श के रूप में 300 छात्राओं का चयन कर उन छात्राओं पर 'अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व मापनी' का प्रशासन किया गया। अंतिम न्यादर्श के रूप में प्राप्त 137 छात्राओं पर 'समायोजन मापनी' का प्रशासन किया गया। प्राप्त परिणामों के अनुसार अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के मध्य गृह, स्वास्थ्य व संवेगात्मक समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि सामाजिक, विद्यालयीन व समग्र समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं में सामाजिक, विद्यालयीन व समग्र समायोजन, अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं से उच्च पाया गया।

बालक, बालिकायें अपने कुटुम्ब, समाज तथा राष्ट्र का अंग हैं। वह माता–पिता तथा अभिभावकों के पास एक धरोहर के रूप में रहते हैं। किसी भी बालक या बालिका का व्यवहार अंतर्मुखी होगा या बहिर्मुखी यह उसकी प्रथम पाठशाला परिवार पर निर्भर करता है, परिवार के सदस्य अंतर्मुखी होंगे तो बालक/बालिका के भी अंतर्मुखी होने की संभावनायें अधिक होंगी। परिवार के सदस्य बहिर्मुखी होंगे तो बालक/बालिका के भी बहिर्मुखी होने की संभावनायें अधिक रहेगी।

बालिकायें जैसे–जैसे बढ़ती जाती हैं उनके सामने विभिन्न प्रकार की समस्यायें आती हैं, उसमें से एक समस्या समायोजन की भी आती है। समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन रखता है।

गेट्स (1965) तथा उनके साथियों के अनुसार ''समायोजन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और वातावरण के बीच संतुलन स्थापित करने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।'' समायोजन एक गतिशील प्रक्रिया है न कि स्थिर। यदि व्यक्ति के समायोजन को देखा जाये तो कवेल व्यक्ति में ही परिवर्तन नहीं होते हैं। परिवर्तन अक्सर पर्यावरण में भी होते रहते हैं। समायोजन प्रक्रिया से प्राणी अपनी आवश्यकताओं व इन्हें प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के साथ संतुलन बनाये रखता है।

अतः इस बात की अत्यधिक आवश्यकता है कि उन सभी बातों का अध्ययन किया जाये, जो छात्राओं के समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इसी कारण से शोधकर्त्ता नें अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करने का निश्चय किया।

प्रस्तुत शोधकार्य से संबंधित पूर्व में भी कुछ अध्ययन हुए हैं जैसे **भाटिया (1984)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि भारतीय वातावरण में लड़कियों के लिये घर का वातावरण अधिक तनावपूर्ण तथा दुखदायी था। **पंडित (1985)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि किशोरों के घरेलू स्वास्थ्य, सामाजिक, संवेगात्मक तथा विद्यालयी क्षेत्रों के समायोजन में सार्थक अंतर था। **राठेर, के.आर. (1990)** ने अपने अध्ययन के निष्कर्षतः पाया कि छात्र तथा छात्राओं के समायोजन में सार्थक अंतर था। छात्रों में समायोजन संबंधी समस्याएं, छात्राओं से अधिक पाई गई, छात्राओं का सामाजिक समायोजन, छात्रों से बेहतर पाया गया। **पांडेय एवं तिवारी (2008)** ने अपने अध्ययन में पाया कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं की सामाजिक समायोजन क्षमता में सार्थक अंतर था, तथा छात्राओं की सामाजिक समायोजन क्षमता छात्रों से अधिक पाई गयी। **वैदय, रानी एवं उपाध्याय, एच (2010)** के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि लिंग का गृह, स्वास्थ्य, सामाजिक, संवेगात्मक तथा समग्र समायोजन पर सार्थक प्रभाव पाया गया तथा छात्रों में गृह, स्वास्थ्य, सामाजिक, संवेगात्मक तथा समग्र समायोजन छात्राओं की तुलना में उच्च पाया गया। **भारती, ए.के. (2010)** के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि शहरी एवं

ग्रामीण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व समायोजन तथा समायोजन के घटकों में सार्थक अंतर पाया गया तथा ग्रामीण विद्यार्थियों में स्वास्थ्य, गृह, सामाजिक, संवेगात्मक, शैक्षिक एवं समग्र समायोजन शहरी विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पाया गया। **पडेगांवकर, कविता एवं मेहता, दीपा (2011)** के अध्ययन के निष्कर्षतः ज्ञात हुआ कि छात्र एवं छात्राओं के स्व समायोजन, विद्यालयीन समायोजन तथा समग्र समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया।

उपलब्ध साहित्य की विस्तृत विवेचना से यह तथ्य उभर कर आता है कि समायोजन को पारिवारिक वातावरण, बौद्धिक स्तर, विद्यालयीन वातावरण, अभिभावक–पाल्य संबंध, चिन्ता, तनाव, कुंठा जैसे कारक महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। विभिन्न कारकों के संदर्भ में भी यह स्पष्ट हो जाता है कि समायोजन पर व्यक्तित्व का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। इस प्रकार यह परिणाम समायोजन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के मध्य अन्तर्संबंधों की जानकारी देते है, वहीं वर्तमान में किये जाने वाले शोध के लिये भी दिशा प्रदान कर रहे है। अतः उपरोक्त कारणों से शोधकर्ता ने वर्तमान विषय का चयन अपने शोधकार्य हेतु किया है।

उद्देश्य :– अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के गृह/स्वास्थ्य/सामाजिक/संवेगात्मक/विद्यालयीन/समग्र समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना :– अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के गृह/स्वास्थ्य/सामाजिक/संवेगात्मक/विद्यालयीन/समग्र समायोजन में सार्थक अंतर नहीं है।

न्यादर्श :– प्रारंभिक न्यादर्श के रूप में कक्षा 10वीं में अध्ययनरत छात्राओं 300 का चयन किया गया।

उपकरण :– उपकरण के रूप में आर. ए. सिंह की 'अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व मापनी' एवं ए.के. सिंह एवं अल्पना सेन गुप्ता द्वारा विकसित हाई स्कूल एडजस्टमेंट इन्वेंट्री [High School Adjustment Inventory (HSAI)] का प्रयोग किया गया है।

विधि :– सर्वप्रथम होशंगाबाद जिले के हाईस्कूल स्तर के विद्यालयों की सूची प्राप्त की गई तथा इस सूची में से यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा 06 विद्यालयों का चयन किया गया तथा इनसे कक्षा 10वीं में अध्ययनरत 300 छात्राओं का चयन प्रारंभिक न्यादर्श के रूप में साधारण यादृच्छिक विधि द्वारा कर उन छात्राओं पर 'अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व मापनी' का प्रशासन किया गया तथा 'अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व मापनी' के प्राप्तांकों के आधार पर अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली 137 छात्राओं का चयन अंतिम न्यादर्श के रूप में किया गया। अंतिम न्यादर्श के रुप में चयनित इन 137 छात्राओं पर 'हाईस्कूल एडजस्टमेंट इन्वेंट्री' का प्रशासन किया गया। इस मापनी में दिये गये पांचों क्षेत्रों में समायोजन का अलग–अलग फलांकन किया गया एवं इन सभी का योग प्राप्त कर समग्र समायोजन का फलांकन किया गया। प्राप्तांकों के आधार पर मास्टर शीट तैयार की गई। क्रांतिक अनुपात परीक्षण के द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण किया गया प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गये।

परिणामों का विश्लेषण :–

तालिका

अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन एवं समग्र समायोजन संबंधी तुलनात्मक परिणाम

समायोजन का क्षेत्र	व्यक्तित्व का प्रकार	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता
गृह	अंतर्मुखी	48	23.83	5.09	0.78	0.05 स्तर पर असार्थक
	बहिर्मुखी	89	24.56	5.38		
स्वास्थ्य	अंतर्मुखी	48	22.27	4.79	1.56	0.05 स्तर पर असार्थक
	बहिर्मुखी	89	23.64	5.21		
सामाजिक	अंतर्मुखी	48	19.74	4.37	5.29	0.01 स्तर पर सार्थक
	बहिर्मुखी	89	24.13	4.96		

संवेगात्मक	अंतर्मुखी	48	22.38	4.61	0.78	0.05 स्तर पर असार्थक
	बहिर्मुखी	89	23.04	5.03		
विद्यालयीन	अंतर्मुखी	48	21.17	4.52	2.82	0.01 स्तर पर सार्थक
	बहिर्मुखी	89	23.54	4.89		
समग्र	अंतर्मुखी	48	109.39	17.83	2.96	0.01 स्तर पर सार्थक
	बहिर्मुखी	89	118.91	18.31		

स्वतंत्रता के अंश 135 0.05 स्तर पर सार्थकता का मान – 1.98

0.01 स्तर पर सार्थकता का मान – 2.61

उपरोक्त सारणी में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के मध्य गृह समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन व संवेगात्मक समायोजन में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर नहीं है, क्योंकि प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 0.78, 1.56, 0.78 स्वतंत्रता के अंश 135 पर सार्थकता के 0.05 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान 1.98 की अपेक्षा कम हैं, जबकि सामाजिक समायोजन, विद्यालयीन समायोजन एवं समग्र समायोजन में अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के मध्य सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अंतर है, क्योंकि प्राप्त क्रांतिक अनुपात के मान क्रमशः 5.29, 2.82, 2.96 स्वतंत्रता के अंश 135 पर सार्थकता के 0.01 स्तर के लिए निर्धारित न्यूनतम मान 2.61 की अपेक्षा अधिक हैं।

अतः उपरोक्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता हैं कि अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के मध्य गृह, स्वास्थ्य व संवेगात्मक समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि सामाजिक, विद्यालयीन एवं समग्र समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं में सामाजिक, विद्यालयीन व समग्र समायोजन, अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं से उच्च पाया गया।

निष्कर्ष :– अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं के मध्य गृह, स्वास्थ्य व संवेगात्मक समायोजन में सार्थक अंतर नहीं पाया गया जबकि सामाजिक, विद्यालयीन एवं समग्र समायोजन में सार्थक अंतर पाया गया तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं में सामाजिक, विद्यालयीन व समग्र समायोजन, अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाली छात्राओं से उच्च पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

गुप्ता, एस. पी. (2005) **''सांख्किीय विधियां''** शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

श्रीवास्तव, डी.एन. (नवीन संस्करण) **सांख्यिकी एवं मापन**, विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा।

सिंह, अरूण कुमार (2005) **शिक्षा मनोविज्ञान**, भारती भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना

Chauhan, S.S. (1996) : **Advanced Educational Psychology,** Vikash Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, Sixth Revised Edition

Mangal, S.K. (2006) : **Advanced Educational Psychology,** Prentice-Hall of India Private Limited, New Delhi, Second Edition.

जर्नल्स एवं सर्वे –

पडेगांवकर, कविता एवं मेहता, दीपा (2011) ''माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन'', रिसर्च पूल अंक 1, जुलाई–दिसम्बर 2011, पेज नं. 25–29

Bharti, A.K. (2010) "Personality Adjustment of urban and Rural Adolescents of both the sexes", Asian journal ofpsychology and education vol 43 No. 7-8 year 2010 Page 32-34

Srivaidhya, V., Khadi, P.B. And Bhat, A.R.S. (2011) "Adjustment problems of student's of navodhaya, central and state schools, A.P.R.C", Indian Psychological review, Vol. 76, No. 2, Year 2011, Pg. 93-98.

Vaidya, Rani & H. Upadhyay (2010) "Affect of emotional quotient of adjustment of adolescence students", Research Hunt : Vol-V, Issue - VII, September 2010, Pg. No. - 95-99

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

भारत में महिलाओं और दलितों के अल्पसंख्यकों के मानवाधिकार

सुमित शर्मा
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर

महिलाओं के मानवाधिकार :– जब महिलाओं के अधिकारों की बात उठती है, तो हम इस विषय को निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित कर सकते हैं:

(क) संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित महिलाओं के मानवाधिकार

(ख) भारतीय संविधान द्वारा घोषित महिलाओं के मानवाधिकार

(ग) भारत के विभिन्न कानूनों द्वारा घाषित महिलाओं के मानवाधिकार

(घ) भारत के उच्च/उच्चतम न्यायालयों द्वारा घोषित महिलाओं के मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित महिलाओं के मानवाधिकार :– यू तो 'मानवाधिकारों की सार्वभौतिक घोषणा' (Universal Declaration of Human Rights) संयुक्त राष्ट्र के द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न तमाम मानव क्षतियों के आलोक में 1948 में ही कर दी गई थी, मगर वे सामान्य प्रकार के अधिकार थे। वास्तव में, 1979 में, संयुक्त राष्ट्र ने विशिष्ट रूप में 'महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभावों की समाप्ति का अभिसमय' (Convention on the elimination of all forms of discrimination against women) अपनाया। इसे 'सेडा' के नाम से जाना जाता है। इसमें 30 अनुच्छेद हैं जो सर्वत्र महिलाओं के लिए समान अधिकारों की प्राप्ति के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत सिद्धांतों तथा उपायों को बाध्यकारी बनाते हैं। इसे वर्तमान स्वरूप में लाने के लिए विभिन्न कार्यसमूहों, संयुक्त राष्ट्र की महासभा तथा 'महिलाओं की स्थिति पर आयोग' के बीच करीब पांच वर्षों तक विचार–विमर्श होता रहा, तब जाकर न्यूनतम बिंदुओं पर आम सहमति बनी। तीन सितंबर 1981 को बीस राष्ट्र–सदस्यों की सहमति से यह अभिसमय लागू हुआ और 15 जनवरी, 1998 तक 161 सदस्य राष्ट्रों ने इस पर स्वीकृति दी जिनमें भारत भी शामिल है।

भारतीय संविधान में महिलाओं के मानवाधिकार :– भारतीय संविधान में वर्णित मानवाधिकार दो श्रेणियों में विभक्त हैं। पहली श्रेणी में मूलाधिकार या मौलिक अधिकार आते हैं जो संविधान के खंड तीन में धारा 12–35 में वर्णित हैं। दूसरी श्रेणी में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy) हैं। जहां मूलाधिकारों को लागू करने के लिए सरकार कानूनी तौर पर बाध्य है, वहीं नीति निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए सरकार बाध्य नहीं है अर्थात ये दिशा–निर्देशक सिद्धांतों के उल्लंघन होने पर ऐसी याचिका दायर कर सकता है, मगर नीति–निर्देशक सिद्धांतों के उल्लंघन होने पर ऐसी याचिका दायर नहीं की जा सकती। इसलिए संकुचित अर्थ में नीति निर्देशक सिद्धांतों को मानवाधिकार नहीं माना जा सकता।

कानूनों द्वारा घोषित महिलाओं के मानवाधिकार :– दंड प्रक्रिया संहिता (क्रिमिनल प्रोसीजर कोड) 1973 में महिलाआं को कई प्रकार के मानवाधिकार दिए गए हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. धारा 47(2) के अनुसार यदि पुलिस किसी घर की तलाशी किसी वारंट के आधार पर ले रही हो किंतु उस घर में कोई महिला रह रही हो जो पर्दानशीन हो और अभियुक्त नहीं हो, तो पुलिस एसे घर में प्रवेश करने के पूर्व उस महिला को समुचित सूचना देगी कि वह कहीं अन्यत्र हट जाए।
2. धारा 51(2) के तहत किसी महिला अभियुक्त की तलाशी किसी महिला द्वारा ही ली जा सकती हैं। वह शिष्टता का पूरा ख्याल रखेगी। इस प्रकार ऐसी तलाशी के दौरान पुरूष मौजूद न हो।
3. धारा 53(2) के अनुसार यदि किसी महिला अभियुक्त के शरीर की मेडिकल जांच की जरूरत हो, तो ऐसी जांच कोई महिला

चिकित्सक ही करेगी अथवा महिला चिकित्सक के पर्यवेक्षण में जांच की जाएगी।

4. धारा 98 के अनुसार यदि अवैध उद्देश्य हेतु किसी महिला या 18 वर्ष से कम उम्र की लड़की के अपहरण या अवैध नजरबंदी की शिकायत शपथपत्र के साथ प्राप्त हो, तो जिला मजिस्ट्रेट, या उप–क्षेत्रीय मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट उस महिला को तत्काल छोड़ने या उस लड़की के वैध प्रभारी को सौंपने का आदेश दे सकता है और इसके अनुपालन हेतु आवश्यक बल का प्रयोग कर सकता है।

इसके अलावा दूसरे महत्वपूर्ण कानून भारतीय दंड संहिता (इंडियन पीनल कोड) 1860 के तहत भी महिलाओं को कई प्रकार के मानवाधिकार प्राप्त हैं जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं:

1. धारा 100 के तहत यदि कोई पुरूष किसी स्त्री का बलात्कार करने के इरादे से उस पर हमला करे तो उस स्त्री को अपनी बचाव में हमलावर को जान से मारने का आधिकार है।
2. धारा 294 के अनुसार यदि कोई पुरूष किसी स्त्री को तंग करने के लिए किसी सार्वजनिक स्थल पर कोई अश्लील हरकत करे, अश्लील गाना गाए, या अश्लील शब्द कहे, तो वह दंडनीय अपराध है–उसे तीन माह की कैद या जुर्माना या दोनों हो सकता है।
3. धारा 313 के तहत यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री की सहमति के बिना उसका गर्भपात करे, तो वह दंडनीय है। बच्चे के साथ मां के मरने पर आजीवन कारावास या दस वर्ष की कैद और जुर्माना की सजा दी जाएगी।
4. धारा 327 के तहत यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री या उसके संबंधी से धन वसूलने के लिए चोट पहुंचाए, अथवा उससे या उसके संबंधी से अवैध काम करवाए तो यह दंडनीय है–उसे दस वर्ष तक की सजा और जुर्माने की सजा दी जाएगी।

इसके अलावा अन्य कई कानूनों के तहत महिलाओं को निम्नलिखित मानवाधिकार प्राप्त हैं :

1. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 के तहत एक ही कार्य या समान प्रकृति के कार्य के लिए महिला कामगारों को पुरूष कामगारों के बराबर मजदूरी मिलेगी।
2. कारखाना अधिनियम, 1948 के तहत महिमा कामगारों के लिए अलग से शौचालय बनाया जाएगा। जहा 30 महिलाएं कार्यरत हों, वहां उनके 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए पालनाघर (क्रेच) की सुविधा दी जानी है। इसके अलावा महिला कामगारों को सुरक्षा की दृष्टि से रात के सात बजे से सुबह छह बजे के पहले काम पर नहीं बुलाया जाना है।
3. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियत, 1948 के तहत बीमित महिला कामगारों को मातृत्व लाभ देय है। उसे मातृत्व के लिए 12 सप्ताहों का पारिश्रमिक मिलेगा जिनमें छह सप्ताह प्रसूति से पूर्व का समय शामिल है।
4. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के तहत नियोजक महिला कामगार को उसके द्वारा बच्चा जन्मने या गर्भपात होने की तिथि से छह हफ्ते तक नियोजित नहीं करेगा। फिर पैदाइश के बाद छह सप्ताह तक महिला कर्मचारी काम पर आए बिना औसत दैनिक पारिश्रमिक की दर से मातृत्व लाभ पाने की हकदार है।

न्यायालयों द्वारा घोषित महिलाओं के मानवाधिकार :– समय–समय पर सर्वोच्च न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों ने महिलाओं को शोषण से बचाने के लिए महत्वपूर्ण निर्णय दिए हैं जिनमें के प्रमुख निम्नलिखित हैं :

1. 'महाराष्ट्र सरकार बनाम चंद्र प्रकाश जैन' के मामले में 1990 में सर्वोच्च न्यायालय ने महत्वपूर्ण निर्णय दिया। यहां मामला यह था कि एक पुलिस अधिकारी ने एक किशोरी के साथ बलात्कार किया था। उसके पहने उस पुलिस अधिकारी ने उसके पति को एक झूठे केस में फंसा दिया था और इसके फलस्वरूप दोनों को अलग कर दिया था। अब सवाल यह उठा कि पीड़ित महिला के बयान को कितनी महत्ता दी जाए। अतः इस मामले को आधार बनाकर सर्वोच्च न्यायालय ने बलात्कार से संबंधित कानूनी प्रावधानों की समीक्षा करके महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए चार प्रमुख सिद्वांत प्रतिपादित किए:

(क) बलात्कार के मामले में अभियुक्त को सजा देने के लिए पीड़ित महिला का प्रमाणित कथनमात्र पर्याप्त है।
(ख) इसमें सजा पीड़ित महिला के प्रमाणित कथन मात्र पर हो सकती है जब तक कि परिस्थितियां विचलित नहीं करें और न्यायालय उसके साक्ष्य पर अविश्वास न करे क्योंकि वह महिला उस अपराध की भुक्तभोगी है तथा उसे सह–अभियुक्त के बराबर नहीं माना जा सकता।
(ग) बलात्कार की भुक्तभोगी महिला का साक्ष्य विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में, यथा समाज में अभियुक्त की सामाजिक स्थिति, तय की जानी चाहिए।
(घ) पीड़ित महिला द्वारा बलात्कार का किसी रूप में विरोध करने के अभाव को सहमति का सूचक मानने को भी विशिष्ट तथ्यों एवं परिस्थितियों के आलोक में देखा जाना चाहिए।

दलितों और अल्पसंख्यकों के मानवाधिकार :– यहां हम दलितों और अल्पसंख्यकों के अधिकारों और उनसे संबंधित समस्याओं पर बारी–बारी से विचार करेंगे। सामान्यतः लोकतंत्र का अर्थ अब्राह्म लिंकन का उद्धरण 'जनता का, जनता के लिए और जनता का शासन' तक सीमित माना जाता है। मगर यह अत्यंत प्रारंभिक विशेषता है। वास्तव में, लोकतंत्र सिर्फ शासन–व्यवस्था का रूप नहीं है बल्कि यह पूरे समाज में हर स्तर पर व्याप्त जीवनशैली होना चाहिए जिसमें बिना भेदभाव के समता, स्वतंत्रता, असहमति एवं विकास के अधिकार और 'अंतिम व्यक्ति' (जो सबसे निचले पायदान पर हो) का सशक्तीकरण जैसे मूल्यों का होना अनिवार्य है। जैसा कि महात्मा गांधी ने 'मेरे सपनों का भारत में कहा था–''मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें सबसे गरीब लोग महसूस करेंगे कि यह उनका देश है जिसके निर्माण में उनकी प्रभावकारी भूमिका है, और जिसमें उच्च और निम्न वर्ग के लोग नहीं होंगे, और ऐसा भारत जिसमें सभी समुदाय पूर्ण सामंजस्य में रहेंगे, ऐसे भारत में छुआछूत एवं शराबखोरी के अभिशाप के लिए कोई जगह नहीं होगी। कोई व्यक्ति किसी दूसरे का शोषण नहीं करेगा और न किसी का शोषण किया जाएगा।''

इसी के अलोक में 'मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घाषणा' (1948) ने व्यवस्था की है (धारा 1) : ''अपने अधिकार और मान–मर्यादा दोनों में सभी लोग जन्मजात स्वतंत्र हैं।'' इसके अलावा इसकी धारा 5 में स्पष्ट किया गया है : ''किसी भी व्यक्ति के साथ प्रताड़ना, क्रूरता, अमानवीयता, घृणित व्यवहार नहीं किया जाएगा।)'' नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के कई (छह) मौलिक अधिकार भारतीय संविधान के खंड 3 में (धारा 14 से 35 तक) दिए गए हैं। उदाहरणार्थ, धारा 14 सभी को समता का अधिकार देती है : ''राज्य भारत के अंदर हर किसी को विधि के समक्ष समानता और कानूनों की समान सुरक्षा से इंकार नहीं करेगा।'' धारा 15 (1) में कहा गया हैः ''राज्य किसी नागरिक के साथ मात्र धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।'' इसी प्रकार धारा 15 (2) के अनुसार, ''दुकान, होटल, सार्वजनिक मनोरंजन–स्थल, कुआं, तालाब, स्नान घाट, सड़क, जनता के ठहरने के स्थान, जो अंशतः या पूर्णतः सरकारी निधि से संधारित हों, या आम जनता के उपयोग के लिए घोषित हों, क बावत किसी नागरिक को मात्र धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर अक्षमता, जिम्मेदारी, रोक या शर्त नहीं होगी।'' फिर धारा 16(2) के अनुसार, ''राज्य के अधीन किसी रोजगार या नियुक्ति हेतु सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता होगी।'' धारा 16(2) में इसे और व्यापक बनाया गया है : ''राज्य के अधीन किसी रोजगार या कार्यालय हेतु कोई नागरिक धर्म, प्रजाति, जाति, लिगं, वंश, जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर अयोग्य नहीं होगा अथवा उसके साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा।'' धारा 17 मे छुआछूत का अंत घोषित किया गया तथा धारा 18 में शिक्षा और सेना को छोड़कर शेष सभी उपाधियों का अंत किया गया।

दलितों की एक और समस्या जाति के आधार पर चिढ़ाना, मानसिक रूप से प्रताड़ित करना, शारीरिक रूप से पिटाई करना, जान से मारना या जला देना है। तुलसीदास ने संभवतः निम्नजातियों के द्वारा झेले जा रहे दंश को समझते हुए काफी संवेदना से साथ लिखा था–''सबसे कठिन जाति अपमाना।'' जन्म होने पर सामान्यतः गांवों में चमाइन या चमारिन (चमार

स्त्री) ही पारंपरिक रूप से सभी जातियों के नवजात शिशुओं का नाड़ा काटती रही है और उसके मुंह में उंगली डालकर उसे साफ करती रही है। (और कहीं–कहीं) उसके द्वारा पहला दूध पिलाने की भी प्रथा रही है। मगर उसी के साथ छुआछूत और चिढ़ाने का बर्ताव होता रहा है। घर से बाहर खेत–खलिहानों, शिक्षण संस्थानों, अस्पातालों तथा अन्य सार्वजनिक स्थलों पर भी उन्हें चिढ़ाया या प्रताड़ित किया जाता रहा है। 'मार–मार कर भंगी बनाने' की कहावत यूं ही नहीं बनी है।

दलितों के बारे में एक महत्वपूर्ण मुद्दा धर्मांतरण का है। भारतीय राजस्व सेवा से नौकरी छोड़कर राजनीति में आए रामराज से 'उदित राज' बने इंडियन जस्टिस पार्टी के अध्यक्ष ने कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली के रामलीला मैदान में दस लाख दलितों का धर्मांतरण बौद्ध धर्म स्वीकार किया जैसा कि पूर्व में बी.आर. आंबेडकर ने किया था। मगर अन्य दलित नेता जैसे कांशीराम और मायावती ने दलितों के उद्धार के लिए धर्मांतरण अंतिम उपाय नहीं माना है बल्कि विभिन्न सवैधानिक प्रावधानों यथा शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आवास, जलापूर्ति, सड़क जैसी सुविधाएं देकर दलितों के सशक्तीकरण की हिमायत की है।

संदर्भ–सूची :–

1. अमित भादुड़ी, डिफरेंसेज इन द डिजाइन्स आफ डेवलपमेंट, द हिंदू, 25 जुलाई, 2006
2. अर्जुन देव एवं अन्य (सं.) (1998), मानव अधिकार, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधन और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली
3. उमेश राठौर, पर्यावरण प्रदूषण, नीमा प्रकाशन, जयपुर
4. गार्गी परसाई, 8000 रैयत सुसाइड्स सिंस 2003, द हिंदू, 9 मई, 2007
5. चमन लाल, बाल श्रम, मानवाधिकारः नई दिशाएं, अंक 1, 2004
6. निलोवा रॉय चौधरी, टेरर, द हिंदुस्तान टाइम्स, 13 अगस्त, 2006 (पटना)
7. प्रभाकर सिन्हा, ह्यूमन राइट्रस, पी.यू.एल. पटना
8. भारत सरकार, पर्यावरण से मैत्री, (2000) प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली
9. एम. रामा जॉइस, भारतीय कल्वरल वैल्यूज फॉर द प्रोटेक्शन ऑव ह्यूमन राइट्रस, ओरिएंटल एंथ्रोपोलॉजिस्ट, 4(1), जनवरी 2004, पृष्ठ 107–28
10. युनिसेफ, दुनिया के बच्चों की स्थिति 2005, युनिसेफ, नई दिल्ली
11. राष्ट्रीय सहारा, नब्बे प्रतिशत किसानों को कृषि सब्सिडी का लाभ नहीं, 8 मई, 2007
12. विंदेश्वर पाठक, सिर पर मैला ढोने की प्रथा : एक सामाजिक अभिशाप, मानवाधिकार : नई दिशाएं अंक 1, 2004
13. संतोष कुमार, संपादकीय, मानवाधिकार : नई दिशाएं, अंक 1, 2004
14. स्वामी अग्निवेश, बंधुआ श्रमिक : समस्याएं एवं समाधान, मानवाधिकार : नई दिशाएं, अंक 1, 2004
15. सुभाष शर्मा, भारत में बाल मजदूर (2006), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली (द्वितीय संस्करण)
16. सुभाष शर्मा, भारतीय महिलाओं की दशा (2006), आधार प्रकाशन प्रा.लि., पंचकूला (हरियाणा)

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

महादेवी वर्मा के साहित्य में नारी के असंतुलित जीवन का चित्रण (श्रृंखला की कड़ियाँ)

डॉ. आशा देवी
सहा., प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, पंजाबी युनि. रिजनल सैंटर बठिण्डा

भूमिका :– आधुनिक हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा का स्थान महत्वपूर्ण है। गद्य और पद्य पर समान अधिकार रखने वाले साहित्यकारों में महादेवी वर्मा का विशेष स्थान है। उन्होंने दोनों विधाओं में अमूल्य योगदान दिया है। उनका गद्य साहित्य वास्तविकता पर आधारित है इस दृष्टिकोण से उनका गद्य साहित्योपयोगी भी है और समाजोपयोगी भी है। उनके गद्य साहित्य के अन्तर्गत रेखाचित्र संस्मरण, निबन्ध आदि आते हैं। जिसमें उन्होंने मानव मात्र के दुख, जीवन संघर्ष आदि को पास से देखा, सुना, का वर्णन किया है उनके गद्य साहित्य के कुछ चुनिन्दा शीर्षकों और 'श्रृखंला की कड़ियाँ' में वर्णित नारी जीवन को विशेष रुप से लिया है। 'श्रृखंला की कड़ियाँ' में नारी के जीवन को असंतुलित बनाने की समस्याओं को बखूवी वर्णित किया है।

'साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'सहित' में 'यत्' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। व्युत्पत्ति के अनुसार 'साहित्य' शब्द के दो अर्थ है पहला, जिसमें हित की भावना, निहित हो, वह साहित्य है। दूसरा वह जिसमें सम्मिलन का भाव हो वह साहित्य है। साहित्य में शब्द और अर्थ का समन्वय होता है। यह मानव की प्रगति, समृद्वि से सम्बन्धित ज्ञान का रुप है। साहित्य द्वारा सत्य, शिव और सुन्दर समग्र रुप से रुपायित होते हैं। जीवन की समस्याओं द्वारा जब व्यक्ति अन्तर मंथन करता है तब साहित्य जन्म लेता है। साहित्य में जीवन की अनेकरुपता, विविधता उत्पन्न होती है बाहरी शब्दकोश में 'असंतुलन' का कोशगत अर्थभार या महत्व में असमानता है।

नारी के असन्तुलित जीवन के लिए भारतीय समाज की सामाजिक व्यवस्था जिम्मेदार है। नारी सामाजिक श्रृंखलाओं में जकड़ी हुई है। इस व्यवस्था के बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं है महादेवी वर्मा ने इस असंतुलन के कई कारण बताये हैं। नारी के जीवन को असंतुलित करने वाली सभी समस्याओं एवं पक्ष विपक्षों का यथार्थ चित्रण किया है।

नारी के असन्तुलित जीवन का चित्रण :– भारतीय समाज में नारी सामाजिक श्रृंखलाओं मे जकड़ी हुई है। नारी चित्रण में महादेवी वर्मा ने भारतीय नारी की विभिन्न कारुणिक स्थितियों को प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज में नारी की पराधीनता को श्रृंखला की कड़ियाँ सिद्ध करते हुए उन्होंने नारीत्व को अभिशाप कहा है। उन्होंने उन नारियों के प्रति विशेष संवेदना व्यक्त की है, जो जीवन से दुखी होकर शरीर व्यवसाय करने को बाध्य होती हैं।

नारी के असंतुलित जीवन के कारण :– महादेवी वर्मा ने नारी के असंतुलित जीवन से सम्बन्धित सभी समस्याओं एवं पक्षों का यथार्थ चित्रण किया है। नारी के जीवन को असंतुलित बनाने के निम्न कारण हैं।

- **अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता न मिलना** :– भारतीय नारी की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि उसने साधारण वस्तुओं के द्वारा अत्यधिक अच्छा कार्य प्रदर्शन किया तो उसे अलौकिक वस्तुओं में स्थान दे दिया, यदि उसने कोई हेय कार्य किया तो उपेक्षा से निष्कासित कर दिया। दोनों ही स्थितियों में उसको स्वयं को अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की गई। उसकी हर संभव, असंभव परिस्थिति में उसको जानने का कोई भी प्रयास पुरुष प्रधान समाज में नहीं किया गया। प्राचीन समय में जिन गुणों के कारण उसे सम्मान एवं श्रद्धा प्राप्त थी, आज वही उसके अनादर का कारण माने जाने लगे हैं। उसकी इस दशा पर समाज ने किसी भी प्रकार का कोई भी प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया।

नारी के प्रति पुरुषों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है 'याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी को सब कुछ समर्पित कर वन जाने को प्रस्तुत होते हैं, परन्तु पत्नी वैभव का उपहास करती हुई पूछती है– यदि ऐश्वर्य से भरी सारी पृथ्वी मुझे मिल जाय तो क्या मैं अमर हो सकूंगी? पति उतर देता है, 'धन से तुम सुखी हो सकोगी, अमर नहीं।' पत्नी ने उत्तर दिया – यदि मैं अमर न हो सकूंगी उसे लेकर करुंगी ही क्या?[1]

इसका अभिप्राय है कि जब तक ज्ञान या शिक्षा प्राप्त नहीं होगी तब तक नारी के जीवन में असंतुलन व्याप्त ही रहेगा। आज 'तमसो मां ज्योतिर्गमयः मृत्योः मां अमृत गमयः' की आवश्यकता है।

- **पूर्वाग्रह** :– स्त्री के अस्तितव के संदर्भ में ऐसा पूर्वाग्रह है कि स्त्री पुरुष की छाया मात्र है। महादेवी वर्मा ने इस संदर्भ में लिखा है– ''यह किसी आपत्तिमूलक विष–वृक्ष का ही विषमय फल रहा होगा।''[2] किसी अशान्त वातावरण में पुरुष ने यह सिद्धान्त बना दिया कि स्त्री पुरुष की छाया मात्र है। इस पूर्वाग्रह के कारण आज असंख्य स्त्रियाँ अन्याय सहती हैं। पुरुष समाज के न्याय को आदर्श मानकर उनका पालन करती हैं। यह आदर्श नहीं है बल्कि असहाय एवं असमर्थता है जिस प्रकार किसी पशु की बलि उसके निरुपाय का त्याग है। अतः उन्होंने स्पष्ट किया है– ''यह विवेकहीन आदर्शाचरण भी उनके व्यक्तित्व को अधिक से अधिक संकुचित तथा समाज के स्वस्थ विकास के लिए अनुपयुक्त बनाता जा रहा है।''[3]

पूर्वाग्रह के संदर्भ में एक अन्य धारणा यह भी है कि यदि स्त्री को पूर्ण रुप से विकास की सभी सुविधाएँ प्रदान कर दी जायेंगी तो उसका जीवन उस उच्च पर्वत के शिखर के समान हो जायेगा जो अपनी ऊँचाई के कारण एकाकी होता है। उसे पूर्णता प्राप्त करने के लिए किसी संगी की अपेक्षा ही न रहेगी।'[4] परन्तु यह गलत है पूर्ण से पूर्ण वस्तु अपने आप में दूसरी की जगह नहीं ले सकती है। अतः स्त्री पुरुष से भिन्न है यह भिन्नता पूर्णतः में भी विद्यमान रहेगी और मानव समाज में नारी के स्वभाव से भिन्न सहयोगी पुरुष का सहयोग अवश्य रहेगा। अशिक्षित होने के कारण उसे अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं है। प्रथम चरण उसका माता–पिता, भाई–बहन तक सीमित होता है। दोनों ही जगहों पर यह परम्परागत रुढ़ियों से नारी का जीवन नियन्त्रित होता है। कहीं–कहीं पर यह रुढ़ियां इतनी भयावह होती हैं कि नारी का जीवन निरर्थक होकर नष्ट हो जाता है।

महादेवी वर्मा ने स्पष्ट किया है कि 'नारी में कोमलता, सहानुभूति के साथ साहस और विवेक का ऐसा सामजंस्य होना चाहिए। जिससे हृदय के सहज स्नेह की अजस्र वर्षा करते हुए भी वह किसी अन्याय को प्रश्रय न देकर उसके प्रतिकार में तत्पर रह सके।'[5] अतः नारी को अपनी विशेषताओं को सुरक्षित रखते हुए सामाजिक बन्धनों एवं रुढ़ियों को परिवर्तित करना होगा तभी नारी अपने अस्तित्व की रक्षा कर पायेगी। 'हमारी श्रृखंला की कड़ियाँ, भाग 2 में यह प्रस्तुत किया है कि अधिकांश नारियों को घर की चार दीवारी के बाहर भी भूमिका हो सकती है उन्हें इसका ज्ञान तक नहीं है या फिर गृहस्थी को अच्छे ढंग से चलाने के लिए किन्हीं विशेषाधिकारों का प्रयोग किया जा सकता है।

- **नागरिकता विषयक अधिकारों का अभाव** :– समाज, सामाजिक प्रणाली सभी समानता सूचक शब्द है। इसका अभिप्राय समाज के विकास के लिए व्यक्ति को विशेष सुविधाएँ एवं अधिकार प्रदान किये गये हैं। समाज में स्त्री एवं पुरुष दानों रहते हैं। दोनों के सहयोग से समाज का विकास हुआ। इसी आधार पर नागरिक शब्द का प्रयोग हुआ। नागरिकता का बोध मनुष्य को उन सभी कानूनी न्याय एवं सामाजिक अधिकारों का ज्ञान प्रदान करता है जिसका प्रयोग वह अपने विकास के लिए करता है। स्त्री भी समाज का अंग है और नागरिक होने के कारण उसे भी अधिकार होने चाहिए, परन्तु उसे किसी भी प्रकार के न तो अधिकार दिए गये हैं न ही शास्त्रों एवं शासन आदि ने देने का प्रयास किए गए हैं। शास्त्रों इत्यादि का अवलोकन किया जाए तो स्त्री को अधिकार कहीं भी प्रदान नहीं किए गए हैं भारत का ही नहीं बल्कि प्राचीन रोम और यूनान के इतिहास को देखें तो पता चलता है कि वहाँ स्वायत्त–शासन में भी स्त्रियों को किसी अधिकार योग्य नहीं समझा गया। सम्मान प्राप्त था, अधिकार प्राप्त नहीं थे।

- **सम्पत्ति के अधिकार से वंचित** :– स्त्रियों की दुर्दशा का महत्वपूर्ण कारण संपति का अधिकार न मिलना है। पितृ एवं पतिगृह में उसकी स्थिति दयनीय होती है। इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है– ''संपन्न पुरुषों की विधवाओं और पैतृकधन के रहते हुए भी दरिद्र पुत्रियों के जीवन हैं स्त्री–पुरुष के वैभव की प्रदर्शनी मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेंक दिए जाते हैं उसी प्रकार एक पुरुष के न होने पर स्त्री के जीवन का न कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है।'[6]

नारी स्थिति के सम्बन्ध में स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि – ''युगों के प्रवाह में सब कुछ नष्ट हो गया परन्तु भारतीय स्त्रियों के भाग्य में विधि की वज्रलेखनी से अंकित अदृष्ट लिपि नहीं धुल सकी।''[7]

स्त्रियों के जीवन को बदलने का न कोई प्रयास कर रहा है न किसी ने कोई प्रयत्न किया है बल्कि उसको प्राचीन रुढ़ियों में जकड़ने का ही प्रयास किया जा रहा है। उन्होंने स्पष्ट किया है– ''प्राचीनता की पूजा बुरी नहीं, उसकी दृढ़ नींव पर नवीनता की भित्ति ख़ड़ी करना भी श्रेयस्कर है, परन्तु उसकी दुहाई देकर जीवन को संकीर्णतम बनाते जाना और विकास के मार्ग को चारों ओर से रुद्ध कर लेना किसी जीवित व्यक्ति पर समाधि बना देने से भी अधिक क्रूर और विचारहीन कार्य है।'[8] सफलताओं और विफलताओं की संख्या के आधार पर हमें आगे बढ़ने की कार्य प्रणाली पर कार्य करना चाहिए। जीवन को सफल बनाने के लिए अतीत का ज्ञान आवश्यक है। परन्तु अतीत की शिक्षा को नवीन वातावरण के अनुसार बनाकर समस्याओं का समाधान करना चाहिए। स्त्रियों से सम्बन्धित प्राचीन नियमों में संशोधन करना होगा और बदलते समय के अनुसार नवीन नियमों का निर्माण आवश्यक है। विधवाओं के समबन्ध में महादेवी वर्मा ने स्पष्ट लिखा है यदि उन्हें अर्थ सम्बन्धी अधिकार प्रदान कर दिए जाए तो उनका जीवन किसी के लिए भार नहीं बन सकेगा और न ही समाज उनकी उपेक्षा करेगा। साधन संपन्न होकर वह अपने जीवन को समाज या राजनीति में लगाकर उन्नति के लिए सहयोग प्रदान करेंगी।

- **शासन व्यवस्था में प्रतिनिधित्व न मिलना** :– शासन व्यवस्था में स्त्रियों की भागीदारी शून्य है। इसलिए आधा नागरिक समाज प्रतिनिधित्वहीन होता है। स्त्रियों की समस्याओं एवं उनके अधिकारों को जितने सुव्यवस्थित रुप से स्त्रियाँ रख सकेंगी उतना पुरुष नहीं। महादेवी वर्मा ने स्पष्ट किया है कि शिक्षित एवं जाग्रत स्त्रियों को शासन में पहुँच कर अन्य स्त्रियों के हितार्थ कार्य करवाना होगा जिससे समाज का हित हो सके। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि शासन व्यवस्था में कार्य करने वाली स्त्रियों को पर्याप्त अधिकार प्रदान किए जाएँ।

सामाजिक अधिकारों के सम्बन्ध में भी यही सत्य है कि स्त्री और पुरुषों के लिए सामाजिक बन्धन भी भिन्न–भिन्न प्रकार के हैं। स्त्री के लिए नियम अधिक कठोर हैं और पुरुषों के लिए शिथिल हैं। दोनों के लिए समान नियम बनाये जाने चाहिए। नारी की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा नारी अब अपनी शक्ति के प्रति जागरुक हो रही है और इन बन्धनों को तोड़ने का सुयोग ढूंढ़ रही है इसलिए सामाजिक अधिकारों को पुनः परिवेश के अनुसार निरीक्षण कर भविष्य के लिए उपयोगी बनाये। नारी की शक्ति का उदाहरण द्रष्टव्य है– 'जो देश के भावी नागरिकों की विधाता है, उनकी प्रथम और परम गुरु है, जो जन्म भर अपने आपको मिटाकर, दूसरों को बनाती रहती है वे केवल तभी तक आदरहीन मातृत्व तथा अधिकार–शून्य पत्नीत्व स्वीकार करती रह सकेंगी, जब तक उन्हें अपनी शक्तियों का बोध नहीं होता। बोध होने पर वे बन्दिनी बनाने वाली श्रृखंलाओं को स्वयं तोड़ फेंकेगी।'[9] महादेवी वर्मा ने समाज से प्रश्न किया है कि यदि पुरुष केवल धनोपार्जन करके समाज तथा राष्ट्र का उपयोगी अंग माना जा सकता है तो स्त्री गृह में भविष्य के लिए संतान का पालन–पोषण कर अपने महान कर्तव्य का पालन करती है। उसे भी पुरुष के समान राजनीतिक एवं सामाजिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। संसार और उसके बीच यह भेद बनाकर उसे दूर रखा जा रहा है। नारी की इस स्थिति का वर्णन है– ''संसार की प्रगति से अनभिज्ञ, अनुभव शून्य, पिंजरबद्ध पक्षी के समान अधिकार विहीन, रुग्ण, अज्ञान नारी से फिर शक्ति–संपन्न सृष्टि की आशा की जाती है, जो मृगतृष्णा से तृप्ति के प्रयास के समान ही निष्फल सिद्ध होगी।''[10]

- **वर्ग भेद** :– समाज की आर्थिक स्थिति के आधार पर महादेवी वर्मा ने महिलाओं को तीन वर्गों में बाँटा है। श्रमिक वर्ग मध्यम वर्ग और सम्पन्न वर्ग या जागृत महिलाएँ मध्यम वर्ग की महिलाओं को कभी अपनी स्थिति पर सोचने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता है। पितृगृह एवं पतिगृह दानों जगह उपेक्षा एवं अनादर को सहन कर मृत्यु के अंतिम क्षण का इंतजार करती हैं। इनकी स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है– ''स्वत्वहीन धनिक महिलाओं को यदि सजे हुए खिलौने का सौभाग्य प्राप्त है तो साधारण श्रेणी की स्त्रियों को क्रीतदासी का दुर्भाग्य।''[11] श्रमिक वर्ग की स्त्रियों को स्वावलंबन दुर्लभ है। इन महिलाओं को संतान का पालन पोषण एवं आर्थिक सहायता के लिए कार्य भी करना पड़ता है। कृषक एवं श्रमजीवी महिलाओं की संख्या अधिक है। जब तक इन महिलाओं की स्थिति भी ठीक नहीं होगी तब तक समाज के अन्य श्रेणी की महिलाओं की स्थिति भी ठीक नहीं हो सकेगी। महादेवी वर्मा ने श्रमजीवी महिलाओं के उत्तराधिकार के संबन्ध में लिखा है– ''उतराधिकार मिल जाने पर भी हमारी मजदूर स्त्रियाँ निर्धन पिता तथा दरिद्रपति से दरिद्रता के अतिरिक्त और क्या पा सकेंगी।'' इन के जीवन स्तर को सुधारने के लिए प्रथम आवश्यकता ज्ञान है। ज्ञान के द्वारा वह कार्य

क्षेत्र में अपने स्वत्वों की रक्षा कर सकेंगी। उनका शोषण कोई नहीं कर पायेगा।

महादेवी वर्मा ने विदुषी महिलाओं को संबोधित करते हुए लिखा है कि ''वे अपने ज्ञान से धनिक स्त्रियों में जागृति उत्पन्न करने, उन्हें अभाव का अनुभव कराने का भार विदुषियों पर है और बहुत समय तक रहेगा।'' महादेवी वर्मा ने भारतीय नारी की महानता को व्यक्त इस प्रकार किया है– ''भारतीय नारी भारतीय पुरुष के अधिक सतर्कता के साथ अपनी विशेषताओं की रक्षा कर सकी है, पुरुष के समान अपनी व्यथा भूलने के लिए वह कादम्बिनी नहीं माँगती, उल्लास के स्पन्दन के लिए लालसा का तांडव नहीं चाहती क्योंकि दुख को वह जीवन की शक्ति–परीक्षा के रुप में ग्रहण कर सकती है और सुख को कर्तव्य में प्राप्त कर लेने की क्षमता रखती है। कोई ऐसा त्याग, कोई ऐसा बलिदान और कोई ऐसी साधना नहीं जिसे वह अपने साध्य तक पहुँचने के लिए सहज भाव से नहीं स्वीकार करती रही।'' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण राष्ट्रीय जागृति के द्वारा लिया जा सकता है। गृह की बंदिनी ने अवसर मिलने पर पुरुष के समान शक्तिपूर्ण कार्य किये हैं।

'हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा ने स्पष्ट किया है कि नारी के जीवन को उपेक्षणीय बनाने में कहीं स्वयं महिलाएँ जिम्मेदार हैं, तो कहीं पुरुष जिम्मेदार हैं। इसका प्रधान कारण अज्ञानता है। इसलिए उन्होंने सुशिक्षित महिलाओं का आह्वान किया है। वे अपना संकुचित दृष्टिकोण त्याग कर अन्य बहनों के हितार्थ कार्य करें।

- **नारी के प्रति हेय दृष्टि** :– नारी के प्रति पुरुष की हेय दृष्टि है। नारी ने चाहे जितना बड़ा त्याग या बलिदान किया हो परन्तु पुरुष उसको कोई महत्व नहीं देता है। उसकी दुर्बलता का दान समझकर स्वीकार कर लेता है। सीता द्वारा अग्नि परीक्षा, परशुराम द्वारा माता का वध आदि उदाहरणों के द्वारा यह सिद्ध होता है कि मानों पुरुष समाज के पास अपनी शक्ति प्रदर्शन का कोई अन्य साधन ही न था।

नारी के प्रति हेय दृष्टि का कारण उसकी दुर्बलता माना जाता है। वह दुर्बल नहीं है बल्कि वह नारीतव का अलंकार समझकर उसे त्यागने का प्रयास नहीं करती है। महादेवी वर्मा ने स्पष्ट किया है कि यदि नारी दुर्बल होती तो अपने प्रतिद्वन्द्वियों के समक्ष बिना किसी अस्त्र और बल प्रदर्शन के असंख्य विपक्षियों से अपने आत्म सम्मान की रक्षा कैसे करती है?

'नारीत्व का अभिशाप' में महादेवी वर्मा ने नारी की करुण दशा का कारण स्वयं एवं समाज का दृष्टिकोण माना है। आज और अतीत की नारी में अन्तर है अतीत में उसने स्वेच्छा से अपने गौरव की रक्षा के लिए जौहरव्रत किया था परन्तु आज उसे विवश किया जाता है। वह अपने कष्टों का न कारण जानती है न निदान। इस प्रकार अनभिज्ञता भी इसका प्रमुख कारण है। समाज द्वारा ही उसके लिए विभिन्न प्रकार के कष्टों को निर्धारित किया गया है। कष्ट सहते–सहते वह चेतना शून्य हो गयी। नारी की इस संज्ञाहीनता का उदाहरण द्रष्टव्य है– ''जब हम किसी अंग से उसकी शक्ति से अधिक कार्य लेते रहते हैं तो वह शिथिल औस संज्ञाहीन सा हुए बिना नहीं रहता।''[12] यही दशा नारी समाज की है वह अपनी शक्ति से अधिक सहन कर संज्ञाहीन हो गई है। मनुष्य का नारी के प्रति जब तक दृष्टिकोण नहीं बदलेगा तब उसकी समाज में हेय दशा ही रहेगी।

- **पित्रृगृह एवं पतिगृह में सम्मान न मिलना** :– हिन्दू नारी को पिता एवं पति के गृह में संपति का अधिकार प्राप्त नहीं है। इसलिए इनकी स्थिति भयावह होती है। पिता के घर में एक भिक्षुक की स्थिति होती है। जीवन के किसी पड़ाव में कोई आकस्मिक विपत्ति आ जाने पर वह सहायता की आशा नहीं रख सकती। उसकी जन्मभूमि जीवित रहने के अतिरिक्त और कुछ प्रदान नहीं कर सकती है। पतिगृह में प्रतिपल आंशका के साये में रहती है। पति की इच्छानुकूल परीक्षा में यदि वह खरी नहीं उतरती है तो उसे दासी का स्थान ग्रहण करना पड़ता है। उसकी इस स्थिति में कोई भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता। उसकी स्थिति बंदिनी के समान होती है, चाहे वह धन सम्पन्न युक्त घर हो या दरिद्र का। स्वतन्त्र रुप से वह अपनी स्थिति पर सोच भी नहीं सकती है।

शास्त्रों में नारी की स्थिति में कहा गया है 'स्त्री न स्वतंत्रयम् अर्हति' जिसके चरणों में उसका जीवन निवेदित है उसी के अनुसार कार्य करना होगा। इस विचार से नारी मानवी नहीं, देवी है और देवताओं को मनुष्य के लिए आवश्यक सुविधाओं का करना ही क्या है। नारी के देवत्व की कैसी विडम्बना है।'' विधवाओं के प्रति समाज एवं परिवार का उपेक्षणीय व्यवहार अत्यन्त भयावह होता है उन्हें इस दुर्भाग्य के लिए मृत्यु जैसे भयावह दंड का भी प्रावधान है। उन्हें अपना शेष जीवन तिल–तिल जल कर जीना पड़ता है। विधवाओं के लिए बनाये गये कठोर नियमों पर व्यंग्य

करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि पुरुष जिन मानवीय दुर्बलताओं पर विजय अटूट संयम और साधना से भी प्राप्त नहीं कर पाया उन्हीं पर विजय प्राप्त करने का आदेश बाल विधवाओं को दे देता है। उन बालिकाओं को जीवन का भी ज्ञान नहीं होता है। मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है कहीं पर नियमों के लिए शास्त्रों को माध्यम बनाया है, तो कहीं पर परमात्मा को माध्यम बनाया हैं उदाहरण द्रष्टव्य है– ''उनकी आज्ञा है, उनके शास्त्रों की आज्ञा है और कदाचित उनके निर्मम ईश्वर की भी आज्ञा है कि वे जीवन की प्रथम अँगडाई को अंतिम प्राणायाम में परिवर्तित कर दें, आशा की पहली सुनहली किरण को विषाद के निविड़ अंधकार में समाहित कर दें और सुख के मधुर पुलक को आँसुओं में बहा डालें।''[13] जब तक समाज या शास्त्र समयानुसार अपने नियमों में परिवर्तन नहीं करेंगे तब तक नारी की स्थिति भयावह ही रहेगी। पुरुष अपने ही समान उसकी स्थिति पर दृष्टपात करें।

- **अपहरण की समस्या** :– नारी के लिए समाज ने, विधाता ने असहनीय नियमों की व्यवस्था की हैं इन असहनीय नियमों के अतिरिक्त समाज में नारी अपहरण जैसे लोमहर्षक एवं घृणित समस्याएँ भी उत्पन्न की है। इस घृणित समस्या ने आज भयंकर रुप धारण कर लिया है। इसके दुष्परिणाम अपहृत हिन्दू, स्त्रियों को आजीवन भोगने पड़ते हैं। गृह और समाज इन्हें अमानुषिक यातानाएँ देता है। इन यातनाओं से छुटकारा प्राप्त करने के लिए एक नरक से दूसरे नरक में गिरने को उद्यत हो जाती हैं। यदि हम इनकी करुण कहानी सुनकर इनके असहन दुख भार को अपनी सहानुभूति से दूर करने का प्रयास करते तो इनका जीवन भी आदरणीय बन सकता था। महादेवी वर्मा ने मनुष्य की स्वार्थी प्रवृति पर प्रकाश डालते हुए कहा है– '' हम पशु–पक्षियों को, पाषाणों को अपनी सहानुभूति बाँट सकते हैं, नारी को निर्मम आदेश के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे पाते। देवता की भूख हम समझ सकते हैं, परन्तु मानवी की नहीं।''[14] समाज में घटती इस प्रकार की घटनाएँ कर्मठ युवकों के लिए संसार का आठवाँ आश्चर्य है। इस प्रकार आज समाज में सभी असुरक्षित हैं। जब तक सुरक्षा की भावना का अनुभव नहीं होगा तब तक नारी का जीवन विभिन्न समस्याओं से असंतुलित ही रहेगा। सदियों की दासता एवं कठोर यातना ने इन्हें ज्ञान शून्य बना दिया है इनकी स्थिति विवश पशु के समान है।

- **साहित्यिक वातावरण के अभाव** :– नारी के मानसिक विकास के लिए साहित्यिक वातावरण का होना अत्यन्त आवश्यक है। महादेवी वर्मा ने स्पष्ट किया है– ''शरीर जिस प्रकार भोजन न पाकर दुर्बल होने लगता है, स्त्रियों का मस्तिष्क भी साहित्य रुपी खाद्य न पाकर निष्क्रिय होने लगता है, जिसका परिणाम मानसिक जड़ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता।'' हमारे यहाँ स्त्रियों को इस प्रकार की सुविधा प्राप्त नहीं है। सुविधा केवल उपाधिधारी महिलाओं तक सीमित है अन्य साधारण स्त्रियों को प्राप्त नहीं है।

महादेवी वर्मा ने साहित्य की उपयोगिता इन शब्दों में व्यक्त की है–''साहित्य कठिन से कठिन कर्तव्य और कटु–से–कटु अभाव को कोमल और मधुर बना सकता है।'' स्त्रियों को साहित्यिक वातावरण प्रदान करना परिवार का दायित्व होना चाहिए। साहित्य सेवा आर्थिक कठिनाइयों को भी दूर करती है। उन्होंने साहित्य की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहा है– ''यदि हम साहित्य को जीवन का प्रतिबिम्ब समझकर उससे अपने अनुभव के कोष को बढ़ाते हैं, उसे अपने क्षीण दुर्बल जीवन के लिए आशा की संजीवनी बना सकते हैं तो उससे हमारे जीवन का कल्याण होता है।''[15] स्त्री को किसी भी क्षेत्र में स्वतन्त्रता देने के लिए पुरुष को अपना दृष्टिकोण बदलना होगा। उसे संकीर्णता एवं संदिग्धता का त्याग करना होगा। बदलते समय के अनुसार देवत्व और दासत्व दोनों समाप्त होकर सामान्य मानव की श्रेणी में आ गये हैं।

- **विवाह की अनिवार्यता** :– भारतीय परंमरा के अनुसार विवाह एक अनिवार्य कर्म है। कन्या जन्म के पश्चात ही माता–पिता को उसके विवाह की चिन्ता व्याप्त हो जाती है। विवाह के बिना नारी की स्थिति के बारे में सोचना भी असंभव है। विवाह जैसे अनिवार्य कर्म के लिए कन्या की स्वीकृत–अस्वीकृत, योग्यता–अयोग्यता का कोई प्रश्न नहीं। विवाह की अनिवार्यता उसके लिए भरण–पोषण को साधन ढूँढ़ना है। इस प्रकार समाज का अयोग्य पुरुष भी पत्नी का अधिकारी बन जाता है। विवाह बंधन में बँधने के लिए कन्या को विभिन्न प्रकार की परीक्षा पर खरा उतरना पड़ता है। जैसे – मोटापन, दुबलापन, नख–शिख, हँसाकर, लिखाकर, पढ़ाकर आदि। युवक चाहे जैसा हो परन्तु कन्या को शिक्षा, कला आदि प्रतियोगिता में सफल होना आवश्यक है। महादेवी वर्मा ने नारी की विवशता को इन शब्दों में प्रकट किया है– ''जहाँ स्त्री को केवल जीने के लिए ही पत्नी बनना होगा, वहाँ

आदर्श पत्नी और आदर्श माताओं का अभाव दिखाई दे तो आश्चर्य की बात नहीं।''[16]

• **नारी के प्रति पुरुष की अवधारणा** :– पुरुष ने अपनी मनोदशा के आधार पर नारी का विभिन्न रुपों में स्थान दिया है। इन विभिन्न रुपों के पीछे भी उसकी अपनी स्वार्थी प्रवृति भी हॉवी रही है। अपनी इस प्रवृति को संतुष्टि करने के लिए एक ऐसी नारी की कल्पना की जिसे मन तथा शरीर दोनों में नित्य नवीन रहने का अभिशाप मिला हो। उस नारी का महादेवी वर्मा ने मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है–''उसके नारीत्व को दूसरों के मनोरंजन मात्र का ध्येय मिला है तथा उनके जीवन का तितली–जैसे कच्चे रंगों से श्रृगांर हुआ है, जिसमें मोहकला है, परन्तु विनोद के समय आवश्यक भी समझी गई, जैसे मनुष्य समाज हानि पहुँचाने वाले विचित्र पशु–पक्षियों को भी मनोरंजन के लिए कठघरों में सुरक्षित रखता है।'' पुरुष ने इस स्त्री को कोई अधिकार नहीं दिया। उसका साहचर्य संघर्ष के समय क्षण भर अवकाश पाने के लिए लिया गया।

महादेवी वर्मा ने यह प्रश्न किया है कि ''क्या स्त्री, पत्नी के रुप में पुरुष के संघर्षमय जीवन को अधिक सहज एवं सरल नहीं बना सकती थी? बना सकती थी और बनाती रही है, परन्तु वह माता होकर जो स्निग्ध स्नेह दे सकती है वह उत्तेजक नहीं है।'' उन्होंने पुरुष की विकृति दशा पर क्षोभ एवं नारी की विवशता को इस प्रकार व्यक्त किया है–''स्त्री पत्नी बनकर पुरुष को वह नहीं दे सकती। जो उसकी पशुता का भोजन है। इसी से पुरुष ने कुछ सौंदर्य की प्रतिमाओं को पत्नीत्व तथा मातृत्व से निर्वासित कर दिया।'' मनुष्य ने अपने पशुत्व की रक्षा करने के लिए एक ऐसी नारी की कल्पना की है उसका वर्णन द्रष्टव्य है–''मनुष्य में जो एक पशुता का, बर्बरता का अक्षय अंश है उसने सर्वदा ऐसी ही नारी की इच्छा की। उसने इस स्त्री को देवता की दासी बनाकर पवित्रता का स्वांगभरा, कहीं मंदिर में नृत्य कराकर कला की दुहाई दी और कहीं केवल अपने मनोविनोद की वस्तु मात्र बनाकर अपने विचार में गुण–ग्राहकता ही दिखाई।''

पुरुषों की स्वार्थी मनोवृति को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है–'' जीवन की एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटुकारी से मुग्ध करता रहता है, झूठी प्रशंसा की मदिरा से उन्नत करता रहता है, इसके सौंदर्य दीप पर शलभ सा मँडराता रहता है परन्तु उस, मादकता के अन्त में, उस बाढ़ के उतर जाने पर उसकी ओर कोई सहानुभूति भरे नेत्र नहीं उठाता।''[17]

पुरुषों की स्वार्थी प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि जिन व्यक्तियों ने, समाज ने स्त्रियों को रुप की हाट लगाने के लिए विवश किया, उन स्त्रियों के जीवन के लिए उन्होंने कभी नहीं सोचा। उनको सम्मान दिलाने के लिए हमें अपना दृष्टिकोण बदलना होगा, कुछ व्यावहारिक कार्य भी करने होंगे जिससे कोई भी समाज का प्राणी अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी अन्य प्राणी के अधिकारों की हत्या न कर सके।

• **वेश्या समस्या** :– समाज में व्याप्त वेश्या समस्या पर महादेवी वर्मा ने क्षोभ प्रकट करते हुए कहा है मनुष्य ने अपने स्वार्थ को पूर्ण करने के लिए उन्हें देवताओं को प्रसन्न करने के लिए देवदासी बना दिया कभी समाज के लिए क्रीतदासी बना दिया। उसे जीविका के अन्य साधनों को अपनाने की भी स्वतन्त्रता नहीं थी। यह स्त्रियाँ भी उसी समाज का अंग हैं अन्य नारियों की भाँति इनके पास भी बुद्धि एवं स्नेह हैं परन्तु इन्हें एक ऐसे घृणित व्यवसाय के लिए बाध्य करना उचित नहीं है। इस व्यवसाय के अन्तर्गत आदि से अन्त तक अपनी आत्मा की हत्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

स्त्री को इस मार्ग पर पहुँचाने वाला पुरुष ही है। पुरुष को उसकी भूलों के लिए कोई दंड निर्धारित नहीं किया गया, परन्तु स्त्री के लिए कठिनतम दंड का आविष्कार किया गया। समाज ने इन नारियों को तिरस्कार दिया, इनके प्रति सहानुभूति नहीं दिखायी। इन स्त्रियों की उपेक्षा का उदाहरण द्रष्टव्य है– ''जिन स्त्रियों ने मृत पुरुष की अधिकार भावना का सम्मान करते हुए स्वयं को क्षण–भर में चिता को समर्पित कर दिया। उनकी याद इतिहास में सुरक्षित है, परन्तु जीवित पुरुष की वासनाग्नि में तिल–तिल जलने वाली रमणियों को मनुष्य जाति ने दो बूँद–आँसू पाने का भी अधिकारी नहीं समझा।'' महात्मा बुद्ध से वैशाली की गणिका आम्रपाली को करुणा की भीख मिल गई थी, परन्तु समाज ने इन उपेक्षित स्त्रियों को घृणा से देखा और तिरस्कृत किया। महादेवी वर्मा ने स्पष्ट किया है जब तक पुरुष को अनाचार के लिए दंड नहीं दिया जायेगा तब तक इन शरीर व्यवसायिनी नारियों को न्याय प्राप्त नहीं हो सकेगा। नारी जीवन को घृणित बनाने के लिए यह अनाचारी भी जिम्मेदार है।

महादेवी वर्मा ने पुरुष की नारी के प्रति अवधारणा पर व्यंग्य किया है कि मनुष्य नारी को एक ऐसा यन्त्र मानता है, जिसके सभी कल पुर्जों का प्रदर्शन कर अपनी विद्वत्ता सिद्ध करना चाहता है। मनुष्य की इस यथार्थवादिता पर उन्होंने क्षोभ भी व्यक्त किया है। पुरुष बिना स्त्री के अपूर्ण है। स्त्री किसी भी स्थिति में उससे कम महत्व नहीं रखती है। नारी के महत्व को उन्होंने सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है–''धरती के अप्रत्यक्ष हृदय में अंकुर की सृष्टि होती है, अन्धकार की गहनता के भीतर से दिन का आर्विभाव होता है और अन्तर की रहस्यमयी प्रेरणा से जीवन को विकास मिलता है। नारी भी स्थूल तक न जाने कितने साधनों से जीवन और जाति के सर्वतोन्मुखी निर्माण में सहायक होती है।'' पुरुष ने नारी को मात्र उच्छृंखल विलास का साधन बनाया हैं इस धारणा के द्वारा वह नारी की सृजनात्मक शक्तियों का परिचय प्राप्त नहीं कर पायेगा। नारी का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए पुरुष को अपनी यथार्थवादी दृष्टिकोण का त्याग करना पड़ेगा। स्त्री को प्रदर्शनी समझना नारी के प्रति क्रूरता होगी। स्त्री आदर्श है, आदर्श का अनुकरण करना पुरुष जाति के लिए श्रेयस्कर होगा।

नारी के जीवन की विकृतियों का कारण यही मूल प्रवृतियाँ है। नारी की इस विवशता का उदाहरण द्रष्टव्य है– ''यदि वह पुरुष की इस प्रवृति को स्वीकृति देती हे तो जीवन को बहुत पीछे लौटा ले जाकर एक श्मशान में छोड़ आती है और यदि उसे अस्वीकार करती है तो समाज को बहुत पीछे छोड़ शून्य में आगे बढ़ जाती है, स्त्री के जीवन के तार–तार को जिसने तोड़कर उलझा डाला है। उसके अणु–अणु को जिसने निर्जीव बना दिया है और उसके सोने के संसार को जो धूल के मोल लेती रही है, पुरुष की वही लालसा, आज की नारी के लिए विश्वस्त मार्ग दर्शिका न बन सकेगी।''

उपसंहार :– नारी के जीवन को असंतुलित बनाने के कई कारण बताये हैं मुख्य रुप से नारी की दुर्दशा को संपत्ति का अधिकार, शिक्षा का न होना आदि है। नागरिक तो है परन्तु अधिकारविहीन है उसके व्यक्तित्व विकास के लिए कोई सुविधाएँ नहीं दी गयी हैं। शास्त्रों की बात की जाए तो घर की स्वामिनी है खर्च कर सकती है परन्तु अधिकार नहीं है ऐसी स्थिति में विधवा होने पर दयनीय जीवन हो जाता है। सम्मान भी विधवा स्त्री को कम दिया जाता है यदि संपत्ति का अधिकार दे दिया जाए तो स्वाभिमान के साथ रह सकती है। उसे 'अभागी स्त्री' की पतिव्रता नारी की तरह ससुर अपमानित नहीं कर सकते। वे लिखती है युगों के प्रवाह में सब कुछ बह गया परन्तु भारतीय स्त्री के भाग्य में विधि की वज्रलेखनी से अंकित अदृष्ट लिपि नहीं धुल सकी। स्त्रियों के जीवन में संतुलन बनाने का प्रयास तो नहीं किया गया बल्कि रुढ़ियों में जकड़ कर अंसतुलन पैदा किया जा रहा हे। वे स्पष्ट लिखती है प्राचीनता की पूजा बुरी नहीं है बल्कि उस पर नवीन इमारत खड़ी करना श्रेष्ठ है।

नारी के प्रति पुरुष की सदियों पुरानी हेय दृष्टि है। वह ऐसा मानता है कि नारी श्रेष्ठ हो ही नहीं सकती है। नारी ने चाहे जितना बड़ा त्याग किया हो परन्तु पुरुष उसको कोई महत्व नहीं देता है। उसकी दुर्बलता का दान समझकर स्वीकार कर लेता है। सीता द्वारा अग्नि परीक्षा, परशुराम द्वारा माता का वध आदि से पता चलता है कि मानों पुरुष समाज के पास अपनी शक्ति प्रदर्शन का कोई अन्य साधन ही न था। नारी दुर्बल नहीं है बल्कि नारीत्व को अलंकार समझकर उसे त्यागने का प्रयास नहीं करती है। पुरुष समाज जब तक अपनी सोच को सकारात्मक दृष्टिकोण से नहीं बदलेगा तब तक संतुलन की आशा एक कल्पना ही होगी। स्त्री–पुरुष दोनों ही विकास में अपना योगदान देते हैं। नारी के सहयोग के बिना सुन्दर, स्वस्थ समाज नहीं बन सकेगा। नारी आदर्श है। आदर्श का अनुकरण करना पुरुष जाति के लिए श्रेयस्कर होगा।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 12
2. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 14
3. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 15
4. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 15
5. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 19
6. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 22
7. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 22
8. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 23

9. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 24
10. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 25
11. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 26
12. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 39
13. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 40
14. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 41
15. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 75
16. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 78
17. महादेवी वर्मा : 'श्रृंखला की कड़ियाँ' : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2001, पृष्ठ 90
18. महादेवी वर्मा : 'अतीत के चलचित्र', राधा कृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. दिल्ली, 1972, पृष्ठ 77
19. आर्य, भारती, 'स्मृतियों में नारी', विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, वाराणसी, 1989
20. गुप्ता, मंजुला, 'ब्राह्मण ग्रंथों में नारी', जे. पी. पब्लिशिंग हाउस नांगलोई, दिल्ली, 2000
21. डॉ. आशा देवी, 'भारतीय संस्कृति में नारी की दशा एवं दिशा' मोहित पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नयी दिल्ली, 2017
22. डॉ. बाहरी, 'राजपाल हिन्दी शब्दकोश', राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ 68

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

भारत में पंचायती राज की अवधारणा

डॉ. सपना शर्मा
शोधार्थी, श्रुति जैन
रा.दु.वि.वि. जबलपुर

भारत की प्राचीन सामाजिक, राजनैतिक संस्कृति के दर्शन हमें गाँव तथा गाँव की ग्रामीण संस्था अर्थात् ग्राम पंचायतों से होते हैं। भारत के इतिहास की पृष्ठभूमि से स्पष्ट होता है कि पंचायत एवं पंचायत राज की परम्परा भारतीय संस्कृति के मूल में विद्यमान रही है। प्रारंभ में पंचायत किन्हीं निश्चित क्षेत्र से चुने पाँच प्रतिष्ठित व्यक्तियों की एक निकाय होती थी, इसका निश्चित क्षेत्र एक गाँव हुआ करता था। गाँव एक स्वभाविक एवं मूल इकाई थी। भाषा, जाति एवं सत्ता के आधार पर देश और राज्य की व्यवस्था में परिवर्तन होता रहा पर गाँव एक स्थिर इकाई बना रहा। भौगोलिक एवं सामाजिक दोनों परिवर्तनों से यह अछूता रहा। डॉ. राधामुकुन्द मुखर्जी के अनुसार "पंचायत जनता की सामान्य सभा के रूप में अपने सदस्यों के समान अधिकार, स्वतन्त्रताओं के लिए निर्मित होती है, ताकि सब लोगों में समानता, स्वतन्त्रताओं तथा बंधुत्व का विचार दृढ़ रहे।"

प्राचीन साहित्य में पंचायत शब्द ग्रामीण समुदाय के रूप में नहीं पाया जाता था किंतु वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल में परिषद, सभा, समिति आदि शब्दों का प्रयोग होता रहा। पंचायत शब्द वास्तव में महाभारत काल के बाद प्रयुक्त किया गया, जैसी कि अनेक विद्वानों की धारणा है यह शब्दावली संस्कृत के शब्द पंचायतन या पंचायती से बना है जिसका तात्पर्य है पाँच के शासन के अंतर्गत्।

इन पाँचों सदस्यों की आवाज सभी की आवाज मानी गई अथवा उसे ईश्वरीय वाणी कहा गया, इसलिये ग्राम पंचायत के पंच को परमेश्वर या पंच देवता के नाम से पुकारा गया। इस संदर्भ में विनोबा भावे का कथान है कि "हिन्दी, गुजराती, मराठी के समान भाषाओं में यह प्रतिपादित होता है कि 5 के मुख से ईश्वर की आवाज निकलती है। अतः 5 लोगों द्वारा एक मत से लिये गये निर्णय को स्वीकार किया जाना चाहिये और ये ईश्वरीय वाणी समझी जानी चाहिये। किंतु इन तीन–चार में से कोई भी सदस्य ईश्वर नहीं है क्योंकि उनके माध्यम से जनता संघर्षरत होती है। प्राचीन काल में जो पाँच लोग थे वे एक मत से कोई भी निर्णय लेते थे और सारी जनता उन्हें सम्मानपूर्वक स्वीकार करती थी। अतः विवाद या झगड़ों की स्थिति उत्पन्न नहीं होती थी। यही उसका प्राथमिक परीक्षण है तथा यह स्पष्ट करता है कि ग्राम पंचायतों को हमेशा एक मत से निर्णय लेना चाहिये।

पंचायती राज का आशय :– हमारी पंचायत प्रणाली स्थानीय सरकार का ही स्वरूप है। भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से "पंचायत" शब्द प्रयुक्त किया जाता रहा है। भारतीय दर्शन में मानव शरीर की रचना पांच तत्वों से हुई मानी गई है –ये हैं पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु । मानव शरीर इन्हीं पांच तत्वों से निर्मित होकर क्रियाशील होता है। इसी प्रकार प्रशासन के लिये भी पांच की उपस्थिति आवश्यक मानी गई है। अतः स्पष्ट है कि पंचायत प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। इसलिए आज भी भारतीय जनमानस में उसके प्रति अगाध श्रद्धा एवं अटूट विश्वास दिखाई देता है।

भारतीय प्रशासन में 'पंचायती राज' न केवल प्राचीनतम राजनीतिक संस्था है बल्कि यह अद्भुत संगठन भी है। पंचायत शब्द का प्रयोग हमें विलक्षण अतीत में ले जाता है, किन्तु पंचायती राज व्यवस्था वर्तमान काल में जिस रूप में कार्य कर रही है वह इस आधुनिक युग की नवीन रचना है। विगत लगभग 70 वर्षों से पंचायती राज व्यवस्था में अनेक सामयिक एवं पारिस्थितिकीय परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं परंतु 73वें संविधान संशोधन विधेयक के परिप्रेक्ष्य में पंचायती राज के माध्यम से एक अभिनव सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति का सूत्रपात हुए दो दशकों से अधिक का समय व्यतीत हो चुका है।

भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सजीव एवं साकार स्वरूप पंचायतीराज व्यवस्था स्वंतत्रता के पश्चात् ही दृष्टिगोचर हुआ लेकिन इसकी परिकल्पना स्वरूप एवं उसके माध्यम से ग्रामीण विकास की अवधारणा आजकल की बात नहीं अपितु इसका

इतिहास वैदिक काल से पूर्व का है। लोकतंत्र की मूलभूत मान्यता है कि सर्वोच्च शक्ति जनता में निहित होना चाहिए, इसलिये यह आवश्यक है कि सर्वोच्च शक्ति का अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण होना चाहिए जिससे अधिकाधिक व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से शासन कार्य में हिस्सा ले सकें।

इस संबंध में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं द्वारा यह कार्य अच्छे प्रकार से किया जा सकता है क्योंकि इन संस्थाओ का प्रबंधन नागरिको को स्वयं करना होता है, इसी कारण इन संस्थाओ को लोकतंत्र की आधारशिला कहा जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व पंचायती राज की त्रिस्तरीय रचना अर्थात् जिला परिषद, पंचायत समिति और ग्राम पंचायतों द्वारा किया जाता है। स्थानीय सरकार का संगठन विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत की व्याहारिक अभिव्यक्ति है।

स्थानीय सरकार का संगठन विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत पर आधारित है। इस रूप में इसके वे सभी लाभ दृष्टिगोचर होते हैं जो श्रम विभाजन की विशेषता समझे जाते हैं। यदि स्थानीय सरकार पर कार्यभार अधिक बढ़ जाएगा तो वह उसे कुशलता, सफलता और पर्याप्त विचार पूर्णता के साथ सम्पन्न नहीं कर सकेगी। एक स्थानीय संस्था को जब नागरिकों से सम्बन्धित कुछ निश्चित कार्य दिये जाते हैं तो वह अपनी पूरी शक्ति उन कार्यों के सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने में लगा देती है। अतः स्थानीय संस्थाएँ विकास कार्यक्रमो को सफल बनाने में उल्लेखनीय योगदान करती हैं।

संविधान के 13वें संशोधन के फलस्वरूप स्थानीय संस्थाओ को पूर्ण अधिकार सम्पन्न बनााया गया है। इस संविधान के अनुपालन में मध्यप्रदेश देश का पहला राज्य बना। 1994 से 2004 की अवधि में प्रदेश के सभी वर्गों को पंचायतों में भागीदारी का अवसर प्राप्त हुआ जो मध्यप्रदेश से राजनैतिक एवं सायोजित क्रांति की दस्तक है। भारत गाँवों का देश है।

ब्रिटिश काल में पंचायत अवश्य राज्य व्यवस्था के हाशिये पर चली गयी थी। स्वंतत्रता के उपरांत न्याय को अत्यधिक महत्व देते हुए लोकत़ंत्रात्मक जनसहभागिता को बढ़ावा दिया गया जिसमें महिलाओं एवं पुरुषों में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया गया। हमारे देश का आधा हिस्सा महिलाएं हैं अतः देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बगैर नहीं हो सकता। भारत में अनादिकाल से जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं ने पुरुषों के साथ मिलकर राष्ट्रीय जीवन में योगदान दिया है। पंचायतीराज की परिकल्पना स्वरूप एवं उसके माध्यम से ग्रामीण विकास की अवधारणा आजकल की बात नहीं अपितु इसका इतिहास वैदिक काल से भी पूर्व का है।

महात्मा गाँधी ने बताया कि कि असली भारत गाँवों में बसता है और ग्राम स्वराज के बिना भारत में स्वराज की कल्पना व्यर्थ है। पंचायती राज को विकास के दौर (1959–64), ठहराव का चरण (1964–1971), क्षय का दौर (1971–1977) से गुजरना पड़ा, इसके पुनरुद्धार का चरण 1978 से प्रारम्भ हुआ जिसका परिणाम 73वें संशोधन के रूप में सामने आया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 40 में यह निर्देश दिया गया है कि राज्य पंचायतों की स्थापना एवं उनके विकास पर ध्यान देगा। इसके पश्चात् प्रथम पंचवर्षीय योजना में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि विकास कार्यों के सम्पादन में पंचायतें एक अभिकर्ता (एजेंट) के रूप में कार्य करेंगी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी यह बल दिया गया कि पंचायतों को और अधिक अधिकार दिए जायें। ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन के कार्यक्रमों की योजना बनाना, बजट तैयार करना, ग्राम और सरकार के मध्य सम्बन्ध सेतु स्थापित करना तथा समुदायिक विकास कार्यों के लिए श्रमदान संगठित करने इत्यादि जैसी भूमिकाएँ उन्हें विशेष रूप से प्रदान की जा सकती हैं।

1952 में, देश में व्यापक स्तर पर सामुदायिक विकास योजना लागू की गई जिसमें सिद्धांततः यह स्वीकार कर लिया गया था कि ग्रामों की वास्तविक उन्नति तभी हो सकती है जब इस कार्यक्रम को जनता की समितियों के माध्यम से क्रियान्वित करवाया जाये, समय–समय पर किये गये मूल्यांकनों से यह स्पष्ट हो गया कि सामुदायिक विकास की यह योजना, जनता का कार्यक्रम तभी बन सकती है जब इसे जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में सौंप दिया जाये।

इसी समय अनुभव भी कर लिया गया था कि प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए जनता को और अधिक अधिकार दिये जाने की आवश्यकता है। इसी क्रम में योजना आयोग की योजना कार्यक्रम की समिति ने श्री बलवन्त राय मेहता जी की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल बनाया जिसे उक्त समस्या पर सर्वांगीण दृष्टि से विचार कर अपना सुझाव प्रस्तुत करने को कहा गया।

बलवंत राय मेहता समिति (1958) ने अनुशंसा की कि राजनीतिक सत्ता का उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर विकेन्द्रीकरण कर दिया जाये ताकि विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने एवं उन्हें कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व स्थानीय क्षेत्र के चुने हुए प्रतिनिधियों का हो जाये। बलवंत राय मेहता ने इस अनुशंसा को प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण का नाम दिया।

12 जनवरी, 1958 को राष्ट्रीय विकास परिषद ने, बलवन्त राय मेहता समिति की अभिशंसाओं को यथारूप स्वीकार कर लिया। स्थानीय स्वायत्त शासन की केन्द्रीय समिति ने भी अपनी स्वीकृति इन अनुशंसाओं को प्रदान कर दी है। मेहता समिति द्वारा प्रस्तुत अनुशंसाओं में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का जो प्रतिमान प्रस्तुत किया गया उसे कालान्तर में पंचायतीराज के नाम से जाना गया।

केन्द्र सरकार ने विकेन्द्रीकरण हेतु पंचायती राज की इस योजना को उक्त आदर्श प्रतिमान के रूप में स्वीकार तो कर लिया किन्तु यह प्रत्येक राज्य की इच्छा पर छोड़ दिया गया कि वे पंचायती राज को जिस रूप में चाहें अपने यहाँ अपना लें और स्थानीय स्वायत शासन चूंकि राज्यसूची का विषय है इसलिए केन्द्र सरकार ने तो सुझाव दिया किन्तु उसे अपनाने के लिए राज्यों के लिए आदर्श ढांचा तैयार किया गया। किन्तु इस प्रतिमान के कुछ मौलिक सिद्वान्त अपेक्षित स्वायत्तता में रखने का आग्रह राज्यों से किया गया।

एक स्थानीय संस्था को जब कुछ निश्चित सिविल कार्य दिये जाते हैं तो वह अपनी पूरी शक्ति उन कार्यों के सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने में लगा देती है। अतः स्थानीय संस्थाएँ विकास कार्यक्रमो को सफल बनाने में उल्लेखनीय योगदान करती हैं। संविधान के 13वें संशोधन के फलस्वरूप स्थानीय संस्थाओ को पूर्ण अधिकार सम्पन्न बनााया गया है।

भारत एक लोकतान्त्रिक गणराज्य है जिसके अंतर्गत संघात्मक शासन की त्रिस्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था एक महत्वपूर्ण अंग है। संघीय स्तर पर केन्द्रीय सरकार, प्रांतीय स्तर पर राज्य सरकार और स्थानीय स्तर पर स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था है। जनता के विकास का प्रमुख आयाम लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था है। विश्व की वृहद्तम लोकतांत्रिक व्यवस्था भारत की प्रमुख विशेषता है। लोकतंत्र मूलतः विकेन्द्रीकरण पर आधारित शासन व्यवस्था होती है। सच्चे लोकतन्त्र की स्थापना के लिए स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं अनिवार्य हैं। लोकतंत्र के वास्तविक परिणाम स्थानीय स्वशासन द्वारा ही जनता के लिए प्राप्त हो सकते है। स्थानीय स्वशासन केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के अधिनियम द्वारा निर्मित ऐसी शासकीय इकाई होती है, जिसमें जिला, नगर या ग्राम जैसे एक क्षेत्र की सीमाओं के भीतर प्रदत्त अधिकारों का उपयोग लोक कल्याण के लिए करते हैं।

गाँधीजी का विचार था कि भारत के सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए शासन का कार्य नीचे से ऊपर की ओर होना चाहिए। अर्थात इसका अर्थ है कि ग्रामीण विकास से सम्बन्धित नीतियों और योजनाओं का निर्धारण जन सामान्य के द्वारा किया जाये तथा राज्य और केन्द्र सरकार उन्ही को पूरा करने कें लिए आवश्यक सुविधाऐं प्रदान करे।

पंचायती राज प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का आधुनिक रूपान्तरण है। लोकतन्त्रीय राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज ही वह माध्यम है, जो शासन को जन सामान्य के द्वार पर लाता है। लोकतन्त्र की संकल्पना को अधिक यथार्थ में अस्तित्व प्रदान करने की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था एक ठोस कदम है।

पंचायत राज व्यवस्था में स्थानीय लोगों की स्थानीय कार्यों में अनवरत रूचि बनी रहती है क्योंकि वे अपनी स्थानीय पद्धति से समाधान कर सकते हैं। ये लोग अपने स्थानीय स्तर पर नियामकीय एवं विकासशील कार्यों का सम्पादन करने में सहायक सिद्ध होते है। अतः इस अर्थ में पंचायत राज सस्थाएँ स्थानीय जन सामान्य को शासन कार्य में भागीदारी की प्रक्रिया के माध्यम से लोगों को प्रत्यक्षतः एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वतः ही प्रदान करती रहती है। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त कर ये स्थानीय जन प्रतिनिधि ही कालान्तर में विधान सभा एवं संसद का प्रतिनिधित्व कर राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करते हैं।

पंचायती राज का आशय ग्रामीण स्तर से लेकर जिला स्तर तक के उन समस्त ग्रामीण संगठनों की सम्पूर्णता से है, जिनके मध्य समन्वय स्थापित करके ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों को प्रभावपूर्ण बनाया हैं। इस प्रकार पंचायती राज अवधारणा के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार है :–

1. स्थानीय स्तर पर शासन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
2. ग्रामीणों की सहभागिता पर ग्राम विकास की योजनाऐं बनाना।
3. अपने गाँव के विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्थानीय लोगों को जिम्मेदारी का आभास कराना।
4. ग्राम विकास योजनाओं कार्यक्रमों, नियोजन आदि से गाँव वालों को लाभान्वित करना।
5. शक्तियों का विकेन्द्रीकरण 'केन्द्र से स्थानीय स्तर तक' करना।
6. ग्राम सभा तथा पंचायतों को सशक्त करने की दिशा में संवैधानिक एवं लोकतान्त्रिक प्रक्रिया की शुरूआत करना।

जनता को आधुनिकता की और प्रेरित करने के लिए तथा उनके रहन–सहन के स्तर को सुधारने के लिऐ नियोजित परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई इसलिए भारत में "पंचायती राज" व्यवस्था को लागू किया गया। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पंचायती राज की आवश्यकता निम्न बिन्दुओं से दृष्टिगोचर होती है :–

1. जनता की सेवा :– स्थानीय निवासियों की दैनिक समस्याओं को हल करने के लिए ऐसे प्रशासन की आवश्यकता होती है जो आम जनता के नजदीक हो एवं छोटी–छोटी समस्याओं से परिचित हो, ताकि त्वरित हल निकाल सके। यह कार्य पंचायती राज से ही सम्भव है।

2. प्रजातन्त्र को बढ़ावा :– स्थानीय प्रशासन में अधिक से अधिक लोगों को प्रशासनिक कार्यों में भाग लेने का अवसर प्राप्त होता है। आम नागरिक विभिन्न प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते है, जिससे उन्हें स्वतः ही सभी प्रशासनिक कार्यो का प्रशिक्षण प्राप्त होता जाता है। अतः ये संस्थाऐं प्रजातन्त्र की जड़ों को गहरी कर देती है।

3. संस्कृति एवं सभ्यता का सृजन :– स्थानीय संस्थाओं को देश की सभ्यता एवं संस्कृति का रक्षक माना जाता है। क्योंकि ये संस्थाऐं सदियों से आपसी प्रेमभाव उत्पन्न करती रही है तथा अलग–अलग स्थानों की विशेषताओं को सहेजकर रखने में इनका बड़ा योगदान रहा है। इन संस्थाओं के द्वारा नागरिकों में कर्तव्य और जिम्मेदारियों के प्रति पालन की भावना उत्पन्न होती है।

4. स्वतन्त्र राष्ट्र की शक्ति का आधार :– विश्व के अनेक विद्वानों ने स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं की प्रशंसा करते हुए लोकतन्त्र के हित में इनके अधिकाधिक विकास का समर्थन किया है। किसी भी देश की कार्यकुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि उस देश में स्थानीय स्तर पर कार्य कर रही संस्थाऐं कितनी समर्थ एवं कुशल है। एक स्थिर तथा सुदृढ़ राजनीति पर आधारित प्रजातन्त्र का विकास स्वस्थ व कुशल स्थानीय संस्थाओं से होता है। स्थानीय संस्थाऐं स्वतन्त्रता को लोगों तक पहुंचाती हैं।

5. पंच परमेश्वर की मान्यता को जीवित करने के लिए :– पंच परमेश्वर की मान्यता हमारी आत्मा है। इस मान्यता के आधार पर यह माना गया है कि पंच ईश्वरीय सदस्य है। वह हमेशा न्याय देता है। हमारे देश के जटिल से जटिल विवाद पंचायत के माध्यम से निपटाये जा सकते है। नवीन राजनीतिक व्यवस्था में भी हमारे नेतृत्व पंच परमेश्वर की मान्यता को पुर्नजीवित करते हुए पंचायती राज योजना को लागु किया गया

6. नागरिकों के विचारों एवं दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिए :– स्वतन्त्रता के बाद देश में साक्षरता का प्रतिशत तेजी से बढ़ा लेकिन ग्रामीण जनता में साक्षरता का प्रसार कम ही रहा। अतः ग्रामीणों में अशिक्षा, दरिद्रता, निम्न जीवन स्तर होने के कारण ही बाल विवाह तथा उच्च जन्मदर की समस्या है जो राष्ट्र के लिए हानिप्रद है। अतः उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की संस्था के रूप में पंचायती राज को लागू किया गया

7. सत्ता सौंपने के लिए :– गाँव की संस्था ही गाँवो की समस्या अच्छे से जानती है व उन्हें हल कर सकती है। यही कारण है की महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश, हरियाणा, त्रिपुरा, और पंजाब राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं को सत्ता और दायित्वों को सौंपने की एक योजना तैयार की गई ताकि ये आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाऐं तैयार कर सके और उन पर अमल कर सके।

8. राजनीतिक चेतना में वृद्धि के लिए :– राजनीतिक चेतना में वृद्धि लाने के लिए भी पंचायती राज की आवश्यकता महसूस की गई। ग्रामीण जनता का दृष्टिकोण राजनैतिक उदासीनता का है जो प्रजातांत्रिक व्यवस्था की सफलता में बाधक है। प्रजातंत्र तभी सफल हो सकता है जब सभी लोग राजनीतिक दृष्टि से सचेत हो। ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनता मे राजनीतिक चेतना को विकसित करने की दृष्टि से पंचायती राज योजना को लागु किया गया है।

9. प्रशासनिक सम्बद्धता एवं सुविधा के लिए :– भारत जैसे विविधता वाले देश में केन्द्र या राज्यों की राजधानियों में बैठकर समुचित प्रशासन एक दुष्कर कार्य

है। ग्रामीण जनता को राजनीतिक शक्ति के साथ जब तक सम्बद्ध नहीं किया जाता तब तक उन्हें समुचित लाभ नहीं मिलेगा। सुदूर अंचल निवासियों को प्रशासन से जोड़ने हेतु पंचायत राज योजना लागु की गई। ग्रामीण समुदाय को जनतांत्रिक प्रशासन से सम्बद्ध करने के लिए देश को राज्य में, राज्य को जिले मे जिलों को तहसीलों में, तहसील को विकास खण्डों में तथा विकास खण्डों को गाँवों में विभाजित किया गया और इस तरह देश में त्रिस्तरीय पंचायतों की व्यवस्था की गई।

10. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए :– लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में शक्ति का मूल स्त्रोत जनता होती है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन व्यवस्था में भाग लेती है। देश में जिन लोगों ने तन, मन, धन से स्वाधीनता सग्रांम में भाग लिया था, उन्हें शासन संचालन में भागीदार बनाने के उद्देश्य से शासकीय इकाईयों को छोटी–छोटी इकाईयों में बाँट कर उन्हें कुछ अधिकार एवं कर्तव्य सौंपे हैं।

पंचायती राज व्यवस्था का महत्व निम्न बातों से स्पष्ट है –

1. पंचायतें लोगों में सामुदायिक चिन्तन, सहयोग व सहकारिता को बढ़ावा देती हैं।
2. इनसे स्थानीय संसाधनो का व्यवस्थित उपयोग सम्भव होता है।
3. इनकी प्रभावशीलता से जन समस्याओं का निपटारा आसान होता है।
4. ये लोकतंत्र में जागरूकता व जिम्मेदार नागरिक बनाने में पाठशाला के समान कार्य करती हैं।
5. इनसे सरकारी मशीनरी को अधिक जवाबदेह बनाना सम्भव है।
6. ये संस्कृति एवं सभ्यता की पोषक होती है।
7. इनसे लोगों को विभिन्न विकास व प्रशासनिक गतिविधियों में सहभागिता का अवसर मिलता है।
8. ये सामाजिक सुधारो को गति देने मे सहायक है।
9. पंचायतें स्थानीय सूचना केन्द्र का कार्य भी करती है।

इस प्रकार समुदाय में पुननिर्माण तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था को गतिशील बनाने में पंचायती राज योजना का अपना विशिष्ट स्थान है। गाँव के उत्थान से ही देश का उत्थान सम्भव है। ग्राम पंचायत गाँव का उत्थान करते हुए देश के उत्थान में सहायक है। ग्राम पंचायतें समुदाय को आत्मनिर्भर बनाती है। इससे सरकार का भार कम होता है, ग्रामीण जनता को संगठित कर उनमें राजनीतिक चेतना विकसित करती है तथा पंचायती राज ग्रामीण क्षेत्रो के समुचित प्रशासन में भी सहायक है।

संदर्भ :–

- भावे, आचार्य विनोबा, ''ग्राम पंचायत – ऑफ माई कन्सेप्शन'' इन आर्टिकल इन दी नॉर्थन इंडिया पत्रिका, सितम्बर 11.1959.
- भारत शासन; न्यायपालिका पर अध्ययन दल की रिपोर्ट, अप्रैल 1962.
- धर्मपाल, पंचायत राज एवं भारतीय राजनीति, पृष्ठ संख्या 93
- जाधव आर.वी. (1964); इवोल्यूशन ऑफ पंचायती राज इन इण्डिया, पब्लिकेशन नं. 2 ऑफ दि इन्स्टीट्यूट ऑफ इकोनॉमिक रिसर्च, धारवाड़ संदर्भित विलेज, गवर्नमेन्ट इन ब्रिटिश इंडिया, पृष्ठ 18 द्वारा मैथाई जॉन टी फिशर अनविक लि. लंदन 1915.
- मिश्रा डॉ. नन्दलाल, "नई पंचायतीराज व्यवस्था और ग्रामीण विकास", (ग्राम स्वराज्य के विशेष संदर्भ में) बी. एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा, 2001
- सिंह नीमा, पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण, विद्या विहार, नई दिल्ली
- सिंह विजय करण, "पंचायती राज व्यवस्था", आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2005
- स्वामी डॉ. एच. आर., डॉ. बी. पी. गुप्ता, "ग्रामीण विकास व सहकारिता", रमेश बुक डिपो, 2005–2006,

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन

श्रीमती धरणी राय
शोधार्थी (पी.एच.डी), स्कूल ऑफ एजुकेशन, मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर
डॉ. नाजिया आबिद खान
प्रिंसिपल (बी.एड.), संदीपनी एकेडमी, अचौटी, मुरमुंडा, जिला–दुर्ग

प्रस्तावना – (Introduction) :- विशिष्ट विद्यालय से तात्पर्य ऐसा विद्यालय जहॉ पर शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सवेगात्मक तथा बौद्धिक विकास से कमजोर विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। ऐसे विद्यालय में विधार्थी को शिक्षित करने एवं उनके ज्ञान का विस्तार करने के लिए प्रशिक्षित शिक्षको की आवश्यकता होती हैं, क्योकि एक प्रशिक्षित शिक्षक अपने कक्षा में उपस्थित विद्यार्थी का उनकी रूचि और मानसिक क्षमता के अनुसार बौद्धिक विकास कर सकता हैं, उतना एक अप्रशिक्षित शिक्षक सही रूप से अपनी कक्षा का संचालन नही कर पाता हैं। वि ाश्ट विद्यालय में विद्यार्थियो के प्रति विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती हैं क्योंकि वे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक रूप से कमजोर बालक होते हैं इसलिए शिक्षक का प्रशिक्षित होना आव यक हैं जिससे कि वे अपनी कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी को अपने ज्ञान से लाभवित करके उन्हे समाज के लायक बना सके।

शिक्षा मानव विकास के लिए अति आवश्यक हैं। विकास को बढ़ावा देने के लिए ज्ञान–विज्ञान, कौशल, व्यक्तित्व निर्माण आदि का प्रशिक्षण विद्यार्थियों को दिया जाता है। किसी भी राष्ट्र का विकास स्तर उसकी शिक्षा व्यवस्था पर ही निर्भर करता है। शिक्षा ही बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास का आधार होती है। वर्तमान समय शिक्षा के लिए स्वर्णिम युग कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। विश्व के लगभग सभी देश अपनी अर्थव्यवस्था में शिक्षा को सबसे अधिक महत्व देते है। शिक्षा मनुष्य के विकास की पूर्णता को अभिव्यक्त करती हैं, शिक्षा एक साधन हैं जो व्यक्ति के आंतरिक गुणों को पहचानने की क्षमता का विकास करती है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन मे ऐसा परिवर्तन लाती हैं जिससे वह निरन्तर उत्कृष्टता की ओर अग्रसर हो सकता है।

शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति के जीवन में मूल्यों का महत्व बढ जाता हैं, और वह अपने मूल्यों के आधार पर ही अपने जीवन में आगे बढता हैं तथा अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयास करता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में मूल्यों का अपना ही स्थान होता हैं, और वह उसी के आधार पर यह निश्चय करता हैं कि उसे किस प्रकार से जीवन मे आगे बढना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अपना अलग–अलग मूल्य होता है, और वह उसी के अनुसार अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे कार्य करता चला जाता है। इस प्रकार मूल्यो का प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। मूल्यों के बगैर व्यक्ति के जीवन की कल्पना ही नही की जा सकती हैं, इन मूल्यों को शिक्षा के द्वारा ही विकसित करके उन्हे सही दिशा प्रदान किया जा सकता है।

''शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रशिक्षण से हैं, जो अच्छी आदतों के द्वारा बालक के नैतिकता का विकास करती है।'' **–प्लेटो**

''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।'' **–विवेकानन्द**

मूल्य :– मूल्य के निर्धारक धर्म तथा संस्कृति हैं और उनका अर्थापन दर्शन कहलाता है। इस प्रकार मूल्यों की पृष्ठभूमि दर्शन, धर्म एवं संस्कृति है,प्रत्येक दर्शन मूल्यों का अर्थापन ढंग से करता है। समाज के अपने मूल्य होते है।

मूल्यों का शाब्दिक अर्थ :– शाब्दिक अर्थ में मूल्य व्यक्ति के गुणों को महत्व देता हैं, जिससे व्यक्ति का महत्व बढ़ता हैं और समाज में आदर–सम्मान होता हैं। वह गुण अथवा विशेषता आन्तरिक अथवा बाह्य हो सकती है। मूल्यों से व्यक्ति की उपयोगिता एवं महत्व बढ़ता है। व्यवहारिक दृष्टि से मनुष्य की इच्छाओं की संतुष्टि को 'मूल्य' की संज्ञा दी जाती है।

मूल्यों का दार्शनिक अर्थ :– मूल्यों के दार्शनिक अर्थापन में व्यक्ति को महत्व नही दिया जाता है, अपितु विचारों एवं दृष्टिकोणों को प्राथमिकता दी जाती हैं। एक वस्तु किसी व्यक्ति के लिए उपयोगी हो सकती है, परंतु किसी अन्य व्यक्ति के लिए नही, उस वस्तु की

कोई भी उपयोगिता नही हैं। उसके लिए उस वस्तु का कोई मूल्य नही होगा। इस प्रकार दार्शनिक विचार एवं दृष्टिकोण का मूल्य से सीधा संबंध होता हैं।दार्शनिक विचारधारा का स्थान, समय एवं परिस्थिति का प्रभाव होता हैं। इसलिए जो विचार एवं दृष्टिकोण परिस्थिति के अनुरूप तथा उपयोगी हो उसे मूल्य कहते है।

मूल्यों का सामाजिक अर्थ :– मूल्यों का विकास सामाजिक स्वरूप के अंतर्गत धीरे–धीरे समाज के सदस्यों की अतः प्रक्रिया से होता है। अपनी जीविका के लिए समस्याओं का सामना करना होता हैं। समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ उसे सहयोग करना तथा उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना होता है। अपनी संस्कृति के अनुरूप व्यवहार करना होता हैं इस प्रकार बिना सामाजिक मूल्यों के सामाजिक प्रणाली में शान्ति का अनुरक्षण करना सम्भत नही होगा। मानवी अनुभवों एवं अस्तित्व से मूल्यों की प्राप्ति की जाती है, जिन्हें सामाजिक 'मानक' भी कहते है।

मूल्यमीमांसा के अनुसार मूल्यों का अर्थ :– मूल्यमीमांसा के अनुसार मूल्यों को मानदण्ड तथा निर्णायक कहते है। यह मानदण्ड भावात्मक तथा बौद्धिक होते है। इनका क्षेत्र मनोवैज्ञानिक नही है, अपितु दार्शनिक अधिक है। मूल्यों के आधार पर ज्ञान एवं अनुभवों की सार्थकता की परख की जाती है।

मूल्यों संबंधी भारतीय अवधारणा :– 'ज्ञान–हीन' मनुष्य भी पशु ही होता है। अतः मनुष्य का अन्य प्राणियों से भिन्नता मूलक लक्षण 'ज्ञान' हुआ और ज्ञान के प्रकाश में की गई क्रियाएँ ही मानवीय क्रियाएँ हुई और इस ज्ञान के प्रकाश में की गइ 'इच्छातुष्टि' या लक्ष्य प्राप्ति 'मूल्य' कहलाएगी। मनवोचित जीवन–लक्ष्यों को ही हमारे यहाँ मूल्य की संज्ञा दी गई है। यही कारण हैं कि भारत में भारतीय–मूल्यों के लिए 'पुरूषार्थ' (मनुष्य के लिए वांछनीय) शब्द का प्रयोग किया है।

मूल्यों संबंधी पाश्चात्य अवधारणा :– मूल्य वह हैं, जिसका महत्व हैं, जिसके पाने के लिए व्यक्ति और समाज चेष्टा करते हैं, जिसके लिए वे जीवित रहते हैं और जिसके लिए वे बड़े से बड़ा त्याग कर सकते है।

''मूल्य वह हैं जो मानव इच्छाओं की तुष्टि करे।'' **–अरबन डब्लू.एफ.**

पाश्चात्य विचारकों मे 'क्यूबर' ने मूल्यों को वैयक्तिक विचार माना है। 'युग तथा मेक' ने भी मूल्यों को उचित तथा महत्वपूर्ण होने के कारण व्यापक तथा अचेत धारणाएँ कहा है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण :– पारसन्स के अनुसार मूल्य किसी भी समाज व्यवस्था के विभिन्न ओरिएन्टेशन में से एक के चयन का मापदण्ड है। काने ने इसे और स्पष्ट कर मूल्यों को वे आदर्श, विश्वास तथा मानक माना हैं, जिन्हें समाज या समाज का बहुमत ग्रहण किये होता है। लूमिस तथा लूमिस ने मूल्य को मानस – व्यवहार का निर्धारक बताया, जो कि वैज्ञानिक लक्ष्यों में से लक्ष्य – चयन के मानदण्ड का काम करता है।

उपर्यूक्त परिभाषाओं के अनुसार :– मूल्य वे मानदण्ड हैं जो कि किसी समाज में उपलब्ध वैकल्पिक साधन तथा लक्ष्यों में से उपर्युक्त साधन तथा लक्ष्य चुनने में सहायता करते हैं तथा मानव व्यवहार का निर्धारण करते है।

मूल्य शिक्षा का महत्व :– शिक्षा के मूल्यों का संबंध उन क्रियाओं से होती हैं जो अच्छी उपयोगी तथा मूल्यवान होती हैं। एडमस के अनुसार शिक्षा द्वितीय प्रक्रिया मानते हैं– एक पक्ष शिक्षक तथा दूसरा पक्ष छात्र होता हैं। शिक्षा विभिन्न प्रकार के समूहों तथा प्रविधियों का उपयोग करके छात्रों मे अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाता है। वह जिनको उपयोगी तथा मूल्यवान समझता है उनकी सहायता से समुचित वातावरण का सृजन करता है। छात्र उन्हें मूल्यवान समझता हैं तथा उनमें क्रियाशील होता है। शिक्षक एवं छात्र उन्ही क्रियाओं में सहभागी होते हैं जो शिक्षा की दृष्टि से उपयोगी एवं मूल्यवान होते है।

संबंधित शोध अध्ययन (Related Studies) :-

मृदुला शर्मा (1995) न ''विचारधारा मूल्य और शिक्षा के पारस्परिक संबंध'' का अध्ययन कर पाया कि, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विचारधारा, मूल्य और शिक्षा को रखकर इनके परस्पर संबंधों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। विचारधाराओं की एक विशेषता यह होती है कि वह बहुत सारे वस्तुओं के बारे में बहुत अधिक स्पष्ट होती है। समाज अपने विशेष सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों से ही जाना जाता है। ये मूल्य उस समाज के सदस्यों के जीवन में आचरण के सामाजिक सांस्कृति मानदण्डों के आधार पर बनते है। शिक्षा से

व्यक्ति के चरित्र और व्यक्तित्व का विकास करने के अलावा असके भौतिक कल्याण की आशा भी की जाती हैं। जीवन संबंधी विभिन्न दृष्टिकोण जैसे– भौतिकवादी, उपयोगितावादी, मानवतावादी, अलंकारिक दृष्टिकोण शिक्षा को अलग–अलग महत्व देते है। अतः विचारधारा मूल्य और शिक्षा परस्पर संबंध प्रकिया के अधीन है और समग्रता के साथ ही इनका अस्तित्व है। **हर्बल मोहोड और मधुलिका एस. पटेल (2005)** ने ''विज्ञान शिक्षा और वैज्ञानिक मूल्य'' का अध्ययन कर यह पाया कि, वैज्ञानिक मूल्य आधारित शिक्षा के छोटे–छोटे पैकेज तैयार कर उनके उपयोग की व्यूह रचना बनानी है। विद्या के वैज्ञानिक मूल्यों के विकास हेतु अधिकाधिक कार्यक्रमों की आयोजन करना चाहिए जैसे – सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेल प्रदर्शनीय, संगीत, निबंध स्पर्धा, चित्रकला स्पर्धा आदि। **सुमित्रा सिंह (2005)** ने ''सामाजिक मूल्यों संस्थाओं और परम्पराओं पर भूममंडलीकरण का प्रभाव'' का अध्ययन कर यह पाया कि, वैश्वीकरण ने थोडे से प्रभुता संपंन्न एवं अति उच्च वर्ग के प्रत्येक स्तर में परिवर्तन करने सामान्य वर्ग एवं अथवा समाज के दृष्टिकोण को बदलने में बहुत हद तक सॅलता जार्द है। कम से कम जन सामानय के लिए भविष्य की एक ऐसी कल्पना विकसित की है। जिसके परिणाम स्वरूप कतिमय विरोधाभास तो रहेगें। परन्तु उसके अधिकतम लाभ भी संभवतः सर्वाधिक सुरक्षित रह सकेंगे। **मधु साहनी (2009)** ने ''माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन'' का अध्ययन कर यह पाया कि, सभी विद्यार्थियों के सनात्मक मूल्य सर्वोच्च एवं धार्मिक मूल्य निम्नतम है तथा कलात्मक मूल्य, शकित मूल्य एवे ज्ञानात्मक मूल्यों के संदर्भ में लिंग के आधार पर विभिन्नता पाई जाती हैं। **गोपाल प्रसाद नायक (2009)** ने ''मूल्यों के विकास में शिक्षण संस्थानों की भूमिका'' का अध्ययन कर यह पाया कि, मूल्यों सीख तथा आदर्श प्रस्तुति में घनिष्ठ संबंध है। एक बार दिखाना–सौ बार कहने के बराबर माना जाता है।शिक्षक द्वारा प्रस्तुत आदर्श प्रस्तुति से छात्रों में मूल्य में आत्मसात सहज ढंग से हो सकता है। क्योंकि बालक के अनुकरण की मनोवृत्ति जन्मजात होती हैं, इस प्रकार स्पष्ट हैं कि मूल्यों की विकास में शिक्षण संस्थानों की अहम भूमिका है। **सुमित्रा सिंह,मैथिलीरमण प्रसाद सिंह (2009)** ने ''वर्तमान शिक्षा के मूल्य संकंट क्यों कारण एवं सुझाव'' का अध्ययन कर यह पाया कि, यह सर्वविदित हैं कि जब–जब मूल्यों से जुड़ने का प्रयास किसी समुदाय या समाज के व्यक्ति ने किया वह सामान्य मनुष्य की परिधि से उठकर महामानव की श्रेणी में जा पहुंचा तथा समाज एवं विश्व में नई दिशा प्राप्त की। संपूर्ण विश्व को इन महामानवों पर गर्व होना चाहिए। ऐसा महसूस कर लेने पर ही मूल्यों पर संकंट के छाए बादल छंट सकते है।

अध्ययन की आवश्यकता :– मूल्य शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हुए शिक्षा आयोग ने मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका को स्पष्ट करते हुए लिखा है। विद्यालय का वातावरण अध्यापको का व्यक्तित्व एवं व्यवहार तथा विधालय के उपलब्ध भौतिक सुविधाएं छात्रों को मूल्योंनमुख बनाने में विशेष भूमिका निभाती है। इस बात पर बल देना चाहेगें कि विभिन्न मूल्यों के प्रति जाग्रत विद्यालय संपूर्ण पाठ्यक्रम एवं समस्त गतिविधियों को प्रभावित करे । मूल्यों के विकास के अभाव में मनुष्य चाहे जितना सुख सुविधा के साधन जुटा ले समृद्धि एवं वैभव अर्जित कर ले समाज में सुख एवं शांति का समावेश नही हो सकता। यही कारण हैं कि आज भौतिक प्रगति के बावजूद देश को अराजकता की स्थिति से गुजरना पड़ रहा हैं वर्तमान समय में समाज में भ्रष्टाचार बढ़ा है। इन सबसे ऐसा लगता हैं कि समाज में मूल्य विरोहित होते जा रहे है। अतः शिक्षा द्वारा यह प्रयास किया जाना चाहिए कि वांछित उच्चतम मूल्यों का विकास हो सके, किन्तु शिक्षा द्वारा ऐसा प्रतीत नही हो रहा है इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986मे इस बात पर चिंता प्रकट की गई है।

''जीवन के लिए आवश्यक मूल्यों का घात हो रहा है और मूल्यों पर से ही लोगों का विश्वास उठता जा रहा हें शिक्षाक्रम में ऐसे परिवर्तन की जरूरत हैं जिसमें नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त माध्यम बन सकें।''

प्रस्तुत अध्ययन मे हमने विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया हैं।

व्यक्तिगत मूल्य :– व्यक्तिगत मूल्यों में धार्मिक विश्वास, नैतिक अभिवृत्ति जीवनदर्शन राजनैतिक आदर्श सम्मिलित होते हैं मूल्य जीवन के निर्देशक सिद्धांत हैं जो व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक कल्याण व समायोजन और संस्कृति के द्वारा संचालित होता है। व्यक्तिगत मूल्यों कें अंतगर्त 10 मूल्य सम्मिलित किये गए है।

1. धार्मिक मूल्य 2.सामाजिक मूल्य 3. प्रजातांत्रिक मूल्य 4. सौंदर्यात्मक मूल्य 5. आर्थिक मूल्य 6. ज्ञानात्मक मूल्य 7. नैतिक मूल्य 8. शक्ति मूल्य 9. परिवारिक स्तर मूल्य 10. स्वास्थ्य मूल्य

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना।
2. विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के परिवारिक स्तर मूल्यों का अध्ययन करना।
3. विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के स्वास्थ्य मूल्यों का अध्ययन करना।
4. विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के प्रजातांत्रिके मूल्यों का अध्ययन करना।?

अध्ययन की परिकल्पनाएँ :–

1. विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के नैतिक मूल्यों में अतंर नही पाया जायेगा।
2. विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के परिवारिक स्तर मूल्यों में अतंर नही पाया जायेगा।
3. विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के स्वास्थ्य मूल्यों में अतंर नही पाया जायेगा।
4. विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के प्रजातांत्रिक मूल्यों में अतंर नही पाया जायेगा।

परिसीमन :– प्रस्तुत अध्ययन में विकलांग विद्यालय के प्रशिक्षित शिक्षक को सम्मिलित किया गया है तथा अध्ययन में विकलांग विद्यालय के अप्रशिक्षित शिक्षक को सम्मिलित किया गया है। सभी शिक्षक विशिष्ट विद्यालय में कार्यरत हैं।

अध्ययन विधि :– प्रस्तुत अध्ययन वर्णानात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

चर –

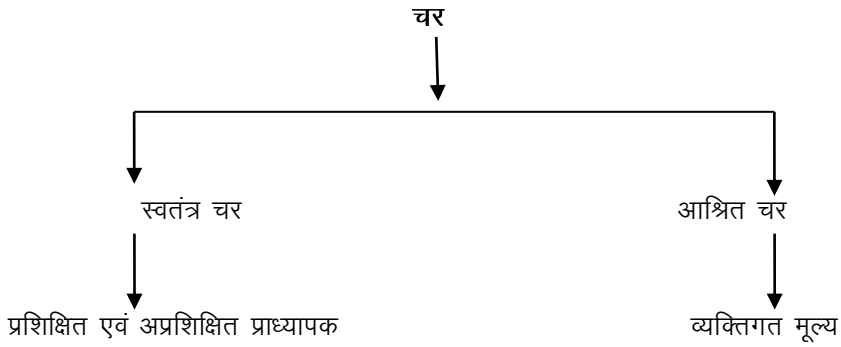

न्यादर्श – प्रस्तुत अध्ययन में हमने विकलांग विद्यालय के 30 प्रशिक्षित एवं 30 अप्रशिक्षित ि ाक्षक का चयन उद्देश्य पूर्ण न्यायदर्शन विधि के द्वारा किया गया है।

उपकरण का विवरण :– प्रत्येक अनुसंधान के लिए आंकड़ो के संकलन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की उचित यंत्रों की आवश्यकता होती हैं, यही उपकरण कहलाते है। विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आंकड़ो के संकलन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के उपकरण होते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनुसंधान कर्ता इसका प्रयोग करता है। प्रस्तुत शोध में विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्राध्यापकों के व्यक्तिगत मूल्यों संबंधी जानकारी प्राप्त करने हेतू डॉ. जी.पी.शैरी एवं डॉ. आर.पी. वर्मा द्वारा निर्मित व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। प्रयुक्त मापनी में 10 आयामों से संबंधित – कथन सम्मिलित है, जिनमें तीन बिंदु पैमाने के आधार पर फलांकन किया गया है। 0 से 2 तक अंक वितरित है। इस शोध उपकरण के द्वारा व्यक्तित्व मूल्य के अंतर्गत 10 प्रकार कें मूल्यों का मापन किया जा सकता है।प्रत्येक मूल्य को 5 स्तरो पर विभाजित किया गया है।

A	B	C	D	E
सबसे ज्यादा	औसत से ज्यादा	औसत	औसत से कम	सबसे कम

प्रदत्तों का विश्लेषण :–

तालिका क्र. 01– विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के व्यक्तिगत मूल्यों कें प्राप्तांको का प्रतिशत।

Value Grade	**नैतिक मूल्य**		**परिवारिक मूल्य**		**स्वास्थ्य मूल्य**		**प्रजातांत्रिक मूल्य**	
	T.T.	**Non T.T.**	**T.T.**	**Non T.T.**	**T.T.**	**Non T.T.**	**T.T.**	**Non T.T.**
A	3.3%	3.3%	3.3%	3.3%	3.3%	6.6%	3.3%	3.3%
B	3.3%	6.6%	10%	6.6%	3.3%	6.6%	6.6%	3.3%
C	6.6%	23.34%	6.6%	20%	6.6%	10%	3.3%	3.3%
D	20%	50%	16.6%	36.66%	13.34%	43.33%	40%	23.34%
E	66.67%	16.67%	63.3%	33.34%	73.33%	33.34%	46.66%	66.67%

तालिका क्र. 02 (क) – विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के नैतिक मूल्य का सांख्यिकीय विश्लेषण।

Grade → Stages ↓	A	B	C	D	E
T.T.	1	1	2	6	20
Non-T.T.	1	2	7	15	5

X^2 =15.97
df = 4

T.T. = प्रशिक्षित **शिक्षक** Non-T.T. = अप्रशिक्षित शिक्षक

विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा प्राप्त प्रदत्तों के पांच स्तरों A,B,C,D,E में विभाजित किया गया। प्राप्त आवृत्तियों में T.T. शिक्षकों में सबसे अधिक आवृत्तियां **(E)** सबसे कम स्तर पर 20 प्राप्त हुई एवं Non T.T. समूह में सबसे अधिक आवृत्तियां औसत स्तर से कम **(D)** में 15 प्राप्त हुई। परिकल्पना के सत्यापन हेतु काई वर्ग ($\mathbf{X^2}$) के मान की गणना की गई, प्राप्त मान **15.97** रहा। स्वतंत्रता की कोटि **(df) = 4** के आधार पर 0.05 स्तर पर तालिका मान 9.48 से गणना द्वारा प्राप्त मान अधिक रहा। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया।

तालिका क्र.03 (ख) – विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के पारिवारिक स्तर मूल्य का सांख्यिकीय विश्लेषण।

Stages / Grade → ↓	A	B	C	D	E
T.T.	1	3	2	5	19
Non-T.T.	1	2	6	11	10

X^2 =7.25
df = 4

T.T. = प्रशिक्षित शिक्षक Non-T.T. = अप्रशिक्षित शिक्षक

प्राप्त आवृत्तियों में T.T. शिक्षकों में सबसे अधिक आवृत्तियां **(E)** सबसे कम स्तर पर 19 प्राप्त हुई एवं Non T.T. समूह में सबसे अधिक आवृत्तियां **(D)** में 11 प्राप्त हुई। परिकल्पना के सत्यापन हेतु काई वर्ग ($\mathbf{X^2}$) के मान की गणना की गई, प्राप्त मान **7.25** रहा। स्वतंत्रता की कोटि **(df) = 4** के आधार पर 0.05 स्तर पर तालिका मान 9.48 से गणना द्वारा प्राप्त मान कम रहा। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के पारिवारिक स्तर मूल्य में सार्थक अंतर नही पाया गया।

तालिका क्र. 04 (च) – विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अशिक्षित शिक्षकों के स्वास्थ्य मूल्य का सांख्यिकीय विश्लेषण।

Stages / Grade → ↓	A	B	C	D	E
T.T.	1	1	2	4	22
Non-T.T.	2	2	3	13	10

X^2 =10.13
df = 4

T.T. = प्रशिक्षित शिक्षक Non-T.T. = अप्रशिक्षित शिक्षक

प्राप्त आवृत्तियों में T.T. शिक्षकों में सबसे अधिक आवृत्तियां **(E)** सबसे कम स्तर पर 22 प्राप्त हुई एवं Non T.T. समूह में सबसे अधिक आवृत्तियां **(D)** में 13 प्राप्त हुई। परिकल्पना के सत्यापन हेतु काई वर्ग ($\mathbf{X^2}$) के मान की गणना की गई, प्राप्त मान **10.13** रहा। स्वतंत्रता की कोटि **(df) = 4** के आधार पर 0.05 स्तर पर तालिका मान 9.48 से गणना द्वारा प्राप्त मान अधिक रहा। अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के स्वास्थ्य मूल्य में सार्थक अंतर पाया गया।

तालिका क्र.05 (छ) – विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अशिक्षित शिक्षकों के प्रजातांत्रिक मूल्य का सांख्यिकीय विश्लेषण।

Stages / Grade → ↓	A	B	C	D	E
T.T.	1	2	1	12	14
Non-T.T.	1	1	1	7	20

X^2 =2.71
df = 4

T.T. = प्रशिक्षित शिक्षक Non-T.T. = अप्रशिक्षित शिक्षक

प्राप्त आवृत्तियों में T.T. शिक्षकों में सबसे अधिक आवृत्तियां **(E)** सबसे कम स्तर पर 14 प्राप्त हुई एवं Non T.T. समूह में सबसे अधिक आवृत्तियां **(E)** में 20 प्राप्त हुई। परिकल्पना के सत्यापन हेतु काई वर्ग (X^2) के मान की गणना की गई, प्राप्त मान **2.71** रहा। स्वतंत्रता की कोटि **(df) = 4** के आधार पर 0.05 स्तर पर तालिका मान 9.48 से गणना द्वारा प्राप्त मान कम रहा। अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के प्रजातांत्रिक मूल्य में सार्थक अंतर नही पाया गया।

परिणाम एवं व्याख्या :–

1. विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के नैतिक मूल्य में विभिन्न स्तरों पर सार्थक अंतर पाया गया। विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित शिक्षकों के नैतिक मूल्य की सबसे अधिक आवृत्तिया (E) स्तर पर एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों में नैतिक मूल्य की सबसे अधिक आवृत्तिया सबसे (D) स्तर पर प्राप्त हुआ है। अतः विशिष्ट विद्यालय में अप्रशिक्षित की तुलना में प्रशिक्षित शिक्षकों में नैतिक मूल्य कम है।

2. विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के परिवारिक स्तर मूल्य में विभिन्न स्तरों पर सार्थक अंतर नही पाया गया। विकलांग विद्यालय में प्रशिक्षित शिक्षकों के परिवारिक मूल्य की सबसे अधिक आवृत्तिया (E) स्तर पर अप्रशिक्षित शिक्षकों में परिवारिक स्तर मूल्य की सबसे अधिक आवृत्तिया सबसे (D) स्तर पर प्राप्त हुआ है। अतः विशिष्ट विद्यालय में अप्रशिक्षित की तुलना में विकलांग विद्यालय के प्रशिक्षित शिक्षकों में परिवारिक स्तर मूल्य कम है, जो कि सार्थक महत्व का नही हैं।

3. विकलांग विद्यालय के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के स्वास्थ्य मूल्य में विभिन्न स्तरों पर सार्थक अंतर पाया गया। विकलांग विद्यालय के प्रशिक्षित शिक्षकों के स्वास्थ्य मूल्य की सबसे अधिक आवृत्तिया (E) स्तर पर एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों में स्वास्थ्य मूल्य की सबसे अधिक आवृत्तिया सबसे (D) स्तर पर प्राप्त हुआ है। अतः विकलांग विद्यालय के अप्रशिक्षित शिक्षकों की तुलना में प्रशिक्षित शिक्षकों में स्वास्थ्य मूल्य कम है।

4. विकलांग विद्यालय के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों के प्रजातांत्रिक मूल्य में विभिन्न स्तरों पर सार्थक अंतर पाया गया। विकलांग विद्यालय के प्रशिक्षित शिक्षकों के प्रजातांत्रिक मूल्य की सबसे अधिक आवृत्तिया (E) स्तर पर एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों में प्रजातांत्रिक मूल्य की सबसे अधिक आवृत्तिया सबसे (E) स्तर पर प्राप्त हुआ है। अतः विकलांग विद्यालय के अप्रशिक्षित की तुलना में प्रशिक्षित शिक्षकों में प्रजातांत्रिक मूल्य अधिक है, जो कि सार्थक महत्व का नही हैं।

शैक्षिक सुझाव :–

1. प्रस्तुत शोध के परिणामों के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि व्यक्तिगत मूल्य संबंधी शिक्षा के स्तर सुधार करने की आवश्यकता है।
2. नैतिक मूल्यों को बढाने हेतु विद्यालय में अनिवार्य रूप से शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में नैतिक गुणो का विकास करना चाहिए।
3. शिक्षको में परिवारिक मूल्यों के निमार्ण हेतु सभी को परिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति सजग एवं जागरूक बनाते हुये परिवार के प्रति अपने–अपने कर्त्तव्यों के निमार्ण करने एवं परिवारिक कलह से दूर रहने और बच्चो के विकास को ध्यान में रखते हुये सही मार्गदर्शन प्राप्त कर कार्य करना चाहिये।
4. पुनश्चर्या कार्यक्रम उन्मुखीकरण कार्यक्रम, संगोष्ठी एवं कार्यशाला का आयोजन कर शिक्षकों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे सटीक भूमिका निभानी चाहिये।
5. स्वास्थ्य संबंधित मूल्य के निर्माण हेतु स्वास्थ्य संबंधित गोश्ठी, सम्मेलन करना चाहिए ताकि स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हो सके और हानिकार वस्तु से दूर रहकर अपने मूल्यो का सही विकास कर सके। व्यसन आदि के दुष्परिणाम की जानकारी प्रदान करनी चाहिए।
6. प्रजातांत्रिक मूल्य के विकास हेतु सभी को अपने अधिकारो का ज्ञान प्रदान कर उसका सही उपयोग को बताना चाहिए और किसी के भी हक का हनन करने से ना केवल रोकना चाहिए बल्कि उसके दुश्परिणाम से भी परिचय करवा कर उन्हें प्रयोगों द्वारा वास्तविक ज्ञान दिया जाना चाहिए।

भावो अध्ययन हेतु शोध समस्याएं :–

1. विकलांग विद्यालय के अप्रशिक्षित शिक्षको के सामाजिक मूल्यों का अध्ययन करना।

2. शहरी एवं ग्रामीण विकलांग विद्यालय के शिक्षको के व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन करना।
3. विकलांग विद्यालय के एम.एड. के प्राध्यापकों के व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन करना।
4. विकलांग विद्यालय के प्राचार्यो का व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन करना।
5. विकलांग विद्यालय के प्रशिक्षित प्राध्यापकों के सामाजिक मूल्यों का अध्ययन करना।

संदर्भ :–

खरे,उषा(2009),सृजनात्मक और कम सृजनात्मक विद्यार्थियों की व्यक्तिगत मूल्यों की स्थिति, परिपेक्ष्य–16,अंक–2

जेसी,केरे एवं के.राजेन्द्र (2007),वैल्यू ऑफ लेट एडोलोसेंट, जर्नल ऑफ साडकोलॉजिकल रिसर्च, वाल्यूम–1, नं.–2

नायक, गोपाल प्रसाद(2009), मूल्यों के विकास में शिक्षण संस्थानों की भूमिका, परिपेक्ष्य–16, अंक–3, दिसम्बर 2009

पटेल भारती एवं सोमेजी भावना (2008), शासकीय एवं आशासकीय विद्यालयों की छात्राओं के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन, रिसर्च लिंक 50(ए), अंक–7(3) मई पृष्ठ 68–69

पासी, बी.के.एवं सिंह,पी(2009), वैल्यू एजूकेशन, एन. पी.सी., आगरा।

पांडे, ब्रजेश कुमार (2009), मूल्य परक संदर्भ में विद्यार्थी के दृष्टिकोंण का सर्वेक्षण, परिपेक्ष्य वर्ष 2012,अंक–02 अगस्त

रूहेला, एस.पी.(2012),डायमेंशन ऑफ वैल्यू एजूकेशन, आगरा, एच.पी.भार्गव बुक हाऊस

शेरी, जी.पी.वर्मा एवं आर.पी.(2005) परसनल वैल्यू क्वेशचनायर(पी.बी.क्यू),एन.पी.सी., आगरा

सुमित्रासिंह, मैथिलीरमण(2009), वर्तमान शिक्षा के मूल्य संकट क्यों कारण एवं सुझाव, परिप्रेक्ष्य, वर्ष 16, अंक 1,दिसंबर

साहनी, मधु (2009), माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों का अध्ययन, परिप्रेक्ष्य, वर्ष 16, अंक 2, अगस्त

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का अध्ययन

डॉ. सपना शर्मा
सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य, माता गुजरी महिला महाविधालय मढाताल, जबलपुर (म. प्र.)
कु. खुशबू राठौर
शोध छात्रा, वाणिज्य, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (म. प्र.)

शोध सार :– जब ग्रामीण विकास की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य गांवों के सम्पूर्ण विकास से होता है। ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रम (आरइडीपी) संचालित करने का मुख्य उद्देश्य उद्यमिता को बढ़ावा देना है और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसर उत्पन्न करना है। उद्यमिता कार्यक्रम के माध्यम से भूमिहीन मजदूरों और कृषि में अतिरिक्त मजदूरों की आय के पूरक के रूप में लाभकारी रोजगार भी प्रदान करता है। ये उद्यमिता विकास कार्यक्रम विकास संस्थानों/स्वैच्छिक संघो/गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी रोजगार और आय के अवसर प्रदान करने के लिए आयोजित किए जाते हैं।

मुख्य शब्दा (की वर्ड) – ग्रामीण उद्यमिता विकास

भारतीय युवाओं में जिस मनोविज्ञान का निर्माण हुआ है अथवा किया गया है उसके केन्द्र में नौकरी है, उद्यम नहीं। जबकि वास्तविक राह उद्यमिता के विकास से ही होकर जाती है। इसलिए आज की जरूरत यह है कि हमारा युवा वर्ग एक सफल उद्यमी बनने का मनोविज्ञान विकसित करे या स्वप्न देखें ताकि वह स्वयं रोजगार तलाश न करे बल्कि रोजगार पैदा करे। ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रम के माध्यम से ग्रामीण शहरी संरचना पर ध्यान दिया तो विश्लेषकों का मानना है कि भविष्य में भारत को समग्र सामाजिक, आर्थिक तरक्की के नये सोपान तक पहुँचाने में ग्रामीण भारत की ही सबसे अहम् भूमिका होगी।

उद्देश्य– उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का अध्ययन करना–

उद्यमिता विकास कार्यक्रमों की आवश्यकता :– प्राकृतिक व मानवीय सम्पदा का अपार भंडार है, जिसके कारण यहाँ औद्योगिक विकास की अपार सम्भावनाएँ मौजूद है। किन्तु उचित तकनीक, कौशल व उद्यमिता के अभाव में इन प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन नहीं हो पा रहा है। अतः प्रदेश के आर्थिक विकास के साथ–साथ रोजगार व जनसंख्या अनुपात में भारी अन्तर होता जा रहा है। अर्थात् जिस दर से जनसंख्या बढ़ रही है उस दर से रोजगार के अवसरों का निर्माण नहीं हो पा रहा है और बेरोजगारी का प्रतिशत दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसका मुख्य कारण यह भी है कि शैक्षणिक संस्थाओं में अध्ययनरत् छात्रों का मुख्य उद्देश्य सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थानों में नौकरी प्राप्त करना है चाहे व तकनीकी शिक्षा से जुड़े हो या केवल सैद्धांतिक शिक्षा से। जबकि आज आवश्यकता इस बात की है कि वे छात्र अपनी प्रतिभा व कौ ाल का उपयोग स्वरोजगार के क्षेत्र में करे। महात्मा गाँधी जी का दृष्टिकोण भी हम इसी दिशा में देखने को मिलता है। उनकी स्वावलम्बन व आत्मनिर्भरता की बुनियादी सोच स्वरोजगार से जुड़ने की थी। इसलिये बुनियादी शिक्षा को रोजगार परक बनाना चाहिए। यह तभी सम्भव है जबकि लोगों के कौशल व प्रतिभा को उजागर किया जाए, उसे दिशा दी जाये और यह सब उद्यमिता कार्यक्रमों के माध्यम से ही सम्भव बनाया जा सकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए लोगों में उद्यमिता की भावना को जागृत करने तथा समाज में उद्यमिता का वातावरण तैयार करने के उद्दे य से उद्यमिता विकास कार्यक्रमों का शुभारंभ किया गया है।

- ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य योजना की ओर ध्यान आकर्षित करना है तथा उनकी स्थिति का अवलोकन करना है।
- वर्तमान समय में नई–नई योजनाओं को प्रस्तुत करना है व इस योजनाओं के अन्तर्गत गरीब वर्ग एवं बेरोजगार वर्ग इन योजना से कितना लाभान्वित है, की जानकारी प्राप्त करना।
- ग्रामीण उद्यमिता विकास कार्यक्रमों के लिए इन्ही रोजगार योजनाओं के द्वारा उद्यमी में आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भर बनने की दृढ़ शक्ति जागृत करना।

महिला उद्यमी के रोजगार के अवसर :– आर्थिक व सामाजिक विकास एक–दूसरे पर आश्रित विचार है। आर्थिक विकास का का मार्ग काफी विस्तृत होता है

और सामाजिक विकास से आर्थिक विकास की दर तीव्र होती है। यदि किसी देश को विकास की दौड़ में आगे बढ़ना है तो उसके लिये यह आवश्यक होगा कि यहॉ सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्र में महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाए जाऍं। अनेक सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनैतिक कारणों से महिलाऍं आर्थिक गतिविधियों में पुरूषों की अपेक्षा पिछड़ी हुई है। हमारे देश की महिलाऍं सामान्यतः कम मजदूरी और कठिन परिस्थितियों में मेहनत करती है। कई बार उन्हें पुरूषों के बराबर कार्य करने पर भी कम मजदूरी दी जाती है।

महिलाओं के लिए रोजगार की सम्भावनाऍं कृषि, ग्रामीण, कुटीर उद्योग, खुदरा व्यवसाय एवं सेवा क्षेत्रों में बढ़ाई जा सकती है। उक्त रोजगार गतिविधियों में सामान्यतः कई समस्याऍं महिलाओं के सम्मुख आती है – अशिक्षित होना, महिला उद्यमियों के प्रति महिलाओं की प्रतिस्पर्धा, पुरूष अथवा समाज का दृष्टिकोण अपर्याप्त प्रेरणा और महिलाओं द्वारा संचालित व्यवसाय को वित्तीय संस्थाओं द्वारा अपर्याप्त वित्त पोषण सुविधाऍं दिया जाना।

महिलाओं के लिए उपयुक्त उद्योग व्यवसाय :– वैसे तो महिलाऍं किसी भी प्रकार एवं आकार का उद्योग स्थापित एवं संचालित कर सकती है। लेकिन कुछ विशिष्ट उद्योग ऐसे होते हैं। जिन्हें यदि महिलाऍं स्थापित करें तो सफलता की सम्भावना अधिक रहती है।

महिला उद्यमीयों के लिए उपयुक्त उद्योगों एवं कार्यों के कुछ प्रकार निम्नलिखित है –

(1) अचार, पापड़, चटनी, ज्यूस, जैम, जेली आदि तैयार करना।

(2) रेडीमेड वस्त्र, होजरी, स्वेटर्स आदि बनाना ं।

(3) सिलाई, बुनाई, कताई, रंगाई आदि कार्य जॉव पर लेना।

(4) चटाई, कारपेट, खिलौने, शो पीस आदि तैयार करना।

(5) बेकरी, खाद्य प्रसंस्करण, मसाला तैयार करने की इकाईयॉ लगाना।

(6) बिन्दी, मेंहदी, पूड़ियॉ, सौन्दर्य, प्रसाधन तैयार करना।

(7) लाख, जूट एवं बॉस से बनी सजावट की सामग्री तैयार करना।

(8) हस्तनिर्मित कागज बनाना, प्लास्टिक पॉलीथिन की थैली बनाना सेफ्टीपिन बनाना, मोमबत्ती बनाना आदि।

(10) बॉस की टोकरी बनाना, पॉम की पत्ती से चटाई बनाना, कागज का कार्टून बनाना।

(11) मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन, मुर्गी पालन, बत्तख पालन, बकरी पालन आदि।

उपरोक्त उद्योग महिलाऍं अपने परिवार के सदस्यों के सहयोग से घरेलू या कुटीर उद्योग के रूप में लगा सकती है एवं संचालित कर सकती है। लघु उद्योग के रूप में स्थापित किये जाने हैं तो 10–15 महिलाऍं मिलकर साझेदारी, सहकहारी समिति या निजी कम्पनी बना सकती है।

निष्कर्ष :– वर्तमान समय में देश एवं प्रदेश में एवं प्रदेश में विभिन्न प्रकार की कार्यक्रमों का केन्द्र एवं सरकार तथा निजी संस्थाओं द्वारा क्रियान्वयन किया जा रहा है। किन्तु इनका लाभ किन्ही कारणवश पूर्ण रूप से ग्रामीण जनसमुदायों तक नहीं पहुँच पा रहा है। अतः अध्ययन का मुख्य उद्देश्य समन्वित विकास एवं योजनाओं का प्रचार–प्रसार से है। उपर्युक्त कार्य पूर्णतः विस्तृत क्षेत्रीय सर्वेक्षण की यथार्थता पर निर्भर होगा।

प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन :– ग्रामीण क्षेत्रों में योजनाओं का लाभ प्राप्त करने एवं रोजगार के अवसर को प्राप्त करने के लिए उन्हे प्रशिक्षित एवं निपुर्ण बनाने हेतु कौन–कौन से कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है। ताकि योजनाओं का बेहतर साथ ग्रामीणों को प्रदान हो सके।

सुविधाएँ :– योजनाओं को लाभ प्राप्त करने के लिए ग्रामीणों का कौन–कौन सी सुविधाएँ कराई जा रही है।

कर्त्तव्य का अधिकार :– राज्य सरकार द्वारा योजनाओं का लाभ प्रदान करने के लिए कौन–कौन से कर्त्तव्य एवं अधिकार दिये गये हैं।

सन्दर्भ :–

- श्रीवास्तव एम (2006) मध्यप्रदेश में महिला उद्यमिता विकास कार्यक्रम की उपादेयता का विश्लेषणात्मक अध्ययन। शोध ग्रंथ क्रमांक 3814, पृष्ठ क्र. 31
- पत्रिका उद्यमिता, नई दिल्ली पृष्ठ क्र. 15
- पुस्तक, उद्यमिता विकास, डॉ. अनिल धगट

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

वाल्मीकि जाति की महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अध्ययन (छिन्दवाड़ा नगर के विशेष संदर्भ में)

डॉ. श्रीमती सुनीता कटारिया
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, गीतांजली शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर
प्रताप सिंह गोदरे
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रस्तुत शोधपत्र वाल्मीकि जाति के परिवारो में महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अध्ययन छिन्दवाड़ा नगर के विशेष संदर्भ में किया गया है। वाल्मीकि परिवारों की महिलाओं में व्याप्त अशिक्षा, अज्ञानता, रूढ़िवादिता एवं प्रचलित प्रथाओं के कारण उनके स्वास्थ्य की स्थिति असंतोषजनक है। अध्ययन से प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह पता चलता है कि स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता की कमी एक मूल कारण है।

कुंजी शब्द :– महिला स्वास्थ्य

स्वास्थ्य से अभिप्राय :– स्वास्थ्य किसी भी राष्ट्र विकास के सर्वोच्च स्थान रखता है यदि हम एक विकसित सशक्त, स्वस्थ व सुदृढ़ भारत का निर्माण करना चाहते है तो इसके लिए आवश्यक है कि भारत के सभी बच्चे, युवा एवं प्रौढ़ व्यक्ति स्वस्थ हों। किसी भी देश की खुशहाली का अनुमान वहाँ के स्वास्थ्य की स्थिति को देखकर लगाया जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सन् 1948 में स्वास्थ्य अथवा आरोग्य के बारे में कहा '' दैहिक, मानसिक व सामाजिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ हो (समस्या विदित होना)।''

स्वास्थ्य सिर्फ रोग या दुर्बलता की अनुपस्थिति ही नही, बल्कि एक पूर्ण शारिरिक–मानसिक और साकाजिक खुशहाली की स्थिति है। स्वस्थ लोग रोजमर्रा की गतिविधियों से निपटने के लिए और किसी भी परिवेश के मुताबिक अपना अनुकूलन करने में सक्षम होते हैं। रोग की अनुपस्थिति एक वांछनीय स्थिति है। यदि हम एक अभिन्न व्यक्तित्व की इच्छा रखते हे तो हमें हमेशा खुश रहना चाहिए और मन में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए की स्वास्थ्य के आभास अलग–अलग टुकड़ों की तरह है। अतः अगर हम अपने जीवन में कोई अर्थ प्रदान करना चाहते है तो हमें स्वास्थ्य को इन विभिन्न आयामों को एक साथ फिट रखना होगा। वास्तव में अच्छे स्वास्थ्य की कल्पना समग्र स्वास्थ्य का नाम है जिसमें शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, बौद्धिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक स्वास्थ्य और सामाजिक स्वास्थ्य भी शामिल है।

वाल्मीकि जाति महिलाओं की स्वास्थ्य की स्थिति संतोषजनक नहीं हैं, वह आंशिक रूप में स्वस्थ है। उनके अस्वस्थता का मूल कारण शिक्षा का स्तर कम होना, अज्ञानता, प्रचलित मान्यताएँ, प्रथाएँ, पारिवारिक कारण, वैवाहिक कारण, परंपरागत जीवन शैली, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी का अभाव, उपचार की उचित व्यवस्था न होना है।

शोध उपकल्पना :– वाल्मीकि जाति परिवारों की महिलाएँ स्वास्थ्य के प्रति जागरूक है।

शोध के उद्देश्य :–

1. वाल्मीकि जाति में महिलाओं को स्वास्थ्य की स्थिति ज्ञात करना।
2. शासन की योजनाओं के लाभ की स्थिति को ज्ञात करना।
3. वाल्मीकि जाति परिवारों में बीमारी का उपचार करने के तरीकों को ज्ञात करना।

अध्ययन क्षेत्र व विधि :– छिन्दवाड़ा नगर के 48 वर्षों में निवास कर रहे वाल्मीकि जाति परिवारों की 300 महिलाओं से साक्षात्कार, अनुसूची व अवलोकन के माध्यम से महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति से संबंधित आंकड़ो का संकलन किया गया है।

तालिका –1
शासन की स्वास्थ्य योजना की जानकारी

क्र.	शासन की स्वास्थ्य योजना की जानकारी	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	124	41.3
2	नहीं	176	58.7
	योग	300	100

विश्लेषण :– वाल्मीकि जाति परिवारों की 300 महिलाओं के शासन की लाभकारी स्वास्थ्य योजना की जानकारी के संदर्भ में तथ्यों का विश्लेषण उपरोक्त तालिका के आधार पर किया गया है। तालिका के आधार पर ज्ञात होता है कि वाल्मीकि परिवारों की 124 (41.3%) महिलाओं को शासन की स्वास्थ्य संबंधी

योजनाओं की जानकारी है तथा 176 (58.7%) महिलाओं को शासकीय स्वास्थ्य योजना संबंधी जानकारियों का अभाव है।

तालिका – 2
स्वस्थ्य रहने के लिए किये जा रहे उपाय

क्र.	स्वस्थ रहने के लिए उपाय	संख्या	प्रतिशत
1	सैर पर जाना	40	13.3
2	योगा	30	10
3	दवाइयाँ	185	61.7
4	घरेलू उपचार	45	15
	योग	300	100

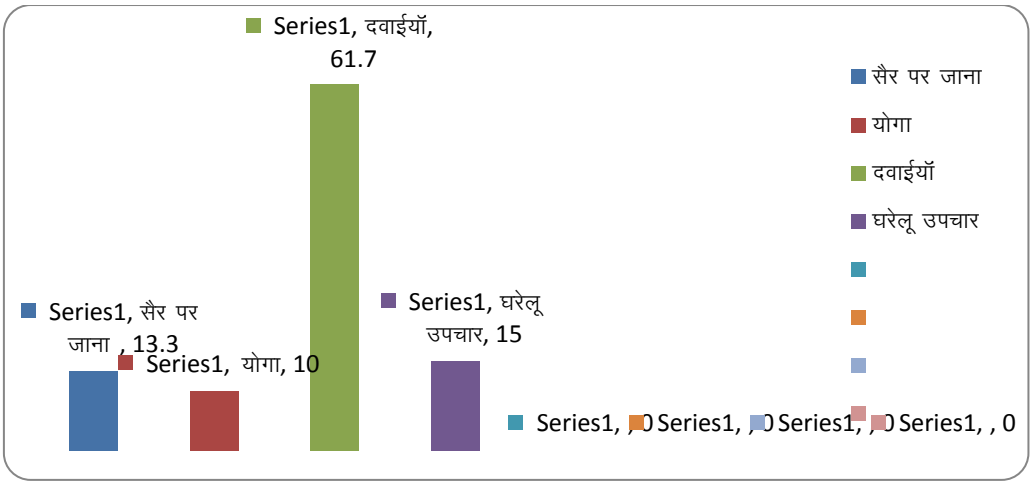

विश्लेषण :– वाल्मीकि जाति परिवारों की 300 महिलाओं से अपने तथा परिवारों में स्वस्थ रहने के लिए किए जा रहे उपायों का विश्लेषण है जो कि उपरोक्त तालिका के आधार पर किया गया है।

1. सैर पर जाना :– वाल्मीकि परिवारों की 40 (13.3 प्रतिशत) महिलाएँ अपने तथा परिवार के स्वस्थ रहने के लिए सुबह सैर पर जाती है।

2. योगा :– वाल्मीकि जाति परिवारों की 30 (10%) महिलाएँ अपने तथा परिवार के स्वस्थ रहने के लिए योगा करती है।

3. दवाईयाँ :– वाल्मीकि परिवारों की 185 (61.7%) महिलाएँ परिवार की स्वस्थता बनाये रखने हेतु दवाईयों का उपयोग करती है ।

4. घरेलू उपचार :– वाल्मीकि परिवारों की 45 (15%) महिलाएँ परिवार की स्वस्थता बनाये रखने हेतु घरेलू उपचार करती है।

सुझाव :–

1– महिलाओं को शासन की योजनाओं के बारे में जानकारी होना अत्यंत आवश्यक हैं।
2– महिलाओं को अपने तथा परिवार के स्वास्थ्य के लिए दवाइयों का उपयोग कम और योगा, सैर एवं घरेलू उपचारों का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए।
3– महिलाओं को आयुर्वेदिक औषधियों का उपयोग करना चाहिए।
4– महिलाओं को आशा कार्यकर्ताओं की मदद लेनी चाहिए।
5– महिलाओं को अखबार और टेलीविजन के माध्यम से स्वास्थ्य संबंधी जानकारी एकत्र करना चाहिए।

निष्कर्ष :– वर्तमान समय में स्वस्थ रहना नितांत आवश्यक है फिर चाहे वह महिला हो या पुरूष। जानकारी के अभाव में जो शासन की लाभकारी योजनाओं का लाभ वे नहीं ले पा रही है उसे प्रति उन्हे जागरूक होना अत्यंत आवश्यक है जिससे वे अपने तथा अपने परिवार के भावी भविष्य की कामना कर सकते हैं।

छिन्दवाड़ा नगर में वाल्मीकि के 300 परिवारों के सर्वे के उपरान्त उनके स्वास्थ्य पर जब हम दृष्टिपात करते है तो हम यह पाते है कि इन परिवारों में स्वास्थ्य लाभ अर्जित करने के लिए अच्छे से अच्छे उपचार करने हेतु आर्थिक अभाव के कारण जीवन–यापन के अतिरिक्त समुचित उपचार हेतु इन परिवारों के लिए आर्थिक सहायता की नितांत आवश्कता प्रतीत होती है। क्योंकि यह परिवार छोटी–छोटी नौकरियों में होने से आर्थिक रूप से कमजोर पाये जाते है।

वाल्मीकि जाति की अधिकांशतः महिलाओं का स्वास्थ्य संतोषजनक नहीं, वाल्मीकि परिवार की महिलाएँ अपने तथा परिवार की बेटियों की बीमारी को बताने में संकोच करती है उनका यह मानना है कि यदि महिलाओं की समस्यायें यदि समाज के सामने उजागर होगी तो उनका विवाह कैसे होगा ? महिलाएँ डॉक्टर के पास जाती जरूर है परंतु किसी संकोच के कारण अपनी संपूर्ण समस्या छुपाकर रखती हैं ऐसे में इलाज पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है तथा दूसरी अनेक बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। महिलाओं को स्वयं तथा परिवार के स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होना नितांत आवश्यक है।

शारीरिक स्वच्छता और सफाई की जागरूकता, पोषक तत्वों की जानकारी प्रचार प्रसार करके महिलाओं की समस्याओं का समाधान आसानी से किया जा सकता है।

सन्दर्भ :–

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन (एन.आई.सी.)
2. नरवाले वीरचंद : समय के स्वर, मासिक पत्रिका इंदौर, 2017
3. आहुजा राम, : इंडियन सोशल सिस्टम, रावत पब्लिकेशंस जयपुर, 1993
4. अग्रवाल, जे.पी. : भारत में नारी शिक्षा, प्रकाशक विद्या विहार, नई दिल्ली 2003

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

पंचवर्षीय योजना ने स्त्री शिक्षा

Retu Kapse
Research Scholar ,Bhopal MP

सर्वप्रथम, भारतीय संविधान ने 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की, जिसे एक दशक में पूरा करने का संकल्प लिया गया इसका आगामी पंचवर्षीय योजनाओं पर गहरा प्रभाव प्रमुख आधार स्वीकार किया गया। फलतः संविधान के निर्देशानुसार तथा विश्वविद्यालय आयोग की संस्तुति के आधार पर प्रथम पंचवर्षीय योजना में स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। स्पष्ट उल्लेख किया गया कि, ''स्त्रियों की शिक्षा की समस्या देश में अनुभूत हो रही है। इसलिए स्त्रियों की शिक्षा का उद्देश्य पुरूषों की शिक्षा से भिन्न नही होना चाहिए। तथापि इनके कई पृथक तरीके हैं जिनसे इन उद्देश्यों को पूर्ण किया जा सकता है।'' इससे परिलक्षित होता है कि, स्त्री–पुरूष की शिक्षा में गुणात्मक तथा परिणात्मक समानता लाने का संकल प्रथम पंचवर्षीय योजना में समाहित था। इस संकलग्न के पीछे औचित्य था, जो शिक्षा की समस्याओं के अध्ययन के लिए नियुक्त आयोग के प्रतिवेदनों से प्रतिबिम्बित होता है। उदाहहरणार्थ –माध्यमिक शिक्षा आयोग ने स्वीकार किया कि, प्रजातांत्रिक राज्य में जहाँ हर नागरिक का समान नागरिक अधिकार था सामाजिक उत्तरदायित्व हैं, वहाँ लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा में अन्तर पाया जाता है : जो वांछनीय नही है। भावी भारतीय समाज में स्त्री–पुरूष दोनों को एक साथ समान कार्य करने की नीति होगी। अतः यह उपादेय है कि, पुरूष स्त्रियों के साथ घर के कार्य में हाथ बटाये तथा स्त्रियाँ पुरूषों के समान सामाजिक तथा आर्थिक उत्तरदायित्व में सहभागिनी बनें।

स्त्री शिक्षा के प्रति इस प्रकार के प्रगतिशील मूल्यों के होने पर भी स्त्रियों और पुरूषों की शिक्षा में अन्तर रखने की संस्तुति विविध स्तरों पर दी जाती रही है। यहाँ विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के उद्वरण से उक्त कथन को स्पष्ट किया जा सकता है। – ''स्त्रियों एवं पुरूषों की शिक्षा में कई तत्व समान हाने चाहिए, किन्तु हर क्षेत्र में एक समान नही हाने चाहिए जैसा की आज है। एक स्त्री को उन समस्याओं से अवगत होना चाहिए, जो कि विवाह से सम्बन्धित हे। अभिभावक एवं बच्चों के बीच के संबंध्ध की जानकारी और उनसे कैसे सामना किया जाय, इसकी शिक्षा मिनी चाहिए स्त्री शिक्षा घर के संचालन की समस्याओं से सम्बन्धित होनी चाहिए और स्त्रियों को उसी में कुशल बनाना चाहिऐ, ताकि वे उसी तन्मयता से घर के कार्यो को कर सकें, जिस प्रकार पुरूष अपने कार्य करते हैं।

इस प्रकार के अनुमोदन रूढ़िवादिता के परिचायक हैं तथा स्त्रियों को घर के बाहर के कार्यों के उपयुक्त नहीं मानते। इन विचारों से स्त्री शिक्षा में व्यवधान आया है। पाश्चातवर्ती योजनाओं में भी शिक्षा के पृथक्–पृथक् उद्देश्यों पर बल दिया गया। परंतु न तो यथावंछित स्त्री शिक्षा का विकास संभव हो सका और न ही परम्परागत विचारों से छुटकारा मिल सका।

छठी पंचवर्षीय योजना ने स्त्री शिक्षा को सम्बल प्रदान किया। तत्कालीन जनता सरकार ने शिक्षा के विकास पर विशेष ध्यान दिया। असाक्षरता को समाप्त करना, प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन देना और शिक्षा को हर व्यक्ति तक पहुँचाना, छठी योजना का मुख्य लक्ष्य रखा गया । यह नीति निर्धारण लउकियों और स्त्रियों की शिक्षा को ध्यान में रखकर किया गया।

जब तीस मास के बाद केन्द्र सरकार में परिवर्तन हुआ, तब छठीं पंचवर्षीय योजना (1980–85) में अनेक सराहनीय कदम उठाये गये। सर्वप्रथम इस योजना में ''महिला और विकास'' पर एक पृथक अध्याय रखा गया, जिसमें स्त्रियों की शिक्षा, स्वास्थ्य और व्यवसाय को सम्मिलित किया गया। भारत में स्त्री शिक्षा की मुख्य समस्या है : शिक्षा का प्रचार और समाान्य शिक्षा का राष्ट्रीकरण। छठी पंचवर्षीय योजना में सभी नागरिकों को बिना किसी लिंग, रंग, जाति, आयु आदि के भेदभाव के आधार पर शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार की बात दुहरायी गयी। फलतः 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों की सामान्य शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी। साथ ही 15 से 35 वर्ष के आयु समूहों के लिए प्रौढ़ शिक्षा प्राप्त कराने पर बल दिया गयां । इस योजना को बीव सूत्रीय कार्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90) में भी स्त्री–शिक्षा के उन्ही पहलुओं पर ध्यान दिया गया। छठीं और सातवीं योजना में पहिलाओं के संबंध मे पुनः अवधारणात्मक अंत पाया गया और विकास की जगह उनके शक्ति एवं अधिकार सम्पन्न बनाने पर जोर दिया जाने लगा। आठवीं और

नौवीं योजना में महिलाओं को अधिकार सम्पन्न कराकर उनके माध्यम से सामाजिक परिवर्तन और विकास दर को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। दसवीं योजना में स्वास्थ्य और स्वस्थ समाज की संरचना में उनके विशिष्ट योगदान की पहचान कर उन्हें और अधिक शक्ति सम्पन्न बनाने का निर्णय लिया गया तथा ग्यारवीं योजना में पुनः उनके शिक्षा एवं रहन–सहन के स्तर को सुधरने का लक्ष्य रखा गया है। इन चलाये जा रहे योजनाओं के परिणाम काफी हद तक सकारात्क रहे है। महिला की औसत आयु 1951 में 316 वर्ष थी जो बढ़कर 2001 में 62 वर्ष हो गयी है।

वर्ष 2007–2008 के केंन्द्रीय बजट मे पूरी तरह महिलाओं पर केंद्रित विभिन्न योजनाओं के लिए आठ हजार सात सौ पिचानवे करोड़ रूपये का परिव्यय निर्धारित किया गया है। जिन योजनाओं में कम–से–कम पैंतीस फीसदी पहिलाएं होंगी, जिन्हें 22 हजार तीन सौ बयासी करोड़ रूपये की धनराशि प्रदान की गई है। वित्तमंत्री पी0 चिदंबरम ने अपने बजट भाषण में कहा कि, बजटीय आवंटन में महिला वर्ग कोलेकर जागरूकता बढ़ रही है। 50 मंत्रालयों और विभागों ने पहिला बजट सेल स्थामित किए है। वित्तमंत्री ने यह भी कहा कि, उन्होंने पिछले साल के बयान मे चिन्हित की गई गलतियों को खत्म करने के लिये गंभीर प्रयास किए हैं, ताकि महिलाओं की कल्याण योजनाएं चल सकें। सामाजिक सुरक्षा और महिला–कल्याण के लिये बजट में पांच हजार दो सौ करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया हैं, जबकि पिछले साल यह राशि 4,391.66 करोड़ रूप्ये थी। आयकर की छूट एक लाख 35 हजार से बढ़कर एक लाख 45 हजार कर दी गई है।

महिला सशक्तिकरण के लिये सरकार कदम उठा रही है, लेकिन अभी इसका पूरा लाभ महिलाओं को नहीं मिल पाया है। इस मार्ग में आर्थिक बाधाओं के साथ सामाजिक अडचनें मुख्य अवरोध पैदा करती हैं। बच्चों की सुरक्षा से जुड़ी योजनाओं के लिये 85.5 करोड़ रूपये आवंटन किया गया है। निारी कांड को देख्रते हुए बच्चों की सुरक्षा महत्वपूर्ण हो गई हैं बालिकाओं के लिए बीमा सहित सर्शत नकदी हस्तांतरण योजना भी चालू वित्त वर्ष से केंद्रित पायलट परियोजना के रू‍ मे शुरू की जा रही है। इसका लक्ष्य बालिकाओं के साथ भेदभाव समाप्त करना हैं। इसक लिये 13.50 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया है।

वर्ष 2000 में ''सहस्राब्दी विकास लक्ष्य'' (डपससमदपनउ क्मअमसवचउमदज ळवंस) संयुक्त राष्ट्र के 189 देशों द्वारा स्वीकार किये गये, जिसमें 2015 तक महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ, मातृत्व मुत्यु दर घटाना, महिलाओं में रोजगार प्राप्ति की दर बढ़ाना जैसे लक्ष्यों को प्राथमिकता दी गयी है। इसी प्रकार मानव विकास सूचकांक (भ्क्) में भी शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी सूचकों को ही प्रमुखता प्राप्त है। सपष्ट है कि शिक्षा एवं स्वास्थ्य का स्तर ऐसे घटक हैं, जो किसी देश या प्रदेश का सामाजिक आर्थिक स्तर निर्धारित करते है।

इन प्रयासों का प्रतिफल भी दिखाई देने लगा है। विगत दशको से साक्षरता के आंकड़ों से पता चलता है कि वर्ष 1951 में 8.66 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर थी। 2001 में साक्षरता दर 54.16 प्रतिशत तक पहुँच गयी। लेकिन पुरूषों की तुलना में यह अभी भी 21.69 प्रतिशत कम है। खुशी का इजहार करने वाली बात यह है कि साक्षरता में लैंगिक अंतर 1981 से निरंतर कम हो रहा है। 1981 में पुरूष तथा स्त्रियों की साक्षतरता दर के मध्य 26.62 प्रतिशत का अंतर था जो 4.93 प्रतिशत कम होकर 2001 में 21.69 प्रतिशत ही रह गया

भारत में महिला साक्षरता दर की स्थिति और लैंगिक अंतर

(वर्ष 1952–2001)

वर्ष	व्यक्ति	पुरूष	महिला	साक्षरता दर में पुरूष महिला अंतर
1951	18.33	27.16	8.86	18.30
1961	26.30	40.40	15.35	25.05
1971	34.45	45.96	21.97	23.99
1981	43.57	56.38	29.76	26.62
1991	52.21	54.13	29.29	24.84
2011	65.38	75.85	54.16	21.69

स्रोत : भारत की जनगणना, 2011

महिला शिक्षा के मामले में यह विचारणीय है कि, अशिक्षित महिलाओं की संख्या 1991 में 200.7 मिलियन थी जो गिरकर वर्ष 2001 में 189.6 मिलियन ही रह गयी। फिर भी यह संख्या काफी अधिक है।

तालिका–1.2 जो राज्य/केन्द्र शासित प्रदेशों में महिला साक्षरता दर से सम्बद्व है, से विदित है कि, पांच राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों–केरल, मिजोरम, लक्षद्वीप, चंडीगढ़ और गोवा की स्थिति महिला साक्षरता के मामले में सबसे अच्छी है औ उन्हें उच्च स्थान प्राप्त

है क्योकि इनमें 75 से 88 प्रतिशत तक महिलाएं साक्षर हैं। साक्षरता दर मे लैंगिक अंतर भी इन पांचो राज्यों में तुलनात्मक रूप से बहुत कम (4.0 प्रतिशत से 14.0 प्रतिशत के मध्य) है, लेकिन इसके विपरीत 11 राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों – छत्तीसगढ़ आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, अरूणांचल प्रदेश, दादर व नागर हवेली, उत्तर प्रदेश, जम्मू कश्मीर, झारखंड और बिहार की स्थिति सर्वाधिक शोचनीय है क्योकि इनमें महिला साक्षरता भारतीय औसत (54.2 प्रतिशत) से काफी कम है (हालांकि इन सभी राज्यों मे पिछले दशक में उल्लेखनीय सुधार हुआ है) । यह भी उल्लेखनीय है कि इन सभी राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में लैंगिक अंतर भी बहुत अधिक (18 प्रतिशत से लेकर 33 प्रतिशत के मध्य) है। लैंगिक अंतर की दृष्टि से तो उत्तरांचल हरियाणा,कर्नाटक एवं महाराष्ट्र राज्यों की स्थिति भी काफी खराब है।

स्पष्ट है कि पुरूषों की तरह ही महिलाओं के विद्यालय छोड़ने की दर में काफी कमी हुई है। लेकिन आज भी लड़कियों में विद्यालय छोड़ने की दर लड़कों से काफी अधिक है। इसके बावजूद विद्यालय छोड़ने की दर में कमी करने मे लड़को की तुलना में लड़कियों ने बहुत अच्छी प्रगति की है। प्राथमिक स्तर पर लड़कों में विद्यालय छोड़ने की दर वर्ष 1980–81 में 56.2 प्रतिशत थी जो वर्ष 1999–2000 में 38.7 प्रतिशत ही रह गई। इस तरह इस अवधि (1960–81 से 1999–2000) में लड़कों में विद्यालय छोड़ने की दर में 17.5 प्रतिशत की कमी आई हैं। वहीं दूसरी ओर लड़कियों में विद्यालय छोड़ने की दर 1980–81 में 62.5 प्रतिशत थी जो 1999–2000 मे 42.3 प्रतिशत ही रह गई। इस तरह इस अवधि में लड़कियों मे विद्यालय छोड़ने की दर में 20.2 प्रतिशत की कमी आई । हालांकि लडकियों की विद्यालय छोड़ने की दर में लड़कों से अधिक कमी आई है। लेकिन लैंगिक अंतर आज भी काफी ऊँचा है। वर्ष 1980–81, 1990–91 तथा 1999–2000 में प्राथमिक स्तर पर लड़कियों मे विद्यालय छोड़ने की दर लड़कों से क्रमशः 63 प्रतिशत, 3.6 प्रतिशत अधिक थी लगभग इसी प्रकार की प्रवृत्तियां स्तर पर दृष्टव्य होती है।

विद्यालय छोड़ने की दर में कमी आने का आशय यह है कि महिलाओं की विद्यालय में दाखिल रहने की दरों में बढ़ोत्तरी हो रही है। यह बात मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग के आकडों से पुष्ट हो जाती हैं। प्राथमिक और मिडिल दोनों स्तरों पर बालिकाओं के लिए सकल नामांकन अनुपात, प्राथमिक स्तर के संबंध में 1960–81 के 64.1 प्रतिशत से बढ़कर 1999–2000 में 85.2 प्रतिशत हो गया इसी अवधि के दौरान मिडित स्तर के संबंध में यह 28.6 प्रतिशत से बढ़कर 49.7 प्रतिशत हो गया। वर्ष 1990–81 और 1999–2000 के बीच लड़कियों द्वारा की गई प्रगति (प्राथमिक और मिडिल स्तरों पर 21.1 प्रतिशत और 21.1 प्रतिशत) लड़कों द्वारा की गई प्रगति (प्राथमिक और मिडिल स्तरों पर क्रमशः 8.3 प्रतिशत और 12.9 प्रतिशत) की तुलना में काफी अच्छी थी। लेकिन इसके बावजूद उच्च लैंगिक अंतर बना हुआ है। आज (1999–2000) भी प्राथमिक स्तर पर लड़कियों का सकल नामांकन अनुपात लड़कों से 18.9 प्रतिशत कम है और मिडिल स्तर पर 17.5 प्रतिशत कम है।

उच्चतर शिक्षा, जिससे कालेज, विश्वविद्यालय, अभियांत्रिकी, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी के व्यावसायिक कालेज आदि शामिल हैं, में नामांकित महिलाओं की संख्या 1990–91 के 1.32 मिलियन में बढ़कर 1999–2000 में 3.03 मिलियन हो गयी, लेकिन देश की विशाल महिला आबादी (2001 में देश की 1027 मिलियन की आबादी में महिलाओं की जनसंख्या 48.3 प्रतिशत यानी 495.7 मिलियन थी) के मद्देनजर यह संख्या अत्यंत कम है। लेकिन खुशी की बात यह है कि कुल नामांकन में महिलाओं के नामांकन का प्रतिशत काफी उन्नत हुआ है और लैंगिक अंतर काफी कम हुआ है। 1990–91 में कुल नामांकन में महिलाओं का नामांकन 33.0 प्रतिशत था जो 1999–2000 में 6.8 प्रतिशत बढ़कर 39.8 प्रतिशत तक पहुँच गया। 1990–91 में कल नामांकन में महिलाओं का नामांकन पुरूषों के नामांकन से 34.0 प्रतिशत कम था। 1990–2000 में यह अंतर मात्र 20.4 प्रतिशत रह गया। लेकिन फिर भी यह अंतर काफी अधिक है। विभिन्न पाठ्क्रमों में नामांकन को देखे तो उपलब्ध आंकड़े भी इसी प्रकार की कहानी बखान करते नजर आते है। विभिन्न पाठयक्रमों में महिलाओं का नामांकन काफी उन्नत हुआ है और उन सभी पाठ्यक्रमों अंर काफी म हुआ हैं, लेकिन विभिन्न पाठ्यक्रमों में आज भी यह अंतर काफी अधिक है उदाहरणार्थ, स्नातक पाठ्यक्रम में महिलाओं की संख्या 1990–91 के 1.14 मिलियन से बढ़कर 1999–2000 में 2.66 मिलियन हो गयी। 1990–91 में स्नातक पाठ्यक्रम में महिलाओं का नामांकन पुरूषों के नामांकन से 30.6 प्रतिशत में था। 1999–2000 में यह अंतर मात्र 18.2 प्रतिशत ही रह गया। लगभग इसी प्रकार की प्रवृतियां अन्य सभी पाठक्रमों में दृष्टिगोचर होती हैं।

शिक्षा की दिशा में हुई प्रगति की विडम्बना यह है कि, जहाँ एक ओर प्रतिवर्ष शिक्षितों की संख्या बढ़ रही हैं, दूसरी ओर असाक्षरों की संख्या भी बढ़ती जा रही है।

शिक्षा का स्वरूप तथा स्त्रियों की स्थिति

स्त्रियों की शिक्षा के पिछड़ेपन का वास्तविक आभास तब होता है, जब हम शिक्षा के विविध स्तरों पर ध्यान देते हैं। शिक्षा के तीन स्तर उल्लेखनीय हैं – प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयी। इसी बारे में भारतीय महिलाओं की स्थिति को जानने के लिए नियुक्त समिति ने 1970 तक के उपलब्ध आँकड़ों का विश्लेषण किया, जिससे स्त्री शिक्षा का बहुत ही भयावह स्वरूप उभरा । इसके निष्कर्षो के अनुसार 6–11 वर्ष की लड़कियों में प्रत्येक 3 लड़कियों में से मात्र 2 लड़कियाँ ही प्रारम्भिक विद्यालयों में पढ़ती थी। ज्यो–ज्यों आयुक्रम में आगे बढ़ते हैं, स्त्रियों की शिक्षा घटती जाती है। आयु समूह 11–14 वर्ष के (कक्षा–आठ) तक की पाँच लड़कियों में से मात्र एक लड़की ही जूनियर हाई स्कूल में थी। फिर भी 1971–81 के दशक से प्राइमरी, मिडिल और माध्यमिक तीनों स्तरों पर लड़कियों एवं लड़कों दोनो के नामांकन में हुई। यों तो तीनों आयु समूहों में तीनो शिक्षा स्तरों पर नामांकन में सामान्य वृद्वि हुइ है, फिर भी उत्तर प्रदेश में जो भारत का मुख्य राज्य हैं, जहाँ प्राइमरी स्तर में लड़कियों के नामांकन में अत्यधिक ह्रास हुआ ।

सम्पूर्ण भारतीय स्तर पर प्राथमिक एवं मिडिल स्कूलों में नामांकन दो दशकों तक लगभग अपरिवर्तित रहा और माध्यमिक स्तर पर स्थिति में ह्रास हआ। यदि हम राज्यों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं तो हरियाणा एवं राजस्थान में प्राइमरी स्तर के नामांकन में, मध्यप्रदेश में मिडिल स्तर में एवं आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राज्यस्थान में माध्यमिक स्तर पर विशाल अन्तर दृष्टिगत होता है। कई राज्यों, जैसे–हिमांचल प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर और तमिलनाडु में प्रारम्भिक स्तर में, राज्यस्थान और उत्तर प्रदेश में मिडिल स्तर में, बिहार और जम्मू कश्मीर में माध्यमीक स्तर में शिक्षा के क्षेत्र में कुछ सुधार दृष्टिगत हुआ है, तथापि सम्पूर्ण अन्तर्दशक (1971–81) में विद्यालयों के हर स्तर पर स्त्रियों की शिक्षा की संख्या 1971 की तुलना में 1981 में अधिक पायी गयी है। यदि उच्च शिक्षा की ओर दृष्टिगत किया जाय तो पता चलता है कि, 1970–71 और 1981–82 के बीच लड़कियों के नामांकन में काफी तेजी से वृद्वि 1974–75 में परास्नातक की संख्या घटी है। 1970–71 में 25 प्रतिशत और 1971–72 में 25.5 प्रतिशत थी, जो घटकर 1974–75 वर्ष में अपनी पराकाष्ठा पर थी (24.10 प्रतिशत) परंतु 1973–74 में अत्यधिक तेजी से संख्या कम हुई (21.6 प्रतिशत) और 1973–74 तथा 1979–80 के बाद से तो संख्या और भी कम होती गयी।

यदि शिक्षा के प्रकार की दृष्टि में रखकर विश्लेषण करें तो पता चला है कि, 1970–72 और 1980–81 के इन दशकों में कला और विज्ञान में नामांकन अधिक संख्या में हुआ। वाणिज्य में भी उनका नामांकन 1981–82 में 16.7 प्रतिशत तक बढ़ गया, जबकि दशक के प्रारंभ में उनकी संख्या नगण्य थी। कृषि एवं पशु विज्ञान में महिलाएँ बहुत कम संख्या में थीं, पर कुछ वर्षो बाद उनमें किचित मात्र वृद्वि हुई। महिलाओं की संख्या आयुर्विज्ञान में अवश्य बढ़ी। अध्ययन के साथ–साथ आयुर्विज्ञान ही एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमे महिलाएँ स्वतन्त्रता के पूर्व से ही रूचि लेती थी। स्वतन्त्रता के बा तो इस क्षेत्र की ओर स्त्रियों का झुकाव और अधिक हो गया। 1970 के लगभग इसमें लड़कियों की संख्या घटी, किन्तु 1980 के करीब स्त्रियों की संख्या द्रुत गति से बढ़ी है। 1970–71 में आयुर्विज्ञान में लिंग का अनुपात 296 था, 1976–76 में यह कम होकर 223 ही रह गया, फिर भी 1979–80 के स्थिति मे काफी सुधार हुआ।

इस प्रकार विविध विषयों में सुधार होता दीख पड़ता है। इस बढ़ती हुई संख्या से आभास होता है कि, कुछ ही वर्षो में स्त्रियाँ भी पुरूषों के बराबर हर हर क्षेत्र में सहभागिनी बन सकेंगी। अब स्त्रियों की शिक्षा के विकास हेतु नवीन कार्यक्रमों की ओर दृष्टिपात करना समीचीन होगा।

स्त्रियों की शिक्षा के विकास हेतु नवीन कार्यक्रम

देश में स्त्रियों की शिक्षा की वृद्वि के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये गये है। इसमें प्रौढ़ शिक्षा आँगन बाड़ी, सहशिक्षा मुख्य है। अक्टूबर,1978 को स्थापिमत्रत राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा योजना में महिलाओं को हर प्रकार से प्रोत्साहित किया। प्रौढ़ के छात्रों, निर्देशिकाओं और निर्णयकर्ताओं में महिलाओं की संख्या अधिक थी, क्योकि शिक्षित किये जाने वाली दो तिहाई स्त्रियों को शिक्षित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। प्रौढ़–शिक्षा के माध्यम से स्त्रिों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने की चेष्टा की गयी। दश्तकारी के कार्यो में कुशल बनाने का प्रयास किया गया। साथ ही, स्त्रियों

को अपने स्वास्थ्य और बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति जागरूक किया गया। परिवार नियोजन को भी प्रोत्साहित किया गयां। स्त्रियों को स्वंय अपने सीखने एवं सीखाने के समूह पर बल दिया, ताकि सभी स्त्रियाँ एक साथ विकास की प्रक्रिया मे भाग ले सकें। राष्ट्रीय प्रौढ़–शिक्षा योजना में 1980 मे पुनर्निरीक्षण समिति गठित की। इसके अनुसार 35 प्रतिशत जनसंख्या ही 31 जनवरी, 1980 तक शिक्षा प्राप्त कर सकी। समिति ने कतिपय समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया जो स्त्रियाँ की शिक्षा में बाधक थी। कुद प्रमुख बाधक थी। कुछ प्रमुख बाधाएँ जिनकी ओर संकेत किया गया इस प्रकार हैं – पुरूषों का स्त्रियों की शिक्षा के प्रति उदासीन होना, निर्धन महिलाओं में समय और शक्ति का अभाव, पुरूषों एवं महिलाओं को एक निश्चित समय प्राप्त करने में कठिनाई, महिला प्रशिक्षिकाओं एवं निरीक्षकों की अल्प संख्या और बच्चों की देखभाल की समस्या आदि।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को प्रोत्साहन देने के लिए (15–35 वर्ष के आयु वाली महिलाओं को) कुछ विशेष पुरस्कार वितरण की व्यवस्था की गयी। प्रौढ़–शिक्षा के केन्द्रों के अनुसार नीत स्तरो पर पुरस्कार दिये जाने का विचार किया गया–जिला, राज्य औ केन्द्र के स्तर पर।

पहली बार छठी पंचवर्षीय योजना में 3–6 वर्ष तक के बच्चों के लिए ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा केन्द्र खोला गया। इनमें उन लडकियों को सुविधा सुलभ हो गयी जो पढ़ना चाहती है। साथ ही प्राध्यापिकाओं की भी संख्या बढ़ाने की संस्तुति की गयी। परिणाम यह हुआ कि, हर स्तर पर शिक्षिकाओं की संख्या बड़ी हैं। 1960–61 और 1980–81 और 1980–80 में प्राइमरी, मिडिल और माध्यमिक, शिक्षिकाओं की संख्या बढ़ी है। 1960–61 और 1980–61 में प्राइमरी, मिडिल और माध्यमिक स्कूलों में शिक्षिकाओं की संख्या बढ़ती हुई प्रतीत हुई (सरणी–1. 5)। शिक्षिकाओं की संख्या 1970–71 ,में 20.7 प्रतिशत ही थी, जबकि 1980–81 मे बढकर 25 प्रतिशत हो गयी।

तालिका

शिक्षा के विविध स्तरों पर समस्त शिक्षकों में शिक्षिकाओं का अनुपात

1960–81(प्रतिशत में)

वर्ष	प्राइमरी	मिडिल	माध्यमिक
1960–61	21.00	32.00	22.00
1966–66	24.00	36.00	30.00
1970–71	20.70	27.00	24.30
1975–76	22.70	28.80	36.40
1980–81	25.00	30.30	28.30

स्रोत : **संसदीय निर्णयन आयोग की रिपोर्ट, शिक्षा, संस्कृति एवं सामाजिक कल्याण मनत्रालय, भारत सरकार, 1983.**

स्त्रियाँ सहशिक्षा का भी लाभ उठाने लगी। प्राइमरी स्कूल से महाविद्यालय तक लड़कियों की संख्या बढ़ती दिखायी देती है। किन्तु माध्यमिक स्कूलों, व्यावसायिक शिक्षालयों और प्रशिक्षण विद्यालयों में स्त्रियों की संख्या अधिक थी।

राष्ट्रीय शिक्षानीति का मसौदा

1979 की राष्ट्रीय शिक्षानीति के मसौदे (भारत सरकार 1979) मे कहा गया है कि आदर्श शिक्षाप्रणाली का उद्देश्य व्यक्तियों को इस योग्य बनाना है कि वे अपनी शारीरिक और बौद्विक क्षमताओं की जान सकें और पूरी तरह विकसित कर सकें और सामाजिक तथा मानवीय जीवनमूल्यों के बारे में जागरूकता बढ़ा सकें। तभी वह एक दृढ चरित्र का विकास कर सकते है, बेहतर जिंदगी जी सकते है और समाज के जिम्मेदार सदस्यों की तरह कार्य कर सकते है। सन् 1976 से पूर्व शिक्षा पूर्ण रूप से राज्यो का उत्तरदायित्व था। संविधान द्वारा 1976 में किये गए जिस संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया, उसके दूरगामी पणिाम हुए।

इसी तारतम्यता में सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा–नीति (एन0पी0ई0) तथा वह कार्यवाही कार्यक्रम (पी0ओ0ए0) शामिल है, जिसे सन् 1992 में अद्यतन किया गया।। संशोधत नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाते, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को जनांदोलन बनाने, सभी को शिक्षा कराने, बुनियादी (प्राथमिक) शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने, बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने, देश के प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे आधुनिक विद्यालयों की स्थापना करने, माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रकार की जानकी देने और अंतर अनुशासनात्मक अनुसंधान करने, राज्यों में नए मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना करने, अखिल भारतीय प्रौद्योगिक शिक्षा परिषद को सुदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं एक सक्षम मूलयांकन प्रक्रिया अपनाने के प्रयास शामिल है।

केंद्रीय शिक्षा परामर्शदाता बोर्ड शिक्षा के क्षेत्र में केंद्रीय और राज्य सरकारों को परमर्श देने के लिए गठित सर्वोच्च संस्था है। इसका गठन 1920 में किया गया था और 1923 में व्यय में कमी लाने के लिए इसे भंग कर दिया गया। सन् 1935 में इसे पुनः गठित किया गया और यह बोर्ड 1994 तक अस्तित्व में रहा। इस तथ्य के बावजूद कि विगत में सी0ए0बी0ई0 के परामर्श पर महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये हैं और शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर व्यापक विचार–विमर्श एवं परीक्षण हेतु इसने एक मच उपलब्ध कराया है दुर्भाग्यवश मार्च, 1994 में बोर्ड के बढ़े हुए कार्यकाल के बाद इसका पुनर्गठन नही किया गया। राष्ट्रीय शिक्षा 1986 (जिसे 1992 में संशोधित किया गया था) में भी यह प्रावधान है कि शैक्षिक विकास की समीक्षा करने तथा व्यवस्था एवं कार्यक्रम पर नजर रखने के लिए आवश्यक परिवर्तनों का निर्धारण करने में भी सी0ए0बी0ई0 की महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी। पुनर्गठित सी0ए0बी0ई0की 10 एवं 11 अगस्त, 2004 को हुई बैठक में कुछ ऐसे संवेदनशील मुद्दों पर विशेष विचार–विमर्श करने की आवश्यकता महसूस की गई। तदनुसार निम्नलिखित विषयों के लिए सी0ए0बी0ई0 की सात समितियां बनाई गई – निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक तथा प्राथमिक शिक्षा से जुड़े अन्य मामले, बालिका शिक्षा तथा एक समान स्कूल प्रणाली, एक समान माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा संस्थानों को स्वायत्तता, स्कूल पाठयक्रम में सांस्कृतिक शिक्षा का एकीकरण, सरकार–संचालित प्रणाली के बाहर चल रहे स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकों एवं समानांतर पाठ्य पुस्तकों के लिए नियामक तथा प्रौद्योगिक शिक्षा को वित्तीय सहायता देना।

उपरोक्त हेतु समितियों का गठन सितंबर 2004 में किया गया। इनसे मिली रिपोर्टो पर 14–15 जुलाई, 2005 को नई दिल्ली में हुई सी0ए0बी0ई की 53वीं बैठक में विचार–विर्मश किया गया। इन सभी प्राप्त रिपोर्टो से उभरें कार्य–बिंदुओं की पहचान करने तथा उन पर एक निश्चित कार्यावधि में अमल करने के लिए कार्य–योजना तैयार करने के आवश्यक उपाय किए जा रहे हैं। इसके साथ ही सी0ए0बी0ई0 की तीन स्थायी समितियां बनाए जाने का निर्णय किया गया है –

1. नई शिक्षा नीति का लागू कराने की विशेष आवश्यकता सहित बच्चों एवं युवाओं के लिए सन्निहित शिक्षा हेतु स्थायी समिति।
2. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को निर्देश देने के लिए साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षा पर स्थायी समिति।
3. बच्चे की शिक्षा, बाल विकास, पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न योजनाओं को ध्यान में रखते हुए बाल विकास प्रयासों के समन्वयन और एकीकरण मामलों के लिए एक स्थायी समिति।

महिला समाख्या

महिला समाख्या कार्यक्रम (महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा) ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली, विशेषकर सामाजिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की महिलाओं की शिक्षा और उनके सशक्तीकरण हेतु एक ठोस कार्यक्रम है। यह योजना नौ राज्यों के 60 जिलों के 14000 से ज्यादा गांवो में चलाई जा रही है।

इस योजना का उद्देश्य महिलाओं की छवि और उनके आत्मविश्वास को मजबूत करना, ऐसा करना, जहां महिलाएं ऐसा ज्ञान और सूचना प्राप्त कर सकें, जो उन्हें समाज मे सकारात्मक भूमिका निभाने की शक्ति दे, महिला संघों को गांवो की शैक्षणिक गतिविधियों की सक्रियतापूर्वक मूल्यांकन व निगरानी करने देने के लिए विकेंदीकृत और सहभागितापूर्ण प्रबंधन का गठन करना, महिलाओं और किशोरियों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराना और औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों में महिलाओं और लड़कियों की सहभागिता बढ़ाना है।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

बघेलखण्ड का इतिहास एवं परिचय

श्री बालस्वरूप द्विवेदी
मेकलसुता महाविद्यालय डिण्डौरी

बघेलखण्ड का परिचय :– बघेलखण्ड या किसी अन्य क्षेत्र के संबंध में जानकारी अर्जित करनी है तो उसकी पहली कड़ी इतिहास ही है, जहॉ से उसकी स्थापना, उत्तरोत्तर विकास वर्तमान की तुलना में प्राप्त किया जाता है। इसी क्रम में बघेलखण्ड की स्थापना के पहले की जानकारी होना आवश्यक है कि इसका बघेलखण्ड नाम क्यों और कैसे पड़ा?

हमारे महत्वूर्ण ग्रंथों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि बघेलखण्ड की स्थापना किस प्रकार से हुई ''बघेलों के इतिहास का पल्लवन, वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति से हुआ है। भृगुपुत्र शुक्र दैत्य याजक था। शुक्र की पुत्री देवयानी ययाति को ब्याही थी देवयानी से यदु और तुर्वशु दो पुत्र पैदा हुए। जीवन के अंतिम पड़ाव में अपना राज्य पुत्रों के बीच बांटकर भृगु श्रृंग पर तपस्या करने चले गये। महाराज ययाति चौदह दीपों के स्वामी थे उन्होंने अपना राज्य इस प्रकार अपने पुत्रों में बांट दिया दक्षिण पूर्व के भू–भाग का राज्य तुर्वशु को दिया, यहॉ आजकल रीवा रियासत है।''

बघेलखण्ड के इतिहास के संबंध में ''शिवसंहिता के रेवाखण्ड में इस भू–खण्ड का उल्लेख वरूणांचल नाम से है इसे शेषावतार लक्ष्मण की राजधानी माना गया है, तेरहवीं शताब्दी में महाराज कर्णदेव को बांधवगढ़ का किला, कलचुरी नरेश से दहेज के रूप में प्राप्त हुआ था।''

महाभारत के भीष्मपर्व के अध्याय चार में पाली गांव का वर्णन किया गया है, यहॉ महाभारत काल के खण्डहरों के अवशेष पाये जाने का उल्लेख है जो पाली गांव पूर्व में शहडोल जिला का एक गांव था पर वर्तमान में नवनिर्मित जिला उमरिया का एक खण्ड है। ''बघेलखण्ड के इतिहास का केन्द्र बांधवगढ़ है जो रीवा राज्य का सुदृढ़ एवं दुर्गम दुर्ग है जो सागर तट से 2464 फीट ऊॅचे पर्वत पर स्थित है, पुरातत्व की दृष्टि से भी इसकी विशिष्टता उजागर है। बघेल शासकों के पूर्ववर्ती नरेशों के लिये यह महत्वपूर्ण दुर्ग था। बघेलों की सामृद्धि का केन्द्र बांधवगढ़ ने अनेक युद्धों को देखा सन 1498–99 में सिकन्दर लोदी ने तात्कालीन शासक से अप्रसन्न होकर इस पर आक्रमण किया था लेकिन असफलता उसे ही मिली। कहा जाता है कि महान मुगल सम्राट अकबर का जन्म भी यहीं पर हुआ था।''

''प्राचीन ग्रंथों में बघेलखण्ड का नाम 'करूष' जिसका शाब्दिक अर्थ 'क्षुधा' है, जो बघेलखण्ड का लोकजीवन अभावों और संकटों से ग्रसित रहा है। इससे नामकरण की सार्थकता सिद्ध होती है। जनश्रुति है कि करूष नाम इंद्र ने दिया था। बघेलखण्ड का बड़ा भू–भाग करूष जनपद था, यहॉ अनेक जंगली जातियॉ पूर्व में ओर वर्तमान में निवास करती हैं।''

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के अनुसार, बघेलों का प्राचीन इतिहास है– बघेली के इतिहास का पल्लवन वैदिक सभ्यता और संस्कृति से हुआ है। भृगुपुत्र शुक्र दैत्य याजक था। शुक्र की पुत्री देवयानी ययाति को ब्याही थी। देवयानी ने यदु और तुर्वशु दो पुत्र पैदा हुए। जीवन के अन्तिम पड़ाव में ययाति ने अपना राज्य पुत्रों के बीच बाँटकर भृगु श्रृंग पर तपस्या करने चले गये। महाराज ययाति चौदह दीपों के स्वामी थे। उन्होंने अना राज्य इस प्रकार अपने पुत्रों में बाँट दिया दक्षिण–पूर्व के भूभाग का राज्य तुर्वश को दिया। यहाँ आजकल रीवा रियासत है।

बघेलखण्ड और रीवा रियासत एक–दूसरे के पर्यायवची हैं। शिव–संहिता में इस भूखण्ड का उल्लेख 'वरूणांचल' नाम से है। इसे शेषावतार लक्ष्मण को राजधानी माना गया है। इस अंचल में लक्ष्मण की उपासना लोकप्रिय है। सीधी–शहडोल के गोंड आदिवासियों में लछिमन–जती का कथानक बहुप्रचलित है। वनवास काल में इस अंचल में राम, लक्ष्मण और सीता को कुल काल के लिए निवास करना पड़ा था।

भीष्म पर्व अध्याय चार में पाली गाँव के पास महाभारतकालीन खण्डहरों का पाया जाना ध्यान देने योग्य है। पाली गाँव शहडोल जिले में एक गाँव है। बघेलखण्ड के इतिहास के केन्द्र में बान्धवगढ़ है। बान्धवगढ़ रीवा राज्य का सुदृढ़ एवं दुर्गम दुर्ग है। यह दुर्ग सागर सतह से 2664 फीट ऊँचे पर्वत पर स्थित

है। पुरातत्व की दृष्टि से भी इसका वैशिष्ट्य उजागर है। बघेल शासकों के पूर्ववर्ती नरेशों के लिए यह महत्वपूर्ण दुर्ग था। तेरहवीं शताब्दी में महाराज कर्णदेव की यह कला कलचुरि नरेश से दहेज के रूप में प्राप्त हुआ था। राजकीय गजट के आधार पर कहा जा सकता है, बघेलों के समृद्धि केन्द्र बान्धवगढ़ ने अनेक युद्धों को देखा। सन् 1498–99 में सिकन्दर लोदी ने तत्कालीन शासन से अप्रसन्न होकर इस पर आक्रमण किया था। लेकिन असफलता उसे ही मिली। कहा जाता है कि अकबर का जन्म यहीं पर हुआ था।

प्राचीन ग्रन्थों में बघेलखण्ड का नाम 'करूष' मिलता है। 'करूष' का शाब्दिक अर्थ 'क्षुधा' होता है। बघेली लोकजीवन अभावों और संकटों से त्रस्त रहा। अतः करूष (क्षुआ) नामकरण की सार्थकता सिद्ध होती है। जनश्रुति है कि करूष नाम इन्द्र ने दिया था। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारत सावित्री नामक पुस्तक में उपरोक्त कथन की पुष्टि की है–

बघेलखण्ड का बड़ा भूभाग करूष जनपद था, जहाँ अनेक जंगली जातियाँ पहले और आज भी बसती हैं। प्रागैतिहासिक काल के साहियित्क और सांस्कृतिक साक्ष्य करूषांचल (बघेलखण्ड) की घाटियों में मौजूद है। ऐतिहासिक काल में यह जनपद मगध साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया। चाणक्य की चर्चित कृति 'अर्थशास्त्र' में करूष जनपद के हाथियों का वर्णन मिलता है। मगध साम्राज्य के पतन के बाद गुप्त साम्राज्य का उत्कर्ष हुआ। इस काल में यह अंचल आटवि राज्यों के अधीन था जो समयान्तर में गुप्त साम्राज्य का अंग हो गया। गुप्त साम्राज्य के अनन्तर यह भूखण्ड सम्राट हर्षवर्धन के आधिपत्य में रहा। बघेलखण्ड में वाकाटक राजाओं का दो सौ पचास वर्षो तक उत्कर्ष काल रहा जो गुप्त सम्राटों के शासन व्यवस्था कला और संस्कृति का अनुशरण किया, अजन्ता, एलोरा, इन्हीं की देन है। विन्धय शक्ति वाकाटक राज्य का संस्थापक था जो उपत्यका में स्थित स्थान से वाकाटक वंश की प्रभुता को मालवा से महाराष्ट्र और अरबसागर से बंगाल की खाड़ी तक फैली थी। महाराज उच्चकल्प बघेलखण्ड में वाकाटकों के मण्डलीक थे इस समय बघेलखण्ड का उत्तरी भाग परिव्राजकों और दक्षिण भाग पाण्डवों के आधिपत्य में था। कलचुरियों का प्रभाव बढ़ने से वाकाटकों का प्रभाव समाप्त हो गया और कलचुरी शासकों के आधिपत्य से निकलकर यह भू–भाग तेरहवीं शताब्दी में बघेलों के आधिपत्य में आया।

विन्धय पृष्ठभूमि में स्थित बघेलखण्ड के एक छोर में आम्रकूट (अमरकंटक) तो दूसरे छोर में चित्रकूट अवस्थित है जो ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति वाला यह क्षेत्र अपने मित्रता के साथ पर्वत मालाओं में आवेष्ठित है। इसके उत्तर में इलाहाबाद, पूर्व में छत्तीसगढ़ की रियासत, मिर्जापुर जिला, पश्चिम में जबलपुर के कुछ जिले एवं दक्षिण में मण्डला वर्तमान का डिण्डौरी व बिलासपुर स्थित हैं।

''बघेलखण्ड में बघेलों की शासन सत्ता स्थापित होने के पूर्व गुजरात में इनकी सार्वभौमिक सत्ता थी जिसकी राजधानी अन्हिलवाड़ा थी।'' जो ''गुजराती साहित्य के आधार पर ज्ञात होता है कि बघेल लोग चालुक्यों की एक शाखा है।'' ''बघेल शासक गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी वंश की एक शाखा है जो सोलंकी (चालुक्य राज्य) के कमजोर होने पर अन्हिलवाड़ा पर अधिकार कर लिया और सन 1945 में वहॉ के शासक बने।''

बघेली साहित्य का इतिहास :– जनपदीय बोलियां और उनकी शब्द सम्पदा कितनी समर्थ हैं, इसका आकलन दो रूपों में होता है, एक शब्द भण्डार के माध्यम से और दूसरा साहित्य रचना के माध्यम से। पहले बघेली को अवधी की चेरी माना जाता था किन्तु डॉ. हीरालाल शुक्ल की खोज के बाद यह स्पष्ट हो गया है कि बघेली की क्रियाएँ अवधी से भिन्न है। डॉ. शुक्ल ने यह भी प्रतिपादित किया है कि छत्तीसगढ़ में प्राप्त प्राचीन शिलालेख भी बघेली में है किन्तु मराठों के आधिपत्य के बाद छत्तीसगढ़ी में अन्तर आया। डॉ. भगवतीप्रसाद शुक्ल ने भी बघेली की स्वायत्तता की ओर संकेत किया है और यह माना है भी कि रचनात्मक साहित्य का अभाव बघेली में अवश्य था।

कालान्तर में साहित्यकारों ने अपनी 'बोली' का काव्य में सशक्त अभिव्यक्ति दी है। बघेली रचनाकारों की विडम्बना यह है कि इन्हें प्रकाशन की सुविधा उपलब्ध नहीं होती थी। जो मार्मिकता और भाव–क्षमता बघेली लोक साहित्य में है। यह बोली के कवियों की कविता में भी है। जिन साहित्यकारों ने बघेली में रचनाएँ की उनका वौशिष्ट्य स्वयंसिद्ध है। पं. भवानीदीन शुक्ल द्वारा रामायण के आधार पर बाल, अयोध्या, सुन्दर, अरण्य, किष्किन्धा और लंकाकाण्ड की रचना बघेली में की है, जो स्व. रामदास पयासी (सतना) के पास सुरक्षित थी। इसी प्रकार पं. देवसेवक राम ने परशुराम वार्ता खण्डकाव्य बघेली में लिखा, कृष्ण

नारायण सिंह ने कृष्णावत की रचना बघेली में की। मुन्नीलाल प्यार की बघेली 'गारियों' ने खूब प्रसिद्धि पाई। जनदीन कवि ने राम स्वयंवर की रचना बघेली में की। सन् 1921 में बाइबिल का अनुवाद बघेली में हुआ था।

सामाजिक संरचना :– बघेलखण्ड की सामाजिक संरचना के संबंध में यह निश्चित है कि यहॉ विभिन्न वर्ण के लोग पाये जाते हैं जिनमें ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, इन्ही चार वर्णो में समाज विभक्त था जिनमें ब्राम्हण की स्थिति सर्वोच्च थी जिसे राज्य एवं समाज में विशेष स्थान प्राप्त था। कर्नल वार ने कहा था कि ''रीवा के जन समुदाय में निःसंदेश ब्राम्हण सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है सम्भवतः भारत में ऐसी कोई देशी रियासत न होगी जिसमें रीवा की तरह ब्राम्हण इतने उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किये गये हों वे सबसे बड़े भू–धारक हैं। समाज के किसी अन्य वर्ग की अपेक्षा ब्राम्हण अधिक स्वतंत्र, सम्मानित और प्रभावशाली है।'' उसी क्रम में उन्हें राज्य शासन के उच्च पदों पर रखा जाता था जनता पर कर लगाने का अधिकार था इन्हें कानून के दायरे से मुक्त रखा गया था, धर्मानुसार ब्राम्हण का वध करना पाप माना जाता था।

द्वितीय वर्ण क्षत्रिय था जो राज्य परिवार से संबंधित इलाके की रक्षा, सुरक्षा का कार्य करता था। इनमें कुछ विशेष बघेल क्षत्रिय, इलाकेदार, तथा ठाकुर होते थे जो सम्मानित थे इनको पवाइयॉ दी थी। इसके संबंध में बार ने लिखा ''रीवा राज्य के अन्तर्गत इलाकों और पवाइयों की सामृद्धि को देखने से यह विदित होता है कि इन्द्र राजपूत पवाईदारों का समुदाय कितना शक्तिशाली और विशाल था।'' बघेलखण्ड की सामाजिक संरचना में वैश्य वर्ण की स्थिति तृतीय थी जो राज्यान्तर्गत व्यापार का कार्य करता था यह वर्ग धनी वर्ग में आता था जो जनता के उदर पोषण की व्यवस्था करता था।

बघेलखण्ड के समाज में ''चतुर्थ वर्ण शूद्रों का था जो अपने परम्परागत व्यवसायिक कार्यो में लगा हुआ था और इनमें श्रेणी बटी हुई थी जो उच्च श्रेणी तथा निम्न श्रेणी हुआ करती थी। निम्न श्रेणी वाले को अन्त्यज कहा जाता था।''

सामान्यतः यह अवधारणा कि प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति अपना संबंध प्राचीन ऋषि–मुनियों अथवा स्थान व व्यवसाय से जोड़ता आया था। जिससे समाज में एक ऐसी स्थिति बन गई कि वह पारम्पारिक वर्ण व्यवस्था को सम्मान की दृष्टि से देखने लगा। वर्ण विरूद्ध कार्य करने की चेष्टा नहीं करता था। बघेलखण्ड में वर्ण व्यवस्था का मूल आधार जन्म माना जाता था, जहॉ ब्राम्हण वर्ण के लोग पूजा–पाठ, ज्योतिष, पुरोहित, धार्मिक अनुष्ठान, शास्त्रीय अध्ययन अध्यापन आदि का कार्य किया करते थे। ब्राम्हण को समाज के प्रत्येक वर्ग में धार्मिक एवं सामाजिक संस्कारों को सम्पन्न कराने के लिये बुलाया जाता था। बघेलखण्ड में ब्राम्हण उच्च प्रशासनिक पदों पर भी कार्यरत थे।

कुछ ब्राम्हण कृषि कार्य भी करते थे क्योंकि बघेलखण्ड कृषि प्रधान क्षेत्र रहा ''यहॉ 79 प्रकार के ब्राम्हण पाये जाते हैं।'' जिनमें कुछ इस प्रकार हैं शुक्ला, तिवारी, मिश्र, चतुर्वेदी, द्विवेदी, सारस्वत, सरयूपारीय, कन्नौजिया, परउहा, अग्निहोत्री, सिंहतिवारी (अधरजिया), उपाध्याय, मैथिल, मड़रिहा पाण्डेय, महाराष्ट्रियन, पाठक, आदि हैं। ब्राम्हणों के बाद क्षत्रिय वर्ण का स्थान आता है, जो बघेलखण्ड में प्रशासनिक, सैनिक और सामन्तों के रूप में कार्य करते थे, जिनमें बघेल, क्षत्रिय राजा तथा उनके संबंधी होते थे, जिन्हें पवाइयॉ दी जाती थीं।

यहॉ पाये जाने वाले क्षत्रिय वर्ण के अन्तर्गत चंदेल, चौहान, कलचुरी, परिहार, सेंगर और गहरवार आते हैं। बघेल राजवंश का सदस्य जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है सिंगर प्रभाव की दृष्टि से दूसरे स्थान पर है जो पूर्व में स्वतंत्र भू–भाग के अधिकारी और शासक थे। तृतीय वर्ण वैश्य का है ''बघेलखण्ड में 63 प्रकार के वैश्य पाये जाते हैं''1 जो पशुपालन, दान, अग्निहोत्र, व्यापार, खेती आदि करते थे। यहॉ ''वैश्य वर्ण में बनिया, गुप्ता, अग्रवाल तथा किसान मानी जाती है, इसी वर्ण में लमाना जाति के लोग आते हैं जो समाज को दैनिक उपयोग की वस्तु उपलब्ध कराते थे। ये इतने सम्पन्न थे कि मंदिर और मठ का निर्माण कराते थे।''

बघेलखण्ड में चतुर्थ वर्ण शूद्र था जो समाज में अन्त्यज समझा जाता था इसका मूलकार्य तीनों वर्णो की सेवा करना था, ये निम्न रूपों में पाई जाती थीं– गडरिया, अहीर, तेली, कुम्हार, वसुहार, चमार, डोम, गोंड, भूमिया, पनिका, कोल, कॉवर, दर्जी, काछी, धोबी, खटिका, कन्हार आदि हैं। समकालिक बघेल समाज में वर्णसंकर जातियों का प्रादुर्भाव हुआ क्योंकि समाज में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह प्रचलित था जिनसे अनेक

जातियॉ उत्पन्न हुई जैसे कायस्थ, वेणुवंशी, मल्लाह, रतकार आदि हैं जो अपने व्यवसाय जनित कार्यो को करते थे इनमें कुछ जातियॉ अछूत नहीं मानी जाती हैं और कुछ को स्पर्श करना पाप माना जाता है। इसीलिये ऐसे लोग जब निकलते थे तो डफली बजाते थे ताकि उच्चवर्णी लोग देख न सकें।

भारतीय सामाजिक संरचना की जाति व्यवस्था अनूठी है जो हिन्दू धर्म द्वारा अनुमोदित है जहॉ चार वर्णो के सिद्धांत को ऋग्वेद में कहा गया है कि –

बहमणोस मुखमासीद.....

.....

ब्रम्हा के मुख से ब्राम्हण, भुजा से क्षत्रिय, पेट से वैश्य और पैरों से शूद्रो की उत्पत्ति हुई और इन्हीं वर्णो से हजारों जातियॉ और उपजातियॉ पैदा हुई।

''बघेलखण्ड में जाति व्यवस्था बहुत जटिल थी, जातिगत रूढ़िया समाज में चरमसीमा पर थीं, अपनी जाति के प्रति अत्याधिक लगाव तथा दूसरी जाति के प्रति अलग भाव होता है, प्रत्येक जाति का एक स्तर होता है, उच्च जाति में जातीय श्रेष्ठता है। जाति का निर्धारण जन्म के आधार पर होता है, जिनमें परिवर्तन सम्भव नहीं है, जाति के विरूद्ध किये गये कार्य पर जातिगत बहिष्कार होता है। प्रत्येक जाति का अपना समूह होता है जहॉ भोजन तथा वैवाहिक संबंध स्थापित होते थे प्रत्येक जाति का अपना परम्परागत व्यवसाय होता था। बघेलखण्ड में विभिन्न गांवों में यह पाया जाता है निम्न जातियों के निवास स्थान गांव के अंतिम सीमा पर होते थे, धार्मिक एवं राजनैतिक अधिकार सीमित थे, उच्च जाति की आर्थिक स्थिति उच्च एवं निम्न जाति की आर्थिक स्थिति निम्न होती थी, यहॉ सभी जातियों में जातीय पंचायत का महत्व था जो जातिगत विवादों का समाधान करने के लिये स्वतंत्र थीं।''

सामाजिक जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है जिसका सभी वर्ण के लोग पालन करते हैं, यहॉ कुछ ऐसी जातियॉ पाई जाती है जिसकी संरचना धर्म और व्यवसाय आधार पर हुई ब्राम्हण ने धार्मिक कार्य सम्पादन के कारण समाज में उच्च स्थिति प्राप्त की ब्राम्हणों ने व्यवसायगत कार्य को बढ़ाया तो उसमें कुछ उपजातियॉ बनी, इनमें महाब्राम्हण तथा ''जोगिनियाई ब्राम्हण'' है। महाब्राम्हण जाति का प्रमुख व्यवसाय अन्तेष्ठि क्रिया का सम्पादन कराना है, जोगिनियाई ब्राम्हणों का व्यवसाय तम्बूरा बजाकर भिक्षा अर्जन करना है।

''बघेलखण्ड में इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था कुरान पर आधारित थी। इनका साहित्य में हदीश प्रमुख है जिसमें मुस्लिम परम्पराओं पर प्रकाश डाला गया है। भारत में इस्लाम का आगमन हुआ, इससे इस्लाम का प्रसार हुआ जो कालिन्जर, गहोरा, बांधवगढ़ होते हुए रीवा में बस गये। यहॉ के मुसलमानों में खान, शेख, कैथहा, हकीम आदि पाये जाते हैं, अनेक व्यवसाय जनित मुस्लिम जातियॉ जुलाहा, बेहना, खोखर, धुनिया आदि यहॉ निवास करती हैं, इनमें भी दो शाखायें होती हैं सिया और सुन्नी दोनों धर्मानुयायी हैं। इनमें भी जातीय ऊॅच–नीच की भावना पाई जाती है। वैवाहिक कार्य अपने स्तर पर ही सम्पन्न करते हैं व्यवसाय के अलावा मदरसों में शासकीय संस्थाओं में धार्मिक संस्थाओं में कार्य करते हैं। मुस्लिम समाज की यह धारणा है जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निर्वहन करता है अल्लाह उससे खुश हो जाता है और ऐसा न करने पर कयामत के दिन उसे अपने किये का जबाव अल्लाह को देना पड़ता है।

जब कहीं दो समाजों का मेल होता है तो उनमें निकटता आती है और दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है, यहॉ हिन्दू समाज का अधिक से अधिक प्रभाव मुस्लिम समाज पर पड़ा। बघेलखण्ड की स्थापना काल से ही हिन्दू–मुस्लिम संबंधों में घनिष्टता रही है, मुगलों के साथ मैत्री बघेलखण्ड की स्थापना काल से ही हिन्दू–मुस्लिम संबंधों में घनिष्टता रही है, मुगलों के साथ मैत्री पूर्ण संबंध रहा जिससे दोनों के व्यवहार, बोल–चाल, भाषा, रीति–रिवाज का कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा। गुरू रामप्यारे अग्निहोत्री ने लिखा है कि ''यहॉ के हिन्दू और मुसलमानों ने एकता और सौम्यता है दोनों के रहन–सहन और व्यवहार में कोई अंतर नहीं है, यहॉ के हिन्दू और मुसलमनों के आपसी संबंध बहुत मधुर हैं।''

बघेलखण्ड की लोकसंस्कृति प्रदेश स्तर पर ही नहीं बल्कि देश की परिधी में भी जानी जाती है लोकसंस्कृति व्यक्ति के उठने–बैठने, चलने–फिरने, घरेलू कार्यो, खेलकूद तथा समाज के साथ जीवन यापन के लिये विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का एक जुड़ा हुआ नाम है लोक, संस्कृति को अस्तित्व देता और संस्कृति, लोक को व्यक्तित्व देती है। जहॉ लोक के द्वारा संस्कृति का निर्माण होता है वहीं लोक उसी में

ढ़लता है। मानवीय प्रवृत्तियॉ संस्कृत के विधाई तत्व हैं और विकास प्रक्रिया में सहायिका भी हैं। अहं, भय, प्रेम, करूणा आदि प्रवृत्तियॉ लोकजीवन को संचालित करती है और इसी से लोकसंस्कृति की संरचना और विकास प्रारंभ होता है। ''संस्कृति का निर्माण मनुष्य के लिये स्वाभाविक है किन्तु संस्कृति स्वयं मानव की कृति है और व्यक्ति संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्वारा उसे अपनाता है।

बघेलखण्ड में आभूषण धारण करने की परम्परा बहुत अधिक पाई जाती है जिनमें युवा और वृद्ध सभी अपनी इच्छानुसार सोने तथा चांदी के आभूषण पहनते थे। यहॉ आभूषण के शौकीन स्त्री ही नहीं बल्कि पुरूष भी थे। ''इस अंचल में निम्न आभूषण बहुटा, चुरवा, सकरी, पाटा, ठरकुलियॉ, खोसबा, बिछुवा, पहुॅची, ककना, झुलनी, बाजूबंद, वेसर, तिलरी, खग्गी, नथुनी, छन्नी, गजड़ा, नउगिरही, छापमुंदरी, दामिनी, छड़ा, दोहटी, बंगलिया, मुर्रा (कड़ा), मुकइयॉदाना, दसवंद, तोड़ा, छैलचूरी, झांझड़ा, घुंघरू, चौरासी, सिक्का, पायल, पायजेहर, छिंगी, पलानी, हेवाल, गुलूबंदकरवा, कर्णफूल आदि का प्रचलन था।''

''वेश–भूषा के संबंध में यहॉ के अधिकांश भाग पहाड़ी और जंगली थे, जहॉ जंगली जातियों कि संख्या बहुत अधिक है उनकी वेशभूषा लगोटी पहनना है, इनमें कुछ ही ऐसे थे जो आंगोछी या चादर से शरीर ढ़कते हैं, यहॉ के बड़े आदमी धोती और मिरजई पहनते हैं और अंगोछी धारण करते हैं। सिर पर मुरैठा बांधने की परम्परा है खास अवसरों पर 'उपन्ना' जामा नाम का एक लम्बा 'ओवर कोट' पहनते थे। कुछ लोग सिर पर पगड़ी बांधते थे, कुछ लोग दो पलिया, गोली, कामदार टोपी पहनते थे।'' किन्तु वर्तमान में पश्चिमी सभ्यता या आधुनिकीकरण का प्रभाव क्रमशः वेशभूषा पर पड़ा जहॉ लोग मिरजई का उपयोग करते थे उसके स्थान पर कुर्ता का उपयोग किया जाने लगा ओवर कोट के स्थान पर कोट–पैन्ट का उपयोग किया जाने लगा। पगड़ी और टोपी का प्रचलन कम हुआ है बल लोगा विलायती साज–सज्जा को अपना रहे हैं।

बघेलखण्ड में ''खान–पान का तौर तरीका परम्परागत रहा है, क्योंकि यहॉ के निवासी उतने साधन सम्पन्न नहीं होते थे कि उच्च स्तरीय खान–पान का व्यवहार कर सकें। यहॉ सामान्य रूप से गेंहू के आटे की रोटी, दाल, भाजी, कढ़ी, मसलहा, बगजा, इंद्रहर, भात, खीर, फुलउरी, मिठखोर, गोलहंथी, महेरी, खिचरी, लौबरा, बरा, बरी, कॉकीलप्सी, दालपूरी, रिकमज, सोहारी, कुसुली, दरिया, पपरी, सेमई, उसिना, सेतुआ, मउहरी, फरा, कतरा, डोभरी, लाटा आदि का सेवन करते हैं। किन्तु खास उत्सवों पर विशेष भोजन सामग्री बनाते हैं जिनमें शाकाहारी और मांसाहारी का प्रयोग किया जाता है, जो अपने–अपने स्तर और हैसियत के अनुसार बनवाया जाता है निम्न वर्ग के लोग मोटे अन्न की रोटी, मठ्ठा खाकर गुजारा करते थे यहॉ प्रातः कलेवा तथा शायःकाल में संझलौका करने का प्रचलन था।'' आधुनिक खान–पान का प्रभाव शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भी पड़ा है जो पूर्व के व्यंजनों को प्रभावित कर नवीन खानपान ने लिया है जहॉ बघेलखण्ड में किसी उत्सव में भोजन की व्यंजनों को प्रभावित कर नवीन खानपान ने लिया है जहॉ बघेलखण्ड में किसी उत्सव में भोजन की व्यवस्था पंगत के रूप में कराई जाती थी वहीं आज पंगत में नहीं बल्कि वफर सिस्टम में होने लगा है, जो आज के समाज के अनुरूप है।

बघेलखण्ड में खेल के लिये उच्च कोटी के लोग अपने घर में चौपड़, ताश, गंजीफा और शतरंज खेलते हैं, जो इलाकेदार थे वे जंगलों में जाकर शिकार करते थे और मध्य वर्ग के लोग बाहर खेलने नहीं जाते थे लेकिन घर में ताश और शतरंज खेलते थे।

यहॉ के कुछ और खेल हैं जो शारीरिक शक्ति को बढ़ाते ओर शरीर में स्फूर्ति भरते हैं। यहॉ के बालकों के बीच खेले जाने वाले खेल आटा–पाटी, पिटाव, चुर्रापटकी, कब्बड़ी, बादी आदि हैं। आधुनिक समय में पश्चिमी लोगों के आगमन के बाद यहॉ के कुछ खेलों में बदलाव आया और नवीन खेल प्रारंभ हुए जिनमें टेनिस, फुटवॉल, बेडमिंटन, खो–खो, बास्केटवॉल, हैण्डवॉल, हॉकी, क्रिकेट आदि का प्रचलन बढ़ा।

बघेलखण्ड में उत्सव तथा त्योहारों का परम्परागत स्थान था, यहॉ का राजकीय उत्सव दशहरा को माना जाता था, जिस दिन समस्त इलाके में शस्त्रों की पूजा की जाती थी इसे विजयादशमी के रूप में मनाते थे, सभी सेना के जवान राजा के सेनापति शस्त्रों से सुसज्जित होकर रण कार्य के लिये निकलते थे, प्रजा वर्ग अपने राजा को नजर न्यौछावर करता था, बघेलखण्ड में त्योहारों की बहुलता है जिसे दो श्रेणियों में रखा गया है सांस्कृति त्योहार मकर संक्रांति, बसंत पंचमी, शिवरात्रि, रामनैवीं, अक्षय तृतीया, वटसावित्री, हरिशैनी एकादशी, नागपंचमी, रक्षाबंधन, हरछठ, बहुराचौथ, जन्माष्टमी, तीजा, दशहरा, धनतेरस,

दीपावली, खजुलइयां, होली आदि मनाये जाते हैं। राष्ट्रीय त्यौहार स्वाधीनता दिवस, गणतंत्र दिवस, महात्मा गांधी जयंती मनायी जाती है।

बघेलखण्ड में लोग अपने मनोरंजन के लिये विभिन्न साधनों का प्रयोग करते आये हैं। यहॉ लोकनृत्य, लोकगीत का विशेष महत्व है। लोकनृत्य मनुष्य की रूचि, श्रम और कला के बीच सूत्र है जिसमें मानव प्रकृति के चमत्कार और सौन्दर्य से प्रभावित हुआ तथा उसके मनोभाव भीतर समा जाते हैं जिससे खुशी में झूम उठता है यहीं से नृत्य का जन्म होता है। ''भावना से उद्वेलित संचालन ही नृत्य है।''

लोकनृत्य को निम्न भागों में बांटा गया है –

सामाजिक लोकनृत्य – इसके अन्तर्गत देवीपूजन, पुत्रजन्मोत्सव, होली, विवाह, मेला उत्सव और जातीय।
धार्मिक लोकनृत्य – देवीपूजन, रामलीला, रासलीला।
व्यावसायिक लोकनृत्य – निम्नवर्गीय नृत्य, वैश्या नृत्य, हिजड़े।

यहॉ जनजातीय क्षेत्रों में करमा, शैला नृत्य प्रमुख हैं, बीछी नृत्य, केहरा–पोता आदि हैं जो यहॉ लोकप्रिय हैं।

लोकगीत का बघेलखण्ड में कॉपी व्यापक प्रभाव है जो यहॉ कि संस्कृति के अनुरूप, जो धार्मिक, सामाजिक कार्यक्रम होते हैं उसी के आधार पर गीत गाये जाते हैं जिस तरह से करमा लोकनृत्य के साथ करमा गीत गाया जाता है, शैला में शैलागीत गाया जाता है, कोलदहका में दादर गीत गाया जाता है, बीछी में विरहा और केहरा–पोता में दादर गीत समूह में मिलकर गाया जाता है। ठीक इसी तरह धार्मिक कृत्यों में देवी पूजन के समय देवीगीत, भजन, शिवपूजन में भोलदनिया, कथा, भागवत में भगवान के भजन आदि गाये जाते हैं। होली में फाग, सावन महीने में झूला डाला जाता है, तब कजरी, हिंडोलागीत प्रचलित है। पुत्र के जन्मोत्सव पर सोहर, उसके मन बहलाने के लिये लोरी, मुण्डन में सोहर, यज्ञोपवीत में बरूआ, विवाह के समय विवाहगीत, सुहागगीत, बनरा, पूड़ी बेलते समय बेलनहाई गारी, द्वारचार में द्वारचार का गीत, भोजन के समय गारी, भंवरी गीत, परछन गीत, बारामासी गारी, दादरा आदि लोकगीत बघेलखण्ड में प्रचलित हैं। जिन्हें यहॉ पूरे उत्साह के साथ गाया जाता है। आधुनिक समय में पश्चिमी सभ्यता से जुड़े हुए गाने फिल्मी अंदाज में गाये जा रहे हैं जहॉ पर हमारी सांस्कृतिक धरोहर के लोकगीत प्रायः लुप्त होने लगे हैं। बघेलखण्ड में चित्रकला का व्यापक प्रसार था।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. बघेली का शब्द सामर्थ्य डॉ. अयोध्या प्रसाद सिंह मधुकर प्रथम संस्करण 1994 शेखर प्रकाशन इलाहाबाद।
2. सीधी जिले का साहित्य एवं सांस्कृतिक विकास श्री निवास शुक्ल सरस द्वितीय संस्करण 2005, सिद्धान्त पब्लिकेशन सीधी।
3. अॅजुरी भर अॅजोर श्री निवास शुक्ल सरस प्रथम संस्करण 2003, सिद्धान्त पब्लिकेशन सीधी।
4. चिरई–चुनूगुन डॉ. भागवत प्रसाद शर्मा प्रथम संस्करण 2009 कुमार प्रकाशन रीवा म.प्र.।
5. हम बोलब डॉ. अमोल बटरोही प्रथम संस्करण 2006 चिरकारी प्रकाशन रीवा म.प्र.।
6. रूद्र शाह श्री निवास शुक्ल सरस प्रथम संस्करण 2004, सिद्धान्त पब्लिकेशन सीधी म.प्र
7. बघेली भाषा और साहित्य – डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल प्रथम संस्करण 1971, साहित्य भवन, प्रा. लि. इलाहाबाद।
8. बघेली लोक रागिनी (भाग1–2) डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल प्रथम संस्करण 1956–सूचना एवं प्रचार विभाग, विन्ध्य प्रदेश, रीवा।
9. हिन्दी और उसकी विविध बोलियां, प्रो. दीपचन्द्र जैन एवं डॉ. कैलाश तिवारी प्रथम संस्करण म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
10. भारत का भाषा सर्वेक्षण भाग 6 जार्ज ग्रियर्सन (अनुवाद) डॉ. रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, प्रथम संस्करण 1967 हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तरप्रदेश लखनऊ।
11. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास डॉ. उदयनारायण तिवारी भारतीय तृतीय संस्करण संवत् 2006 भारतीय भंडार लीडर प्रेस इलाहाबाद।
12. बघेली लोक गीत– श्री लखन प्रताप सिंह 'उरगेश'–प्रथम संस्करण 1953, उरगेश विद्या–भवन कटिया, माधवगंढ़, सतना।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर के विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर सतत् एवं समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

नीतू बाला दाधीच
पीएच.डी. छात्रा, शिक्षा संकाय
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड–टू–बी) विश्वविद्यालय, उदयपुर
प्रो. शशि चित्तौड़ा
प्राचार्या एवं अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, लोकमान्य तिलक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय(सीटीई), डबोक
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड–टू–बी) विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध सारांश :– प्रस्तुत शोध का उद्देश्य प्रधानाध्यापकों के अनुसार प्राथमिक स्तर पर सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति का अध्ययन करना है। विभिन्न क्षेत्रों के अन्तर्गत कक्षा कार्य, गृहकार्य, प्रोजेक्ट कार्य, मूल्यांकन, आई.टी. का प्रयोग, पाठ्य–सहगामी गतिविधियॉं व प्रशिक्षण को लिया गया है। प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुरके राजकीय व निजी विद्यालयों में CCE की वस्तुस्थिति का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध सर्वेक्षण विधि द्वारा किया गया दत्त संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया। न्यादर्श हेतु 40 प्रधानाध्यापकों का चयन किया गया। दत्त के सांख्यिकीय विश्लेशण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि की गणना कर क्रान्तिक अनुपात की गणना की गई है।

शोध के निश्कर्श इस प्रकार है–प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूंगरपुर जिलों के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति समान है।

Keywords :- CCE – Continuous & comprehensive Evaluation. सतत्, समग्र, मूल्यांकन, वस्तुस्थिति।

प्रस्तावना :– शिक्षा एक व्यापक प्रक्रिया है जिसके द्वारा विद्यार्थियों की आन्तरिक क्षमताओं का विकास करने के साथ–साथ ही उनके व्यक्तित्व को सामाजिक व राश्ट्रीय दृश्टि से उपयोगी बनाने का भी प्रयत्न किया जाता है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति में मानवता का बोध व सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करना सम्भव है। अतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षा वह शैक्षिक आयोजन है जिसमें विद्यार्थियों को ज्ञान व मूल्यों के हस्तान्तरण के साथ–साथ शैक्षिक व विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण व वहन करने योग्य बनाने का प्रयास किया जाता है।

शिक्षा द्वारा बालक के व्यवहार को परिमार्जित करने का कार्य शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के तीन अभिन्न अंग–शिक्षण उद्देश्य, शिक्षण अधिगम प्रक्रिया व मूल्यांकन है और ये तीनों अंग एक दूसरे पर निर्भर है। शिक्षाक्रम, उद्देश्य सापेक्ष है, जिसका निर्णय मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव है। यदि नही तो तद्नुकूल शिक्षाक्रम में सुधार किया जाता है।

वर्तमान मूल्यांकन प्रक्रिया नकारात्मक है जिसमें यह देखा जाता है कि बच्चा क्या नहीं जानता बजाए यह देखने के कि बच्चा क्या जानता है। सामान्यतया परीक्षा तनाव और चिन्ता को जन्म देती है। CCE प्रणाली परम्परागत मूल्यांकन प्रणाली से उत्पन्न तनाव को कम करने का एक प्रयास है। इसके द्वारा नियमित रूप से निश्चित समयान्तराल में सीमित विशय–वस्तु को लेकर बालकों की अधिगम उन्नति के बारे में जानने का प्रयास किया जाता है जिससे प्रत्येक विद्यार्थी की अधिगम आवश्यकताओं और अन्तर्निहित क्षमताओं के अनुसार उपचारात्मक साधन नियोजित किए जा सके।3

अध्ययन के उद्देश्य :–

1. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर के समग्र विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर

CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

4. प्रधानाध्यापकों के अनुसार डूँगरपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर जिले के राजकीय विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
6. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर जिले के निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ :–

1. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर जिले के समग्र विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति में सार्थक अन्तर नहीं है।
4. प्रधानाध्यापकों के अनुसार डूँगरपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति में सार्थक अन्तर नहीं है।
5. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर जिले के राजकीय विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति में सार्थक अन्तर नहीं है।
6. प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर जिले के निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति में सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन का परिसीमन :– अध्ययन में उदयपुर व डूँगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों को सम्मिलित किया गया। राजकीय विद्यालय–राजस्थान सरकार द्वारा संचालित। शोध अध्ययन निम्न प्राथमिक स्तर कक्षा 1 से 5 तक के विद्यार्थियों तक सीमित रखा गया।

अध्ययन विधि :– प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श :– न्यादर्श हेतु 40 (20 राजकीय व 20 निजी) विद्यालयों का चयन तथा प्रत्येक विद्यालय के प्रधानाध्यापक का चयन वस्तुस्थिति जानने हेतु किया गया।

प्रदत्त विश्लेषण :– प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भ में प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय प्रविधियों में मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं क्रान्तिक अनुपात की गणना की गई है।

उपकरण :– शोध के सन्दर्भ में सम्बन्धित प्रदत्तों के संकलन हेतु सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति जानने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

प्रदत्तों का प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण एवं विवेचन :– प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर सतत् व समग्र मूल्यांकन (CCE) प्रणाली की वस्तुस्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

सारणी संख्या 1

उदयपुर व डूँगरपुर जिले के समग्र विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर सतत् व समग्र मूल्यांकन (CCE) प्रणाली की (प्रधानाध्यापकों के अनुसार) वस्तु स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण

विद्यालय	कुल N	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान की मान त्रुटि	मध्यमान अन्तर	टी–मान	P–मान
उदयपुर समग्र	20	15.2	2.397	38	0.15	0.188	<0.01
डूँगरपुर समग्र	20	15.35	2.518				

व्याख्या :– उपर्युक्त सारणी संख्या 1 का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उदयपुर व डूँगरपुर के समग्र विद्यालयों में प्रधानाध्यापकों के अनुसार CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति में टी–का मान 0.1 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः परिकल्पना संख्या 1 उदयपुर व डूंगरपुर के समग्र विद्यालयों में CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति में सार्थक अन्तर नहीं है, स्वीकृत की जाती है व उदयपुर व डूँगरपुर दोनों जिलों के समग्र विद्यालयों में प्रधानाध्यापकों के अनुसार CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति समान पायी गई।

सारणी संख्या 2

उदयपुर एवं डूँगरपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर CCE प्रणाली की (प्रधानाध्यापकों के अनुसार) वस्तु स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण

विद्यालय	कुल N	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान की मान त्रुटि	मध्यमान अन्तर	टी–मान	P–मान
उदयपुर एवं डूँगरपुर राजकीय विद्यालय	20	15.65	2.601	38	0.75	0.951	<0.01
उदयपुर एवं डूँगरपुर निजी विद्यालय	20	14.9	2.245				

व्याख्या :– उपर्युक्त सारणी संख्या 2 का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उदयपुर व डूँगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्रधानाध्यापकों के अनुसार सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (CCE) प्रणाली की वस्तुस्थिति में टी–का मान 0.01 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः परिकल्पना संख्या 2 उदयपुर व डूंगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति में सार्थक अन्तर नहीं है, स्वीकृत की जाती है व उदयपुर व डूँगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों के अनुसार CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति समान पायी गई।

सारणी संख्या 3

उदयपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली (CCE) की (प्रधानाध्यापकों के अनुसार) वस्तु स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण

विद्यालय	कुल N	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान की मान त्रुटि	मध्यमान अन्तर	टी–मान	P-मान
उदयपुर राजकीय	10	15.7	2.263	18	1	0.881	<0.01
उदयपुर निजी	10	14.7	2.540				

व्याख्या :–उपर्युक्त सारणी संख्या 3 का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में सतत् तथा व्यापक मूल्यांकन (CCE) प्रणाली की वस्तुस्थिति में टी–का मान 0.01 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः परिकल्पना संख्या 3 स्वीकृत की जाती है। स्पष्ट है कि उदयपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों दोनों विद्यालयों में प्रधानाध्यापकों के अनुसार CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति समान पायी गई।

सारणी संख्या 4

डूँगरपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली (CCE) की (प्रधानाध्यापकों के अनुसार) वस्तु स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण

विद्यालय	कुल	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान की मान त्रुटि	मध्यमान अन्तर	टी–मान	P–मान
डूँगरपुर राजकीय	10	15.6	3.025	18	0.5	0.411	<0.01
डूँगरपुर निजी	10	15.1	2.024				

व्याख्या :– उपर्युक्त सारणी संख्या 4 का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उदयपुर व डूँगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्रधानाध्यापकों के अनुसार सतत् व व्यापक मूल्यांकन (CCE) प्रणाली की वस्तुस्थिति में टी–का मान 0.01 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः परिकल्पना संख्या 4 स्वीकृत की जाती है। तात्पर्य यह है कि उदयपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में प्रधानाध्यापकों के अनुसार CCE प्रणाली की वस्तुस्थिति समान पायी गई।

सारणी संख्या 5

उदयपुर व डूँगरपुर जिले के राजकीय विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली (CCE) की (प्रधानाध्यापकों के अनुसार) वस्तु स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण

विद्यालय	कुल N	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान की मान त्रुटि	मध्यमान अन्तर	टी–मान	P-मान
उदयपुर राजकीय	10	15.7	2.263	18	0.1	0.079	<0.01
डूँगरपुर राजकीय	10	15.6	3.025				

व्याख्या :– उपर्युक्त सारणी संख्या 5 से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक स्तर पर सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति जानने हेतु गणना का मान 0.01 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः परिकल्पना संख्या 5 स्वीकृत की जाती है। स्पष्ट है कि उदयपुर व डूँगरपुर जिले के राजकीय विद्यालयों में प्रधानाध्यापकों के अनुसार CCE प्रणाली की वस्तु स्थिति समान है।

सारणी संख्या 6

उदयपुर व डूँगरपुर जिले के निजी विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर सतत् व समग्र मूल्यांकन (CCE) प्रणाली की (प्रधानाध्यापकों के अनुसार) वस्तु स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण

विद्यालय	कुल	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान की मान त्रुटि	मध्यमान अन्तर	टी–मान	P–मान
उदयपुर निजी	10	14.7	2.540	18	0.4	0.369	<0.01
डूँगरपुर निजी	10	15.1	2.024				

व्याख्या :– उपर्युक्त सारणी संख्या 6 से स्पष्ट होता है कि प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूँगरपुर जिले के निजी विद्यालयों में सतत् व समग्र मूल्यांकन (CCE) प्रणाली की वस्तुस्थिति जानने हेतु गणना का माध्य 0. 01 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः परिकल्पना संख्या 6 स्वीकृत की जाती स्पष्ट है कि उदयपुर व डूँगरपुर के निजी विद्यालयों में प्रधानाध्यापकों के अनुसार सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तु स्थिति समान है।

शोध निष्कर्ष :–

1. उदयपुर व डूंगरपुर के समग्र विद्यालयों में सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। तथा प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूंगरपुर के समग्र विद्यालयों में CCE की वस्तुस्थिति समान पाई गई है।
2. उदयपुर व डूंगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। तथा प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूंगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में CCE की वस्तुस्थिति समान पाई गई है।
3. उदयपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। तथा प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में CCE की वस्तुस्थिति समान पाई गई है।
4. डूँगरपुर जिले के राजकीय व निजी विद्यालयों में सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। तथा प्रधानाध्यापकों के अनुसार डूँगरपुर के राजकीय व निजी विद्यालयों में CCE की वस्तुस्थिति समान पाई गई है।
5. उदयपुर व डूंगरपुर के राजकीय विद्यालयों में सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। तथा प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूंगरपुर के राजकीय विद्यालयों में CCE की वस्तुस्थिति समान पाई गई है।
6. उदयपुर व डूंगरपुर के निजी विद्यालयों में सतत् व समग्र मूल्यांकन प्रणाली की वस्तुस्थिति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। तथा प्रधानाध्यापकों के अनुसार उदयपुर व डूंगरपुर के निजी विद्यालयों में CCE की वस्तुस्थिति समान पाई गई है।

सन्दर्भ सूची :–

1. Best J.W. and James V. Kahn(2006), Research in education (9th edition) South Asia Kindersley (India) Pvt. Ltd.
2. Good, Bar & Scates(1954), Methodology of Educational Research, New York : Hall Rinchart and Western.
3. Kapil H.K.(2006), ''सांख्यिकी के मूल तत्व'' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
4. त्यागी, गुरूसरन दास(2007–08)–प्रारम्भिक शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
5. Arora P.N. and Agrawal, M(1993), "Frame work of Continuous and Comprehensive Evaluation for upper primary and secondary stage(Mimeo)" NCERT, New Delhi.
6. नया शिक्षक–माध्यमिक शिक्षा राजस्थान, बीकानेर, (जुलाई–सितम्बर, 2012)
7. शिविरा पत्रिका, अक्टूबर, 2014

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

बदलता हुआ परिवेश और बैगा जनजाति की गोदना परंपराएं

डॉ. सुरेन्द्र लिल्हारे
अतिथि विद्वान, इतिहास विभाग, शासकीय महाविद्यालय सिंगोली नीमच

मानवजाति को रंग, रूप, आकार, शारीरिक बनावट और विशेषताओं के आधार पर अनेक समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं। इन वर्गीकृत समूहों को प्रजाति के नाम से जाना जाता है। वर्तमान भारतीय समाज अनेक प्रजातियों का सम्मिलित रूप है। ऐतिहासिक एवं आर्थिक सामाजिक प्रभावों ने देश की अधिसंख्य जनसंख्या को बाह्य और सीमित दशाओं में एकरूपता प्रदान की है, लेकिन भारत की जनसंख्या का एक भाग इन प्रभावों से अपेक्षाकृत अप्रभावित रहा है, इस भाग के अन्तर्गत भारत के प्राचीनतम निवासियों के वंशजों के छोटे बड़े समूह आते है, जो आज भी संस्कृति एवं विकास के आरम्भिक धरातल पर जीवनयापन कर रहे हैं। वर्तमान में इनके वंशओं के छोटे बड़े समूहों को ही आदिवासी एवं जनजाति के नाम से जाना जाता है।

जनजातियां भारत की वह स्थानीय मानव प्रजातियां है, जिसकी भारतीय संस्कृति के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत में आदिवासियों की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 8.6 फीसदी है। वर्तमान में देश में 425 से अधिक जनजातियाँ निवासरत है। मानव शास्त्रियों का मत है कि आदिवासियों के अधिकांश समूह नीग्रिटो और प्रोटोआस्ट्रेलॉयड अथवा मंगोलॉयड प्रजातियों के वंशज हैं। भौगोलिक दृष्टि से आदिवासियों के समूहों को चार प्रमुख भागों मे बांटा जा सकता है इनमें उत्तर और उत्तर पूर्व क्षैत्र, मुख्य क्षैत्र, पश्चिम क्षैत्र एवं दक्षिण क्षेत्र भाामिल हैं। इनमें जनजातीय जनसंख्या की दृश्टि से मध्य क्षेत्र अत्यधिक ही महत्वपूर्ण है। इनमें बिहार के संथाल और बिरहार, उत्कल के वोदों, खोंड, सवरा, जुआड़ा तथा मध्यप्रदेश के गौंड, बैगा, कोरकू, कमार, भुंजिया आदिवासी आदि शामिल हैं।

बैगा जनजातिः परिचयात्मक संदर्भ :– बैंगा छोटा नागपुर की आदिम जनजाति भुईयां की मध्यप्रदेशीय शाखा है। बाद में इन्हैं भूमिया बैगा कहा जाने लगा। सबसे पहले बैगाओं ने छोटा नागपुर के रास्ते छत्तीसगढ़ में प्रवेश किया। तत्पश्चात ये मध्यप्रदेश के मंडला, डिंडौरी, शहडोल, अनुपपुर, उमरिया, बालाघाट जिलों में निवास करने लगे। बैगा शारीरिक बनावट के हिसाब से भयाम वर्णीय, गठीले, हष्ट पुष्ट होते है। इनकी नाक चपटी व ललाट चौडे होते हैं। बैगा औसत कद काठी के होते है। बैगा मध्यप्रदेश की विकास की दृश्टि से अत्यंत पिछड़ी जनजातियों में से एक है। साथ ही अपनी आदिमता के अंतिम पड़ाव में है। बैगा परम्परा से सामूहिक जीवन जीने के आदी हैं।

बैगाओं की सामाजिक संरचना आंतरिक रूप से अत्यंत ही सुव्यवस्थित एवं संगठित है। बैगा समाज पुरूष प्रधान है, लेकिन आदिम बैगा समाज आन्तरिक रूप से स्त्रियों को अन्य विकसित समाजों की तुलना में अधिक स्वायत्तता, स्वच्छदता एवं स्वतंत्रता प्रदान करता है। वहीं इनकी राजनैतिक व्यवस्था पंचायत आधारित होती है। पंचों द्वारा दिया गया निर्णय ही सर्वमान्य होता है। किसी भी समाज की आर्थिक व्यवस्था समाज का महत्पूर्ण अंग होती है, लेकिन इस मामले में बैगा अत्यंत ही पिछड़े हैं। बैगा समाज में खेतीबाड़ी, घेरलु धंधे, पशु पालन, मजदूरी इत्यादि इनकी आर्थिक गतिविधियों का मुख्य आधार है। बैगा परम्परागत खेती करने में विश्वास करते है। बैगा जनजाति का परम्परागत संचार अत्यंत ही समृद्व एवं चिरकालिक हैं। बैगा जनजाति संचार या संदेशों के संप्रेशण के लिए कई माध्यमों का उपयोग करते है। एक तरह से बैगाओं की सम्पूर्ण जीवनप्रक्रिया ही संवाद करती हुई दिखायी पड़ती है। चाहे उनके धार्मिक विश्वास हो या फिर विवाह हो या जन्म–मृत्यु संस्कार सभी के सभी बैगाओं की पुरातन जीवनचर्या को संप्रेशित करते है। बैगाओं का शायद ही ऐसा कोई क्रियाकलाप होगा, जिमसमें संचार न हों। बैगाओं में संचार के तीन प्रारूपों, अन्तराव्यैक्तिक, अन्तरव्यक्तिक, समूह दृष्टिगत होते है हालांकि समय के साथ इनकी संचार प्रक्रियाओं में अंतर आया है। चाहे ये अंतर भाषागत हो या फिर सांस्कृतिक–सामाजिक बदलाव के कारण हो। 2001 की जनगणना के आंकड़ो के आधार पर ये जनजाति अपने मूलस्थानों से स्थानांतरित होकर प्रदेश के लगभग आधे जिलों में पहुंच चुकी हैं। यानि ये अपने मूल स्थान से अलग हो रहे हैं। स्वाभाविक है ये

खुद को एक नए आर्थिक सामाजिक परिवेश में खुद को ढालने की जद्वोजहद में लगे हैं।

बैंगा जनजाति के लोग जैसे–जैसे दुर्गम पहाड़ों, उपत्काओं से बाहर आते नए हालाकि ये दर बहुत ही कम है ने पर–संस्कृति ग्रहण की प्रक्रिया को आत्मसात किया है, उदाहरण के लिए बंगाल के संथाल जनजाति के व्यक्तियों ने न केवल हिन्दू संस्कृति को आत्मसात किया बल्कि ये अपने बच्चों के नाम भी हिन्दूओं के नामों की तरह रखने लगे, लेकिन पर – संस्कृति ग्रहण के कारण कई समस्याएं भी उठ खड़ी हुई, जिनका प्रभाव जनजातियों के सामूहिक जीवन पर पड़ने लगा, खुद की जाति के प्रति हीनता का भाव पैदा हुआ, अनैतिकता के जन्म लिया, साथ ही आर्थिक विशमता ने घर कर लिया इसके अलावा पर–सांस्कृतिक संपर्क का एक दुष्परिणाम बीमारियों में वृद्वि भी रहा। इनका सामाजिक नियंत्रण ढीला हुआ, लेकिन इन सब के साथ सबसे बड़ा प्रभाव यह रहा है कि जनजातियों का लोप ही हो गया।

वर्तमान समय जनमाध्यमों का है और जनजातियां विकास की मुख्य धारा से जुड़ने को आतुर नजर आ रही है। ये बात सत्य है कि जनजातीय क्षैत्र जंगलों एवं पहाड़ों के बीच अवस्थित है। जहां जाना एवं सम्पर्क साधना अत्यंत ही कठिन है। ऐसे में जनमाध्यमों की पहुंच जनजातीय समाज में अत्यल्प है, लेकिन वर्तमान में जनमाध्यमों की पहुँच का दायरा विस्तृत हुआ है। आज आकाशवाणी से कार्यक्रम देश के हर हिस्से में सुने जा सकते हैं। जनमाध्यमों की पहुंच आदिवासी क्षेत्रों में बढ़ रही है। सरकार की मदद से आदिवासी बहुल क्षेत्रों में कम्युनिटी रेडियो के कार्यक्रम प्रसारित किया जा रहे है। जिनमें आदिवासियों के लिए आदिवासियों द्वारा ही कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है। इन प्रसारणों के कारण ही जनजातीय समाज में एक चेतना विकसित हुई है, जिसके कारण ही जनजातीय समाज, सामजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक बदलावों से गुजर रहा है। बावजूद इन सब के बैगा जनजाति समुदाय अभी भी अपनी परंपरागत विरासत को संजोए हुये है। ये बात सत्य है कि इनमें क्षरण दृष्टिगोचर हुआ है लेकिन आज भी ये पंरपराएं अनवरत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी जारी है।

लोक जीवन में संचार परंपराएं :– सृष्टि में संजीव–निर्जीव सभी अपनी–अपनी पंरपराओं में बंधे हुए है और इस तरह की मान्यताओं का प्रतिपादन भारतीय मनीशियों ने प्राचीन काल में ही किया है। वही विश्व की प्राचीनतम पंरपराओं में से एक भारतीय पंरपरा के कई रूपों का अध्ययन भी भारतीय मनीशियों ने अत्यंत ही गहनता से किया है। पंरपराएं सामान्यतः मानवीय समझ विकसित होने के साथ ही सभ्यता की शुरूआत से ही जुड़ी हुई हैं। यही कारण है कि भारत के प्रत्येक समाज या समुदाय की पहचान देश–दुनिया में आज भी पंरपरागत समाज के रूप में ही है। सही मायनों में लोग जिसे अपनी परिपाटी कहते है वही परिमार्जित रूप में परम्परा है। पंरपरा हमेशा लोक संवाहकों द्वारा संवहित होती है, वहीं लोक–पंरपराओं को संवहित करने में पांरपरिक विधियों की परम आवश्यकता होती है। वर्तमान में माध्यमों का जो स्वरूप देखने को मिल रहा है कहीं न कहीं पारंपरिक माध्यम ही इनके मूलाधार में है। पांरपरिक माध्यम हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, साथ ही लोगों के सुख–दुःख, हर्श, धर्म–कर्म आदि के लिए सेतु का काम करते है। पांरपरिक माध्यम लोक जीवन में सामुदायिक संपर्क तक ही सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक संवाद तथा सामाजिक सह–शिक्षण में भी मददगार है।'' ''भारतीय समाज में पंरपराओं तथा प्रथित मान्यताओं की एक विशाल श्रृंखला मिलती हैं। भारतीय समाज में लोक–पंरपराओं को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। पंरपराएं हर स्थिति–परिस्थिति में समाज के लिए अनुकरणीय तथा स्वीकार्य होती है।

लोक–संस्कृति मानव की वह जीवन शैली है जिसे उसने अपनी बुद्वि की कुशाग्रता, मन की सौंदर्य–भावना से सजाया और संवारा है। लोक–संस्कृति, लोक–मानव के मन और बुद्वि के सामंजस्य का वह रूप है जिसमें उसकी बौद्विक कुशलता के साथ–साथ हृदय की सहजाभिव्यक्ति होने के कारण एक प्रकार का अनगढ़पन भी मिश्रित हो यगा है । डॉ. श्यामाचरण दुबे ने भी अपनी पुस्तक मानव और सांस्कृति में लिखा है कि आदिकाल से ही मानव प्रकृति के सामान्य रूप से संतुष्ट नही रहा है। सौन्दर्य–वृद्वि तथा सौन्दर्य–दृष्टि की और नैसर्गिक रूप से उसकी प्रवृत्ति नही है।'' मानवीय इतिहास में भाायद ही कोई मनुष्य या समुदाय हो जो प्राकृतिक एवं मानवीय संबंधों से अलग–थलग रहा हो। वहीं कोई भी चिंतन समाज का परोक्ष या अप्रत्यक्ष आकलन किए बिना प्रकट नहीं हो सकता। ''सौन्दर्य के प्रति मानव का रूझान अत्यंत प्राचीन है ..... मानव कला के बिना जीवित रह सकता है, परन्तु संसार के प्रत्येक भाग में

उसने कला का कोई न कोई रूप – नृत्य, संगीत, चित्रण, स्थापत्य अवश्य ही विकसित किया है। मानव की कलात्मक चेतना के शारीरिक और मानसिक आधार का विश्लेषण संतोषजनक रूप में अभी तक नहीं हुआ है। इस प्रकार के विश्लेषण के अभाव में केवल यही कहा जा सकता है कि अपनी अन्त चेतना की कतिपय उलझनों और तनावों को दूर करने के लिए ही कला की सृष्टि करता है।''

संचार की कई विधाएं सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही विकसित हुई हैं। इन विधाओं में अधिकांश विधाए मनोरंजनता का पुट लिये हुए हैं। प्रारंभिक स्तर पर जहां मनोरंजन के साधन के तौर पर इन विधाओं का उपयोग किया जाता था वहीं बाद में यही विधाएं अपने विकसित रूप में संचार के प्रबल साधन के रूप में सामने आयी और जब ये संचार विधाएं अपने उत्कर्श पर पहुंची तो इन्हें बतौर जनमाध्यम स्वीकृति मिली। संभवतः लोक–संस्कृति में लोक कलाओं और लोकसंचार के निर्माण का यही विकासक्रम रहा होगा। त्रिभुवननाथ शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'लोक संस्कृति की अवधारणा' में लिखा है कि ''लोक ग्रामीण अथवा संस्कृति अर्थ में ना होकर अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त है। 'लोक' यहां 'जन समस्त' का संकेत है। जहां तक मानव समाज का प्रसार है वहां तक लोक की व्यापित है। इसी लोक की आचार–विचार संबंधी क्रियाएं जिस समूह की चेतना में स्पन्दित होती है उसे लोक–संस्कृति कहा जायेगा ।''

बैगा जनजाति की परंपरागत संचार पंरपराएं :– भारत की पच्चीस सौ वर्षो की समृद्ध पुरातन पंरपराओं और पंरपरागत संचार का उदय एवं विकास उतना ही रोचक तथा सहज है जितना कि उसकी क्षेत्रीय शैलियों की विविधता। क्षेत्रीय शैलियों में विभिन्न कलाओं के विकास ने लोक–संस्कृतियों को जन्म दिया है। गायन, वादन, नृत्य और नाट्य के साथ ही अनेक विधाओं का विकास हुआ है। लोक–संस्कृति वास्तव में लोक जीवन का दर्पण है। 'लोक' शब्द में अत्यंत विराट भाव समाहित है। मानव संस्कृति के विकास ने कला और संस्कृति को भी विकसित किया है। इस संस्कृति का आधार पंरपरागत संचार है। पंरपरागत संचार वह है जो हमारे घर–आंगन, गली–कूचों में सृजित होता है अन्ततः हमारे जीवन में रच–बस कर सम्पूर्ण समुदाय में व्याप्त होकर परंपरा बन जाता है।

परंपरागत संचार की प्रकृति सहज एवं सरल होती है। परंपरागत संचार नैसर्गिक तथा स्वतः स्फूर्त होता है। परंपरागत संचार पारंपरिक विरासत के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्वमेव स्थानातंरित हो जाता है। परंपरागत संचार जनजातीय समुदाय में लोकगीत, लोकनाट्य, लोक कथा, गोदना, मेंहदी, मूर्तिकला, अल्पना, भित्ति–चित्रण, चित्रकला के रूप में व्याप्त है और इन्हीं परंपरागत संचार विधाओं में बैगा जनजाति की संस्कृति के इन्द्रधनुशी रंग समाहित है। ''गोदना की प्रथा हमारी परंपराओं की देन है। साथ ही लोक–माध्यम भी। गोदना गीत भी प्रचलित है। स्त्री के हाथ, नाक, ललाट, पैर या अन्य भागों में गोदे गये गोदना से उसके शादीशुदा होने का प्रमाण तो मिलता ही है, साथ ही क्षैत्र विशेष और अन्य संस्कृतियों व कलाओं का ज्ञान भी होता है।'' वहीं बैगा समुदाय के परंपरागत संचार विधाओं को उनके वास्तविक स्वरूप में रखना भी प्रासंगिक है क्योंकि इन विधाओं का संरक्षण बैगा जनजाति का संरक्षण है। बैगा जनजाति दुनिया की आदिमतम जनजातियों में से है। अतएव इनकी परंपरागत संचार विधाओं का संरक्षण संचार की पांरपरिक विकास यात्रा को संरक्षित करना है।

बैगा समुदाय की लोक–संस्कृति अत्यंत ही प्राचीन है। बैगाओं जनजाति के लोक–परंपराओं तथा रीति–रिवाजों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनकी लोक–परंपराएं चिरकालिक तथा विज्ञान सम्मत हैं। बैगा जनजाति के लोगों के दैनिक जीवन के रीति–रिवाज, तीज–त्यौहार, लोकाचार तथा दैनिक वार्तालाप जिस वैज्ञानिकता का संकेत देते है उससे साबित होता है कि बैगा समुदाय के लोगों ने अपनी सामान्य जीवनचर्या को पर्यावरण अनुकूलए सरल, सहज तथा जनजातीय समाजोनुरूप बनाने का प्रयास किया था साथ ही अपनी सामाजिक जीवन भौली का सामुदायिक व्यापीकरण भी बैगाओं द्वारा इस तरह से किया गया था जिसमें सहजता तथा संप्रेशणीयता सहज ही शामिल हो गई और बाद में यही संप्रेषण युक्त जीवनशैली पीढ़ी दर पीढ़ी चलकर बैगा जनजाति की परंपरागत संचार माध्यम में प्रमुख रूप से शामिल हो गई।

बैगा समुदाय के लोग कला, संस्कृति के मामले में धनाढ्य है। अन्य जनजातीय समुदाय की तरह ही बैगाओं की भी अपनी मौलिक लोक–परंपराएं है। बैगाओं की भी अपनी सांस्कृतिक धरोहरें है। बैगा लोक–परंपराओं या बैगाओं के परंपरागत संचार में लोक–गायन, लोक–नृत्य, आदि शामिल है। लेकिन

वर्तमान में समय के साथ इन परंपराओं का अस्तित्व संकट में है। सामाजिक जीवन में लोक–नृत्य उल्लासपूर्ण भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। व्यक्तिगत या सामूहिक हर्ष के विषय में समूह में या फिर अकेले ही जब उमंग की लहरें हिलोरें लेती है तो पैरों में थिरकन स्वतः ही महसूस होने लगती है ऐसे अवसर पर ही जनजातीय समुदाय के लोक अपनी पारंपरिक मान्यताओं से जुड़कर उसे नृत्य का रूप देते हैं।

इस जनजाति समुदाय का लोक–जीवन अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ अपने पारंपरिक संचार माध्यम में उभर कर सामने आता है। भारत में धर्म और लोक परस्पर घुले–मिले है। समाज और धर्म सदैव से ही एक–दूसरे से प्रभावित करते आए है। सांस्कृतिक रूप से पारंपरिक संचार माध्यम के माध्यम से बैगाओं की लोक–संस्कृति को समझना अत्यंत ही सरल हो जाता है। बैगाओं का खान–पान, वस्त्र, अलंकरण, मनोरंजन, के साधन, संगीतकला, नृत्यकला, चित्रकला, वास्तुकला और चिकित्सा–ज्ञान संबंधी जानकारियाँ बहुतायत में इनके पारंपरिक संचार माध्यम में प्राप्त होते है और इनसे बैगा संस्कृति के सभी पक्ष उभरकर सामने आते है।

इस जनजाति समुदाय की लोक–संस्कृति पारंपरिक संचार माध्यमों में अत्यंत ही सहजता से परिलक्षित होती है। लोक–संस्कृति सही मायने में जन–साधारण की संस्कृति होती है। लोक–संस्कृति का मूल जनता में होता है और इन्हें प्रेरणा 'लोक' से ही प्राप्त होती है। बैगा जनजाति की लोक–संस्कृति के सभी तत्व जैसे बैगा जनजाति समुदाय के संस्कार, प्रथाएं, लोकोत्सव, लोक–गीत, लोक–नाट्य, लोक–विश्वास बैगाओं के पारंपरिक संचार माध्यमों में विद्यमान है। लोक संचार परम्पराएं किसी भी समुदाय की सांस्कृतिक निधि हुआ करती है और समुदायगत वैशिष्ट्य के अनुसार जनजीवन के बीच विशेष प्रकार से प्रचलित होकर समुदाय के निजी व्यक्तित्व को प्रस्तुत करती है। लोक परंपराओं की समस्त विधाओं को लोक–तत्व का स्वरूप अत्यंत ही सरलता से देखा जा सकता है।

गोदना प्रेमी बैगा महिलाएँ :– इस जनजाति की मौखिक–वाचिक परंपराएँ, लोक–नृत्य, लोक–गीत तथा अन्य कला माध्यम विभिन्न रूपों में बिखरे पड़े है। गोदना जनजातीय समाज को हमेशा से लुभाता रहा है। गोदना बैगा जनजाति की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के साथ ही बैगा समाज के अंतरतम से जुड़ी हुई है। गोदना को लेकर बैगा जनजाति में यह मान्यता है कि मृत्यु के बाद व्यक्ति के साथ गोदना ही रह जाता है। ''बैगा स्त्रियाँ गोदने को स्वर्गिक अंलकरण मानती है।..... इस जनजाति में शरीर अलंकरण के रूप में गोदने की एक दीर्घ परंपरा है। एक ऐसे अलंकरण के रूप में जो शरीर का स्थायी अंग बन जाता है।'' बैगा महिलाएँ अपने देह के तमाम हिस्सों में गोदना करवाती है। बैगा जनजाति के कई पुरूष भी गोदना करवाते है। बैगा जनजाति दुनिया की इकलौती ऐसी जनजाति है जिसकी महिलाएँ अपने सम्पूर्ण शरीर में गोदना करवाती है।

गोदने को लेकर बैगा जनजाति में एक लोक कथा भी सुनने को प्रायः मिलती है। बैगाओं की इस कथा के अनुसार एक राजा था जो अत्यंत ही कामुक प्रवृत्ति का था। उसे हर रात्रि एक नई युवती चाहिए होती थी। एक बार वह जिस युवती से संसर्ग कर लेता था, वह उसके शरीर पर गोदने की सुई से निशान बना देता था। अंततः उस राजा से अपने को बचाने के लिए बैगा जनजाति की महिलाओं ने अपने शरीर पर गोदना करवाना शुरू कर दिया। बाद में यही देहकला विस्तृत होने के साथ ही बैगा समाज की पहचान बन गई। बैगा जनजाति में गोदना पवित्रता के साथ ही स्त्री सौन्दर्य का भी प्रतीक है।

बैगा जनजाति की महिलाएँ धातु के आभूषणों का उपयोग अत्यंत ही सीमित रूप में करती है, साथ ही बुनियादी वस्तुओं के अभाव में गोदना ही बैगा जनजाति की महिलाओं का मुख्य आभूषण होते है। बैगा गोदना में इस्तेमाल होने वाले रंगों के लिए पलाश के फूल, वृक्षों की छाल तथा अन्य उत्कृष्ट फूलों को सुखाकर रंग तैयार करते है। आज भी गोदना बैगा जनजाति में लोकप्रिय है लेकिन समय के साथ बैगा महिलाओं में यह कम होता जा रहा है। बैगा जनजाति की वृद्ध महिलाओं की तुलना में गोदना समाज की कम उम्र की महिलाओं में अपेक्षाकृत कम देखने को मिल रहा है। बैगा समुदाय में यह परंपरा अब लगभग समाप्त होने की कगार पर है।

बैगा जनजाति मं प्रचलित प्रमुख गोदना कलाएं :– बैगा स्त्रियाँ अत्यंत ही कठिनतम भौगोलिक परिवेश में रहती है, साथ ही बैगा स्त्रियां अपनी शरीर पर कम वस्त्र पहनती है। लिहाजा गोदना उन्हें प्रतिकुल मौसमी

परिस्थितियों में प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है। बैगा स्त्रियों में गोदना एक उम्र विशेष में करवाना आवश्यक माना जाता है। इस जनजाति में गोदना नहीं गोदवाना निर्धनता का प्रतीक माना जाता है। बैगा स्त्रियों में कई गोदना कलाएं प्रचलित है जिनमें विशेष प्रकार की कला–कृतियां तथा चिन्ह विशेष रूप से उकेरे जाते है। बैगा जनजाति में प्रचलित प्रमुख गोदना कलाएं निम्नवत् है।

पुखड़ा गोदाय :– बैगा जनजाति में गोदना संस्कार की तरह है। सोलह साल की उम्र में बैगा स्त्रियाँ पुखड़ा (पीठ) गुदवाती है। पीठ पर टिपका, सांकल, चकमक, बांह के पीछे आगे टिपका, मछली कांटा, बेंडा झेला के गुदना गोदे जाते है।

जांघ गोदाय :– इसमें जांघों के आगे वाले हिस्से में गोदना गुदवाया जाता है। जांघ में गोदना करवाना बैगा स्त्रियों में विवाह से पहले जरूरी माना जाता है। जांघ गोदाय में गोदना करने वाली बदनिन जाति की औरते पैर के उपर जांघ तक गोदती है। जांघ पर लंबे झेला तथा टखने पर कड़ी, कांटा, पोर, झेला तथा घुटने पर भी झेला, बेंडा, दीवा आदि गोदाये जाते है।

पोरी गोदाय :– इसमें हाथ की कोहनी से लेकर हाथ तक गोदना गुदवाया जाता है। हाथ में बैगा स्त्रियों द्वारा सामान्यतः टिपका, चकमक, मछली कांटा, झेला गोदना गुदवाया जाता है।

पछाड़ी गोदाय :– इस तरह के गोदने में जांघों के आगे वाला भाग में गोदना गुदवाया जाता है। पछाड़ी गोदाय पिंडली तथा उसके ऊपर के भाग में होती है। इसमें भी झेला, टिपका, केंकड़ा, मछली कांटा आदि गोदने गुदवाये जाते है।

छाती गोदाय :– इसी तरह छाती के गोदने को बैगा स्त्रियाँ छाती गोदाय कहती है। छाती गोदाय बैगा स्त्रियां अपने विवाह के बाद अपनी सुविधा के हिसाब से गुदवाती हैं। बैगा स्त्रियाँ अपनी स्तनों को छोड़कर छाती पर टिपका, फूल आदि के गोदने बनवाती है।

पोरी गोदाय :– इसमें हाथ की कोहनी से लेकर हाथ तक गोदना गुदवाया जाता है। हाथ में बैगा स्त्रियों द्वारा सामान्यतः टिपका, चकमक, मछली कांटा, झेला आदि की आकृतियाँ गुदवाई जाती है।

निष्कर्ष :– गोदना अमिट परंपरागत संचार के रूप में बैगा समुदाय के लोगों में आजीवन संचरित होता रहता है। बैगा जनजाति की गोदना परंपराएं अमिट परंपरागत संचार के रूप में आज भी प्रासंगिक है लेकिन आधुनिक जनमाध्यमों के प्रभाव एवं आधुनिकता के अधिकाधिक प्रयोग के चलते बैगा जनजाति में परंपरागत संचार की इस विधा का प्राकृतिक सहज आकर्षण कम हो गया है। दरअसल बैगा समुदाय में प्रचलित गोदना परंपराएं परंपरागत संचार की अमूल्य सांस्कृतिक विरासत है। बैगाओं के संस्कारों के साथ ही यह परम्परा बैगा समुदाय की सांस्कृतिक अस्मिता से भी जुड़ी हुई है। यही कारण है कि बैगा समुदाय के परंपरागत संचार की गोदना परंपरा को सहेजना सही मायनों में बैगा समुदाय के संस्कारों तथा सांस्कृतिक अस्मिता को सहेजने जैसा होगा।

संदर्भ :–

1. डॉ. महेन्द्र, भानावत और डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू (2003) भारतीय लोक माध्यम, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर पृ.–1
2. डॉ. श्यामाचरण दुबे, (1993) मानव और संस्कृतिक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.–155
3. वही पृ. 162–163
4. जिनेश कुमार (2015) परंपरागत माध्यमों का अदभुत संसार, कम्यूनिकेशन टुडे (अंक 17, खण्ड 03),पृ. 152–154
5. त्रिवेणी राजेश्वर (2011) बैगा (संपा.), वन्या प्रकाशन आइम जाति कल्याण विभाग, भोपाल पृ. 49।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

जबलपुर जिला परिषद–जिला पंचायत की सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक स्थिति

डॉ. अभिलाषा दुबे
शा. श्याम सुन्दर अग्रवाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिहोरा जिला–जबलपुर

जबलपुर जिला पंचायत की स्थिति व स्वरूप का जायजा लिया तो ज्ञात होता हैं, कि जिला पंचायत के प्रशासनिक संगठन के अंतर्गत पदस्थ अधिकारी व कर्मचारी संख्या में लगभग 100–110 के अंदर ही हैं। अतः कम अधिकारी व कर्मचारी के लघु आकार के होते हुए पर भी जिला पंचायत के सारे अधिकारी/कर्मचारी अपने कार्यो से ही संतुश्ट है और अपने कार्यो को सुनियोजित व व्यवस्थित तरीके से कर रहे और जिला पंचायत द्वारा किये जाने वाले कार्यो को क्रियान्विति की ओर उन्मुख कर संपूर्णता व सफलता दिलाने में सफल संचालन व निर्देशन दे रहीं हैं, अपनी सफल साफ–सुथरी छवि के साथ–साथ जिला पंचायत कारगार हो रही हैं, सिद्धांततः उसकी छवि उनकी पारदर्शिता पूर्ण हैं। जबकि व्यवहारतः जिला पंचायत कारगार हो रही हैं, सिद्धांत उसकी छवि उनकी पारदर्शिता पूर्ण हैं। जबकि व्यवहारतः जिला पंचायत/जिला परिषद् में काफी सफलताओं के बावजूद, अनेकों को बाह्य विरोध के साथ–साथ अंतः विरोध भी झेल रही हैं, जिससे शोध के दौरान आए आकड़ों ने भी व्यवहारिक स्थिति का प्रतिशत के रूप में यहीं निश्कर्श प्राप्त हुआ है कि जबलपुर की जनता जिला पंचायत के सारे कर्मचारी/अधिकारी अपने कार्य से, अधिकारों से संतुष्ठ तो हैं किंतु पूर्णतः नहीं है और वे चाहते हैं कि जबलपुर जिला पंचायत को और अधिक अधिकार व कार्य सौपें जाऍं, ताकि जनता हेतु इस उपयोगी संस्था व निकाय को और अधिक महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त हो सकें।

समस्त प्रशासकीय अधिकारी/कर्मचारी वर्ग का एक सुर में यही बात कही की जिला पंचायत का और अधिक विस्तार करते हुए, सहयोगी भावना, सद्भावना की भावना को दृश्टिगत रखते हुए तथा योजनाओं को पेंचीदगी को कम किये जाने का प्रयास किया जाये, साथ ही जिला पंचायत में कुछ हद तक व्याप्त भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, लाल फीताशाही और ऐसे ही कुछ अन्य दोशों को दूर किये जाने हेतु एवं उचित कार्यवाही किए जाने हेतु, मुख्यपालिका अधिकारी को और अधिक अधिकार दिए जाने चाहिए।

अतः स्पष्ट होता है कि जबलपुर जिला पंचायत से प्राप्त सूचनाओं व विश्वस्त जानकारी व अवलोकन के अनुसार, प्रशासनिक अधिकारी व कर्मचारियों ने कर्मठता व कर्त्तव्य निश्ठा की भावना की झॉकी मिली और कथनी व करनी में ज्यादा भेद नहीं मिला।

जबलपुर पंचायत के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों/निकायों की जनता से प्रत्यक्षतः संपर्क स्थापित कर, यही विचार पाया की समस्त नागरिक पंचायत के कार्यो से संतुष्ट तो है, किंतु पूर्णतः नहीं और चाहते है कि, जिला पंचायत की योजनाओं का लाभ पाने में आने वाली दिक्कतों, परेशानियां कम किया जाए, और प्रक्रिया की जटिलता कों सरल बनाया जाए, ताकि सभी नागरिकों को उचित लाभ, आवश्यकताओं की प्राथमिकता के आधार पर प्राप्त हो सकें।

आय के विभिन्न स्त्रोत :– मध्यप्रदेश में पंचायती राज संस्थाओं का मुख्य कार्य प्रशासनिक हैं, फिर भी उन्हें आवश्यक एवं रचनात्मक कार्य संपादित करने के लिए अपने कर्मचारियों को वेतन, अपनी संपत्ति की सुरक्षा एवं रख–रखाव के लिए व सार्वजनिक सुविधाऍं उपलब्ध कराने के लिए अर्थ की आव यकता होती हैं।

मध्यप्रदेश भाासन के जिला पंचायत के वित्तीय संसाधनों के संबंध में पंचायत अधिनियम 1981 के अंतर्गत प्रावधान किए हैं, अधिनियम की धारा 67 के अनुसार, ''प्रत्येक भू–धारी से भूराजस्व पर 50 पैसे प्रति रू. की दर से उपकर वसूल करने का प्रावधान हैं। उपकर की वसूल की गयी राशि में से 50% प्रतिशत राशि पंचायतों को राज्य भाासन द्वारा निर्धारित प्रतिशत में वितरण की जाती हैं, व 50% प्रतिशत राशि रक्षित कोश में रख दी जाती हैं, जो पंचायतों को उनके कर्मचारियों के वेतन एवं संपत्ति के रखरखाव के लिए अनुदान के रूप में स्वीकृत की जा सकती है।। उपकर की राशि में से 60% प्रतिशत ग्राम पंचायत, 20 % प्रतिशत जिला पंचायतों को वितरित की जाती हैं।

मध्यप्रदेश में जिला पंचायतों को कर लगाने की भाक्तियां प्रदान नहीं की गयी हैं। इसलिए इनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं हैं।

जिला पंचायतों के आय के स्त्रोत :– मध्यप्रदेश की जिला पंचायतें निम्नलिखित प्रमुख स्त्रोतों से धन प्राप्त करती हैं –

1) भू–राजस्व का भाग – जिला पंचायतों को अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत भू–राजस्व का भाग अनुदान के रूप में राज्य सरकार से प्राप्त होता हैं। इस धन राशि का उपयोग जिला पंचायतों के द्वारा कर्मचारियों के वेतन तथा संपत्ति के रख–रखाव के कार्यो को संपादित करने के लिए किया जाता हैं।

2) अन्य करों व शुल्कों में भाग – मध्यप्रदेश में जिला पंचायतों की होने वाली आय का दूसरा प्रमुख मद अन्य करों व शुल्कों से प्राप्त होने वाला भाग हैं। मध्यप्रदेश की कतिपय जिला पंचायतों को इस मद से अच्छी आय होती हैं। जबकि कतिपय जिला पंचायतों को बिल्कुल ही आय नहीं होती।

3) ब्याज से आय – मध्यप्रदेश की जिला पंचायतों को इस मद से भी आय का कुछ भाग प्राप्त हो जाता हैं। यद्यपि इस मद से प्राप्त होने वाली आय, जिला पंचायतों के लिए अल्प हैं। इस मद के अंतर्गत जिला पंचायतों के पास धन संचित होता हैं, उस धन राशि को बैंक अथवा पोस्ट ऑफिसों में जमा कर दिया जाता हैं, जिससे कुछ वार्शिक ब्याज प्राप्त होता रहता हैं।

4) मशीनों से किराये की आय – मध्यप्रदेश में जिन जिला पंचायतों के पास अपने कुछ यंत्र अथवा उपकरण होते हैं, जो विभिन्न व्यवसायों से संबंधित हो सकते हैं। जिला पंचायतें इन यंत्रों, उपकरणों को कार्य करने के लिए विभिन्न संस्थाओं अथवा व्यक्तियों को कुछ समय के लिए प्रदान कर देती हैं और उसके एवज में उन संस्थाओं अथवा व्यक्तियों से एक निर्धारित धन राशि प्राप्त करती हैं। जिला पंचायतों को इस मद से भी अल्प आय होती हैं, क्योंकि सभी जिला पंचायतें अधिक मात्रा में यंत्र रखने में समर्थ नहीं हैं।

5) मेलों से प्राप्त आय – मध्यप्रदेश की जिला पंचायतों के अंतर्गत कतिपय मेले तथ प्रदर्शनियों भी लगती हैं। इन मेलों और प्रदर्शियों से भी जिला पंचायतों को एक अच्छी मात्रा में आय प्राप्त होती हैं। परंतु अपवाद स्वरूप कतिपय जिला पंचायतों के पास इस प्रकार के वित्तीय स्त्रोतों का अभाव रहता हैं।

6) संपत्ति से आय – मध्यप्रदेश की पंचायती राज व्यवस्था के भीर्श निकायों के नियंत्रणों में कुछ चल एवं अचल संपत्ति भी होती हैं, जिसके माध्यम से भी जिला पंचायतों को कुछ आय प्राप्त होती हैं। परंतु यह आवश्यक नहीं कि सभी जिला पंचायतें इस प्रकार की चल एवं अचल संपत्ति पर स्वामित्व रखती हों। चयनित जबलपुर जिला पंचायत के पास उपरोक्त किसी भी प्रकार की संपत्ति नहीं हैं।

7) अन्य साधनों से प्राप्त आय – मध्यप्रदेश की जिला पंचायतों को इस शीर्षक के अंतर्गत भी कतिपय आय प्राप्त होती हैं, यद्यपि यह आय बहुत ही कम होती हैं। इस मद में मुख्य तथा पुरानी भंडार सामग्री की नीलामी से प्राप्त होने वाली आय होती हैं। चयनित जबलपुर जिला पंचायत को भी इस मद से समय–समय पर कुछ आय प्राप्त होती रहती हैं।

निष्कर्षः कहा जा सकता हैं कि इस प्रकार मध्यप्रदेश में जिला पंचायतों की आय के प्रमुख स्त्रोत भू–राजस्व का भाग हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य स्त्रोतों से भी जिला पंचायतों को कतिपय आय होती हैं।

मध्यप्रदेश की जिला पंचायतों के व्यय के मद :– मध्यप्रदेश की जिला पंचायतों के व्यय के मद निम्नलिखित हैं–

सामान्य प्रशासन पर व्यय :– जिला पंचायतों को सामान्य प्रशासन के रख–रखाव के लिए काफी मात्रा में धन–व्यय करना पड़ता हैं। कार्यालय का व्यय, लेखन सामग्री का व्यय, कर्मचारियों के वेतन–भत्ते, मॅहगांई की किस्तें आदि। प्रशासनिक क्रियाओं पर किया जाने वाला व्यय भी सामान्य प्रशासन में ही समाहित हैं।

1) जिला पंचायत सदस्यों के भत्ते – मध्यप्रदेश में जिला पंचायतें अपने सदस्यों को मासिक भत्ते भी प्रदान करती हैं, जिला पंचायतें अपने सदस्यों (सभापति, उपसभापति सहित) को यात्रा भत्ता भी प्रदान करती हैं। इस शीर्षक के अंतर्गत चयनित जिला पंचायतों ने विभिन्न वर्षो में जो व्यय किया हैं, उसे सन् 2008–09 माह मार्च में 10.660 लाख रूप्ये व्यय रहा पंचायत के अमले के भत्ते हेतु तथा पद्याधिकारियों के मानदेव सुविधाएँ हेतु 2008–09 में 27.598 लाख रूप्ये व्यय रहा।

2) आकस्मिक व्यय – जिला पंचायतों को अपने कार्यालय के प्रबंध के लिए समय–समय पर आकस्मिक व्यय भी करने पड़ते हैं। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ''किसी कार्यालय के प्रबंध के संबंध में वर्गीकृत किए जायेगें''। अधिनियम के द्वारा जिला पंचायतों को

यह भी निर्देश दिया गया है कि इस मद में कम से कम व्यय किया जायें। अधिनियम के अनुसार आकस्मिक व्यय के अंतर्गत प्रत्येक शीर्षक के अधीन व्यवसथा है कि कुल राशि निम्नलिखित मदों में सुविधापूर्वक विभाजित की जा सकती हैं। यथालेखन सामग्री, वाहन, खर्च, कार्यालय–किराया, डाकखर्च, मनीआर्डर, कमीशन फर्नीचर, की खरीद तथा मरम्मत, ग्रीष्म ऋतु संबंधी खर्च, कार्यालयी व्यय तथा अन्य व्यय। आकस्मिक व्यय के आकड़े उपलब्ध नहीं हो सकें।

3) भवन निर्माण व्यय – जिला पंचायतें अपनी आय में कुछ धन राशि उपयुक्त मद में भी व्यय करती हैं। यह धन राशि जिला पंचायतों के नवीन भवनों के निर्माण, पुराने, भवनों, की मरम्मत, और जनपद में स्थित अपनी चल और अचल संपत्ति की संरक्षा के लिए व्यय की जाती हैं। पिछले कुछ वर्षों में भवन निम्राण की मद पर चयनित जिला पंचायतों द्वारा किया व्यय जबलुपर जिला पंचायत के आकड़ों के अनुसार 2008–09 में 427.716 लाख रूपये व्यय किया गया।

4) कानूनी सलाहकार व्यय – मध्यप्रदेश में जिला पंचायतों के द्वारा अपनी आय का कुछ भाग उपर्युक्त भीर्शक में भी व्यय किया जाता हैं। यह धनराशि अन्य मदों में व्यय की जाने वाली धन राशि की तुलना में काफी अल्प होती हैं, यह धन राशि जिला पंचायतों के द्वारा उस समय व्यय की जाती हैं। जब जिला पंचायतों का कोई प्रकरण (वाद) न्यायालय के विचाराधीन हो।

5) न्यासों पर व्यय – जिला पंचायतों के नियंत्रण में कतिपय व्यास (ट्रस्ट) भी कार्यरत् होते हैं। इन न्यासों पर जिला पंचायतों के द्वारा अपनी आय का एक भाग व्यय करना पड़ता हैं। चयनित जिला पंचायतों के द्वारा विभिन्न वर्षों में किए गए व्यय को उपरोक्त तालिका द्वारा आगे दिया गया हैं।

6) संयत्र व मशीनों पर पूॅजी – मध्यप्रदेश की कतिपय जिला पंचायतें कुछ संयंत्र व मशीनों पर भी पूॅजी व्यय करती हैं। इन संयंत्रों तथा मशीनों में प्रमुख होते हैं। बोरिंग मशीनें (वेंधन यंत्र), बुलडोजरों, ट्रेक्टरों आदि के साज–सामान।

7) साधारण (वाहन) व्यय – मध्यप्रदेश में जिला पंचायत को अपने–अपने संधारण (वाहन) रखने का अधिकार हैं। जिला पंचायतें स्वयं के धन से अथवा राज्य सरकार से अनुदान प्राप्त कर वाहनों की व्यवस्था करती हैं। तत्पश्चात् संराधरणों के रख–रखाव के लिए भी जिला पंचायत को समय–समय पर व्यय करना पड़ता हैं।

8) मेलों पर व्यय – जिला पंचायतें अनेक प्रसिद्ध मेले एवं प्रदर्शनियों का आयोजन समय–समय पर अपने अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत करती हैं। यद्यपि इन आयोजनों से काफी आय होती हैं, फिर भी एक बड़ी धनराशि इन आयोजनों पर व्यय करनी पड़ती हैं। क्योंकि आयोजनों में व्यापारियों की सुविधाऍं प्रदान करना, उनकी सुरक्षा के लिए पुलिस व्यवस्था करना मेला प्रांगण में सफाई, व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था, एवं पेयजल की व्यवस्था पर काफी व्यय करना पड़ता हैं।

9) लेखा परीक्षा व्यय – मध्यप्रदेश में जिला पंचायतों का लेखा परीक्षण मध्यप्रदेश स्थानीय निधि संपरीक्षा विभाग द्वारा किया जाता हैं। लेखा परीक्षण के समय लेखा परीक्षा की फीस के रूप में जिला पंचायत की अपनी वार्षिक आय पर 3% दर से शुल्क देना पड़ता हैं। इस हेतु 2008–09 में 26.48 लाख राशि व्यय जिला पंचायत जबलपुर द्वारा व्यय किया गया।

10) लोक संस्थाओं को दान – जिला पंचायतें जनपद में लोक कल्याण के लिए संगठित एवं स्थापित लोक संस्थाओं को भी कुछ धनराशि दान के रूप में प्रदान करती हैं। इस प्रकार से भी जिला पंचायतों के व्यय में वृद्धि होती हैं।

राज्य वित्त आयोग :– राज्यों में पंचायती राज तथा राज्य सरकारों के मध्य वित्तीय समस्याऍं अधिक उभरी हैं। क्योंकि वर्तमान में राज्य सरकारों के द्वारा वित्त का जो वितरण किया जाता हैं उससे पंचायती राज संस्थाऍं संतुष्ठ नहीं हो पाती। अतः पंचायती राज संस्थाओं को संतुष्ट करने के लिए एक ऐसे संवैधानिक उपचार की आवश्यकता हैं, जो सरकार तथा पंचायती राज संस्थाओं के मध्य वित्त का उचित वितरण करें तथा इसके साथ ही उनकी वित्तीय समस्याओं का भी समाधान कर सकें।

पंचायती राज संस्थाओं की इन समस्याओं का समाधान एवं संवैधानिक उपकरण ''राज्य वित्त आयोग'' के द्वारा किया जा सकता हैं। जिस प्रकार संधीय स्तर पर वित्त आयोग का गठन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 के अंतर्गत राष्ट्रपति के द्वारा किया जाता हैं, जो संघ तथा राज्यों के मध्य धन के उचित विभाजन, सहायता अनुदान के सिद्धांतों का निर्धारण तथा सुव्यवस्थित व्यवस्था के लिए कार्य करता हैं, उसी प्रकार संविधान में विस्तृत संशोधन के द्वारा राज्यों में वित्त आयोग की स्थापना का प्रावधान किया जाना चाहिए। ताकि राज्य सरकार के उपेक्षापूर्ण निर्णयों पर अंकुश लगाया जा सके। ''राज्य वित्त आयोग'' की

स्थापना मध्यप्रदेश में भी की जानी चाहिए, साथ ही पृथक–पृथक राज्यों में भी की जानी चाहिए। तत्पश्चात् यही आयोग राज्य सरकार तथा पंचायती राज संस्थाओं के मध्य धन वितरण के सिद्धांतों का निर्धारण करेगा। इससे ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करने में सहायता होगी। वित्त आयोग की भूमिका के संबंध में डॉ. पायली का कथन उचित प्रतीत होता हैं कि वित्त आयोग के कार्यो का महत्व इससे है कि वह अनुशंसाओं पर आधारित हैं, और वह संघात्मक भाासन पद्धति की वित्तीय व्यवस्था को स्थिर तथा निष्पक्ष बनाने का प्रयास तटस्थ रूप से करता हैं। राज्य वित्त आयोग द्वारा 2008–09 में 538.63 राशि उपलब्ध हुई जिसमें 507.90 लाख राशि व्यय की गयी।

बजट निर्माण प्रक्रिया एवं अनुमोदन :– मध्यप्रदेश में जिला पंचायत का सचिव प्रतिवर्ष 15 फरवरी को या उसके पूर्व वित्त स्थायी समिति के परामर्श से आगामी वित्तीय वर्ष के लिए जिला पंचायत की आय और व्यय का अनुमान प्रारूप ''अ'' के अनुरूप तैयार करवाता हैं। जिस आधार पर बजट के अनुमान तैयार किए जाते हैं, उनका उल्लेख बजट टीमों के रूप में किया जाता हैं। बजट में न्यूनतम शोध तथा शासकीय अनुदान पृथक–पृथक रूप में प्रदर्शित किए जाते हैं। बजट तैयार करते समय जिला पंचायतों को कतिपय सावधानियॉ भी रखनी पड़ती है।

जिला पंचायत का जब अनुमानित बजट तैयार हो जाता हैं, जब पंचायत का सचिव प्रतिवर्ष 20 फरवरी तक जिला पंचायत के सदस्यों के मध्य बजट अनुमानों की प्रति प्रेषित कर देता हैं। जिला पंचायत 10 मार्च तक बजट अनुमानों पर विचार करती हैं, और उन्हें संशोधित या असंशोधित रूप में अनुमोदित करती हैं।

बजट स्वीकार होने का यह अर्थ नहीं होगा कि उसमें जिला पंचायत को बजट में निर्दिष्ट किए गए सभी व्यय करने का प्राधिकार मिल जायेगा। बजट में सम्मिलित किसी भी मद की स्वीकृति के लिए सक्षम प्राधिकारी के आदेश पूर्व में अवश्य ही लिए जायेगें।

वित्तीय प्रशासन :– मध्यप्रदेश की जिला परिषदों में वित्तीय प्रशासन को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक हैं, वहॉ पर राज्य सरकार के वित्त एवं लेखा संहिता को प्रभावी किया जाना चाहिए ताकि वित्तीय गतिविधियों में एक रूपता आ सके। इसके लिए आवश्यक है कि जिला परिषदों में एक उच्च श्रेणी के वित्त अधिकारी की न्युक्ति की जाये, जो योजना तथा गैर योजना संबंधी निधियों का पर्यवेक्षण कर सकें। इसके साथ ही जिला परिषदों के लिए यह भी आवश्यक हैं कि वित्तीय प्रशासन से संबद्ध कार्मिक वर्ग पूर्णरूपेण प्रशिक्षित होना चाहिए, तभी लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की उपलब्धियों को प्राप्त किया जा सकता हैं। वित्तीय प्रशासन हेतु सन् 2007–08 में 98.68 लाख राशि तथा 2008–09 में 132.00 लाख राशि का व्यय किया गया – जिला पंचायत जबलपुर में।

लेखा–प्रतिवेदन :– लेखा प्रतिवेदन, वित्तीय व्यवसथा एवं प्रशासन पर नियंत्रण का एक प्रमुख साधन हैं। वार्षिक आय–व्यय के पूर्ण होने पर लेखों की जॉच कर प्रतिवेदन को सक्षम प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता हैं। इस प्रतिवेदन से यह स्पष्ट होता हैं कि परिषद ने अपने वित्तीय उत्तरदायित्वों को वैधानिक तथा उचित प्रकार से पूर्ण किया है अथवा नहीं/ इस हेतु 2008–09 में 26.48 लाख राशि व्यय की गयी जिला पंचायत जबलपुर में।

निष्कर्ष :– कहा जा सकता है कि जबलपुर जिला पंचायत–के वित्तीय संसाधनों अथवा स्त्रोतों के माध्यम से ही समस्त कार्यो की अंजाम दिया जाता हैं, जो कि कुछ विभिन्न स्त्रोतों के माध्यम के रूप में परिलक्षित होते हैं, ऊपर वर्णित उपरोक्त संसाधनों के माध्यम से ही मध्यप्रदेश जिला पंचायत–जबलपुर में भी कार्य सुचारू व नियमित अग्रेसित है या क्रियान्वित हैं।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

दलितोदय महाकाव्य में प्रकृति–चित्रण

दौलतराम झारिया
शोधछात्र, संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग, रा.दु.वि.वि. जबलपुर

दलितोदय महाकाव्य में प्रकृति का स्वतन्त्र रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता है। यह महाकाव्य गुरू घासीदास के जीवन वृत्त पर आधारित है। भारतवर्ष में छत्तीसगढ़ राज्य विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यहाँ पर सोनारवान नामक क्षेत्र है। इस मण्डल में पहले विंझवार वंश के सामन्त रहा करते थे। विंझवार मण्डल के अधिकृत क्षेत्र में ही महा नदी और जोंक नामक नदी के किनारे पर गिरौद नामक ग्राम विराजमान है। यह गिरौद ग्राम दलितवैभव से सुशोभित है। दलितों, शोषितों का यहीं गाँव गुरुघासीदास की जन्मस्थली है। छत्तीसगढ़ राजय अपनी प्राकृतिक एवं नैसर्गिक सुषमा के लिए जाना जाता है। यहाँ की ऊँची–ऊँची पर्व श्रृंखलाएँ तथा मनोहारी छटाएँ सर्वत्र चारों और विखरी पड़ी हैं। संसार के तमाम जंजालों से मुक्त प्रकृति के शान्त, शीतल, मनोरम, मोहक सानिध्य में कलरव करते पक्षी, कुलाँचे मारते हिरन, वृक्षों की डालियों पर कूदते–फाँदते बन्दर, चिंघाड़ते हाथी, दहाड़ते शेर और वर्षों अपने स्थान पर अचल रहते वृक्ष, नदियों और नालों के कल–कल की आवाज कर बहते हुए निर्मल जल किसके ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर लेगा। इसी कारण कवि छत्तीसगढ़ की शस्य श्यामला धरा तथा विभन्न प्रकार की पर्वत की चोटियों का चित्रांकन रमणीय एवं मनोहारी ढंग से करते हुए कहता है–

अकृष्टपच्यं बहुशालिधान्यं
यत्रावनौ विष्वगलं सुरम्यम्।
सस्यान्विता भाति धराऽपि दिव्या
प्रमोदयन्ति मनांसि नृणाम्।।
हरन्ति गुंजन्ति ललन्ति भान्ति
चेतांसि छत्तीसगढ़ागतानाम्।
वसन्ति तिष्ठन्ति विलासयन्ति
न चान्यदिच्छन्ति न प्रव्रजन्ति।।[25]
वनावटी भाति नगावलीषु
कण्ठे भुवः शुभ्रतरेव माला।
पूर्वं विलासारव्य पुरस्य सोना–
रवानोऽधुना रायपुरे स्थितोऽस्ति।।[26]

इसी कारण कवि कह रहा है कि – **'चेतांसि छत्तीसगढ़ागतानाम्, न चान्यदिच्छन्ति न प्रव्रजन्ति।'** अर्थात् छत्तीसगढ़ आये हुए आगन्तुकों (पर्यटकों) का मन अन्य (दूसरे) स्थानों पर जाने को नहीं कहता अपितु **'वसन्ति तिष्ठन्ति विलासयन्ति'** के अनुसार रहने (बसने) को, ठहरने को और आनन्दानुभूति लेने को जी (मन) चाहता है। वहाँ की हरी–भरी धरती, रमणीय वन, दिव्य धरा को देखकर मन प्रमोद करने को कहता है। भाँति–भाँति के वन, अटवी और पर्वतों की श्रृंखलाएँ यहाँ की धरा की गले की दिव्य माला की भाँति सुशोभित होती हैं। पक्षियों की चहचहाहट, भौंरों का मधुर एवं मनमोहक गुंजार किसी के भी मन को अपनी और अकस्मात् खींच सा लेता है। भाँति–भांति के मनोरम दृष्यों को देखकर किसी का भी मन उसकी ओर खिचना स्वाभाविक है। ऐसी वेशुमार खनिज सम्पदाओं से युक्त छत्तीसगढ़ का प्राकृतिक सौन्दर्य वहा की पर्यावरण की दृष्टि से भी अनूठा प्रतीत होता है। पर्यावरण का मानव से गहरा सम्बन्ध ऐसी विशेषताओं से युक्त छत्तीसगढ़ अंचल में स्थित गिरौद गाँव महान् व्यक्तित्व के धनी, दलितों–शोषितों के मसीहा, सर्वहारा वर्ग के सचेतक, भारतीय अस्मिता के पक्षधर, सामाजिक समानता और सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय बाद के पुरोहा प्रातः स्मरणीय परमपूज्य बाबा घासीदास की जन्मस्थली है।

उनके जन्म के समय प्रकृति और मानवीय प्रकृति का विम्ब विधान अलौकिक ढंग से प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है –

विज्ञाय चाम्बरभवां गिरमर्थपूर्णां
वाद्यध्वनिश्च गृहगरमजनैर भीष्टः।[27]
दिव्यन्तरिक्षधरणीतलमण्डितोऽभूत

[25] दलितोदयः – 1/7–8
[26] दलितोदयः – 3/2–3
[27] दलितोदयः – 3/2

पुञ्जः प्रकारश विधतैक परस्तदानीम्।
प्रासूत पुण्यफलितश्चगिरौदपुर्यां
पुत्रः प्रभातसमये ह्यमरौतिनी सा।।
प्राच्यां दिवाकर इवाऽभवदस्य ज्योतिः
षट्पञ्चसप्तशशिवर्षगते च खीष्ट।
सोमे दिसम्बरभवे च पुराणतिथ्यां
जातः यशोऽङ्किततनुर्मृगपूर्णिमायाम्।।[28]

अर्थात् अमरौतिनी (घासीदास की माता) प्रातःकाल की बेला में जब पुत्र को जन्म देती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे गिरौदपुरी के लोगों के पुण्य का फल उत्पन्न हो गया हो यहाँ पर कवि के कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार प्रातः कालीन सूर्य जब लालिमा के साथ उदित होता है, तब एसकी मनोरम छटा जल में उसका प्रतिबिम्ब देखते ही बनता है। ठीक उसी प्रकार गिरौद वासियों के पुण्य का जो फल पुत्र के रूप में प्राप्त हुआ है वह देखते ही बन रहा है। उनके पैदा होते ही अन्तरिक्ष से लेकर धरती तक ऐसी दिव्यता से सुशोभित हो उठा जैसे अन्तरिक्ष में रहने वाला चन्द्रमा अपनी स्वच्छ चाँदनी से पृथ्वी के चर और अचर प्राणियों की अपनी शीतलता प्रदान करता रहता है तथा वनौषध्यिाँ उसकी शीतलता से प्रकाशवान होकर चतुर्दिक अपना प्रकाश फैलाकर जगमगा उठती हैं ठीक उसी प्रकार एक दूसरा चाँद उत्पन्न हो गया जिसके प्रकाश पुंज से धरा से लेकर अन्तरिक्ष तक प्रकाशित हो उठा। जब गाँव वालों को इस बात का आभास हुआ तो वहाँ के निवासियों का अभीष्ट वाद्य–ढोल, नगाड़ा, तुरही, शंख, मजीरा आदि की ध्वनि से आकाश और पृथ्वी उन वाद्य ध्वनियों से शब्दार्थ पूर्ण हो गई।

बिम्ब विधान की दृष्टि से अधोलिखित पद्य भी ध्यान देने योग्य है जिसमें उनकी दोनों लम्बी–लम्बी भुजाएँ की कल्पना सुनहले कमलनाल के समान लावण्य (खूबसूरती) सागर के भीतर और अंगों को खेलती हुई चंचल लहरों की भाँति, दोनों नेत्र खिले हुए युगल पद्म की कान्त (छवि) की तरह कवि कर रहा हे और कह रहा है कि उपर्युक्त गुणों से युक्त घासीदास की छवि (शोभा) अतुलनीय है, इसी कारण उनकी शोभा बार–बार अपनी ओर मोहित कर रही है।

दीर्घौ भुजौ कनकपद्ममृणालकल्पौ
लवण्यसिन्धुमिव चाङ्गतरङ्गलोलम्।
नेत्रद्वयं युगलपद्मविकासिकान्तं
सम्मोहयत्यतुलकान्तिधरोऽपि घासी।।[29]

महाकवि हीरालाल शुक्ल की अधोलिखित पंक्तियाँ प्रकृति–चित्रण की दृष्टि से ध्यातव्य हैं –

वराणस्यास्तटे रम्यं सुखाराध्यं सरोवरम्।
लहरं नाम कम्रं तत् पद्ममण्डलमण्डितम्।।[30]

अर्थात् वाराणसी के तट पर सुख से आराधना करने योग्य श्रेष्ठ सरोवर है। वह सरोवर लहरतारा के नाम से जाना जाता है, जो चारों ओर से कमलों के समूह से सुशोभित है।

भ्रमराणां सहस्रैश्च कारण्डव–रवगैर्युतम्।
सरस्तत् स्वच्छवर्मिश्च मण्डितं नात्र संशयः।।[31]

उस सरोवर के चारों ओर हजारों की संख्या में भौंरों के मधुर और मनमोहक गुंजार तथा पक्षियों के चहचहाने की ध्वनि सुनकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे संगीत का मधुर एवं मकनमोहक गान हो रहा है। साथ ही उस सरोवर की सुन्दर लहरे सुख, शान्ति एवं शीतलता को प्रदान कर रही हैं। इसमें लेश मात्र का सन्देह करना व्यर्थ है।

सुधासमं सुमिष्टं च जलं तस्यातिशोभनम्।
पातुं शीतोदकंञ्चात्र नित्यमायन्ति पक्षिणः।।[32]

उस सरोवर के स्वच्छ, निर्मल और शीतल जल को जो अमृत के समान मीठा एवं सुख प्रदान करने वाला है। उसे पीने के बलिए हजारों की संख्या में विभिन्न प्रकार के पक्षियों का समूह प्रतिदिन आया करते हैं।

मानुषैः पशुभिः देवैः किन्नरैः राक्षसैस्तथा।
जम्बूलक्षरसालानां वृक्षैः कीर्णः जलाशयः।।[33]

इतना ही नहीं अपितु उस सरोवर के अमृत के सदृश मधुर, शीतल और निर्मल जल लाखों रस ये युक्त जामुन एवं अन्य रसीले वृक्षों के फल को पान करने के

[28] दलितोदयः – 3/3–4
[29] वही – 3/11
[30] वही – 10/4
[31] दलितोदयः – 10/5
[32] वही – 10/6
[33] वही – 10/7

लिए मात्र मनुष्य और पशु ही नहीं आते थे अपितु देवता, राक्षस और किन्नर भी आया करते थे।

अत्र स्थिताः सुखं शान्तिं प्राप्नुवन्ति समीरतः।
सरो ह्यासीत् महत्तत्र भुक्ति–मुक्ति फल प्रदम्।।[34]

कवि उस सरोवर तथा स्थान की महत्ता का वर्णन करते हुए कहता है कि यहाँ पर पवन (आगन्तुकों को) अपनी शीतल–मन्द–सुगन्ध हवा के द्वारा शीतलता प्रदान करता है, जिससे सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है साथ ही साथ भोग एवं मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति भी होती है।

शैत्यं कामयमानाश्च नित्यमायान्तं प्राणिनः।
सरसीप्सितमानन्दं भुञ्जानास्तेऽपि चिन्तिताः।।[35]

इस सरोवर पर प्राणी हमेंशा पावन कामनाओं के साथ आते हैं और सरोवर से इप्सित (इच्छा के अनुकूल) परमानन्द एवं भोग की प्राप्ति करके भी चिन्तित रहते हैं।

सकस्मिन दिवसे चात्र सर्वश्रेष्ठे सरोवरे।
पद्मपत्रे सुखाधारे ददृशे चैक बालकः।।[36]

एक दिन उस सर्वश्रेष्ठ सरोवर पर पद्म पत्र पर आसीन सुख पूर्वक पड़े हुए एक बालक को देखा।

दिव्यैः तैजोभिरापूर्णः कबीरः कमनिष्ठितः।
लोकानामुवकारस्य स्वपंथानमवर्द्धयत्।।[37]

बालक दिव्य तेजों से भरा हुआ था। वही कर्मों में निष्ठा रखने वाला कबीर लोक के उपकार की भावना से अपने पंथ को बढ़ाया।

निम्नलिखित श्लोकों में उस समय का वर्णन किया गया है जब घासीदास सोनावान नामक अरण्य में छः माह की कठोर साधना कर रहे थे। साधना के लिए एकान्त स्थान, सूनसान, शान्त होना परमावश्यक है, वह स्थान प्राकृतिक ढंग से निर्जन शान्त, शीतल, मनोरम और मनमोहक हो।

धन्यास्ते निवसन्ति ये वनचरैः सार्धं वने निर्जने।
मूलं वा फलमेव वल्कलभृतः खादन्ति योगक्षमम्।
पत्र प्रायकषायित गिरिणदीतोयं पिबन्ति स्वयं
जिज्ञासन्ति चिदात्म शुद्धमनसा जानन्ति मिथा जगत्।।[38]

न सोनेति खानं वनं शोभनोत्कं।
न चात्मन्यलं चिन्तनं शान्तपूर्णम्।।[39]

वने निर्जने वन्यजीवै निवासो
फलं मूलमेवाशनं पत्र पुष्पम्।
सदा वल्कलं धारयन् योगवृत्तिं
प्रकुर्वन्ति ये तापसास्तेऽत्र धन्याः।।[40]

पिबन् पत्रपुष्पैः कुषायं नदीनां
गिरिस्रोतसामम्बु कौपीनषन्तः।
हृदि ध्यानमास्थाय सद्ब्रह्मणस्ते
जयन्तीह लोके घासिदासानुजास्ते।।[41]

मिथो वैरवृत्यान्विताः हिंस्रजीवाः
स्वभावं विहायात्र मोदं भजन्ते।
अहो तापसानां तपस्यानुभावः
क्दाचारिणोऽप्यत्र सन्तो भवन्ति।।[42]

उपर्युक्त श्लोकों में कवि '**वनचरैः सार्धं वने निर्जने', मूलं वा फलमेव' 'पत्र प्रायकषायित गिरिणदीतोयं', शोभनोत्कं', 'शान्त पूर्णम्' 'वन्यजीवै निवासो फलं मूलमेवाशनं पत्र पुष्पम्', गिरिस्रोतसामम्बु** आदि शब्दों का प्रयोग करता है इसका तात्पर्य यह है कि प्रकृति का रमणीय, मनमोहक, मनोरम और शान्त तथा निर्जन वातावरण वहाँ पर था। हरे–भरे पेड़ों से वह वन भरा पड़ा था। चतुर्दिक हरियाली ही हरियाली छायी हुई थी। पक्षी कलरव कर रहे थे, भौंरे मधुर एवं मनमोहक संगीतमय गुंजार कर रहे थे। चारों ओर से उन्हीं की संगीतमय स्वरलहरी गुंजित हो रही थी, शीतल मन्द बया रवह रही थी। स्पश। होने से उसकी शीतलता का आभास हो रहा था। कल–कल करती वन की नदियाँ बह रही थी। ऊँचे पर्वतों से बहते हुए झरनों का जल नीचे ऐसे लग

[34] वही – 10/8
[35] वही – 10/11
[36] दलितोदयः – 10/13
[37] वही – 10/15
[38] वही – 13/2
[39] वही – 13/8
[40] वही – 13/11
[41] दलितोदयः – 13/12
[42] वही – 13/13

रहा था, जैसे जल से धुँआ निकल रहा हो। इस प्रकार का शीतल एवे शान्त वातावरण किसके मन को अपनी ओर मुग्ध एवं आकृष्ट नहीं करेगा अर्थात् सभी के। साथ ही पेड़ों पर पक्षियों की चहचहाहट तब सुनाई पड़ा था, जब वृक्षों की डालियों पर बन्दर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर, एक डाली से दूसरी डालियों पर कूद–फाँद कर रहे थे। रीछ, भालू, हाथी, बाघ और शेरों की दहाड़ चिघाड़ना सुनाई पड़ता, विषैले जन्तु इधर से उधर घूमते हुए दिखाई दे रहे थे। अपने–अपने स्थानों पर अचल खड़े वृक्ष ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे वे समाधि में लीन होकर शान्त भाव से तपस्या कर रहे हो। वहाँ का वातावरण इस प्रकार था कि जितनी बार क्षण–प्रतिक्षण उसे देखा जाय उसमें कुछ नवीनता ही दिखाई पड़ रहा था। रैवतक पर्वत के वर्णन में माघ की लिखी हुई यह उक्ति चरितार्थ हो रही थी – **'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः।'** किन्तु अन्तिम अन्तिम श्लोक के अनुसार कवि कहता है कि हिंसक जीवों की प्रकृति ही बैर करने की होती है लेकिन घासीदास के तपस्या के प्रभाव से वे अपना स्वभाव (प्रकृति) छोड़कर आपस में मिलकर प्रसन्नता पूर्वक आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे। खराब आचरण करने वाले सन्त स्वभाव के हो गये अर्थात् उनकी प्रकृति बदल गई।

कवि ने अपने इस महाकाव्य में कृत्रिम प्रकृति का भी बड़ा ही रमणीय, मनोहारी एवं स्वाभाविक चित्रांकन करते हुए कहा है –

आपणाश्च तथा सवे वनमार्गाः सुशोभिताः।
सुगन्धितजलासे कैर्ध्वजतोरणमण्डनैः।।[43]

अर्थात् बाजार और वन के सभी मार्ग (रास्ते) सुगन्धित जल के छिड़काव, ध्वजाओं और तोरण मण्डनों से सुशोभित लग रहा था। यहाँ पर कहने का तात्पर्य यह है कि सभी रास्तों पर ध्वज पताका और तोरण मण्डन बनाये गये थे तथा सुगन्धित जल के छिड़काव से खुशबू भरी सुगन्ध भीनी–भीनी शीतल मन्द सुगन्ध पवन के झोकों से नाक के मार्ग से पहुँचकर सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी।

स्थाने स्थाने तथा चैव रुचिताश्चारुस्कम्भकाः।
पताका भिर्विता नैश्च गिरौदको व्यराजत।।
गृहे गृहे सुविन्यस्ताः कलशाश्च सुमङ्गलाः।
अपूर्वां ग्रामटीशो भां प्रशशंसुः जनास्तदा।।[44]
नानावाद्य विनिर्घोषः समुद्भूतः समन्ततः।
मोदहेतुः सराणां रवे पौराणां च तथा पुरे।।[45]

कवि कहता है कि 'अपूर्वां ग्रामटीशोभां' गिरौद गाँव को तोरण द्वारा, पताकाओं, कलशों, स्कम्भकों से ऐसा सजाया गया था जैसा कि पहले कभी भी नहीं देखा गया हैं। इसीलिए कवि **'अपूर्वाग्रामटीशोभां'** पद का प्रयोग करता है अर्थात् गाँव की शोभा सजावट के कारण अपूर्व लग रही थी। विभिन्न प्रकार के वाद्यों, मृदङ्ग, तुरही, ढोल, मजीरा, शंख, नगाड़ा आदि की ध्वनि सब ओर से उत्पन्न हो रही थी इसी कारण गाँव से पुरवासी और आकाश मार्ग से देवता लोग मोद हेतु आ रहे थे।

कवि घासीदास के चरित्र के सम्बन्ध में कहता है –

अपारः सागरः सोऽयं घासीदासयशोद्भुतम्।
को न यादि कविः पारं श्री घासिचरिताम्बुधेः।।[46]

अर्थात् घासीदास का अद्भुत (आश्चर्य करने वाला) यश (कीर्ति) यह अपार (न पार करने योग्य) सागर की भाँति है। उनके इस चरित्र रूपी अपार सागर को कौन सा ऐसा कवि नही है, जो कि इसको पार नहीं करना चाहता है अर्थात् सभी।

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से निम्नांकित पद्य भी द्रष्टव्य है –

तत्र नद्यास्तटे दिव्ये सर्वतश्च मनोहरः।
अश्वत्थतरुमूलेऽसौ चकार स्वासनं गुरुः।।[47]

यहाँ पर कवि **'नद्यास्तटे दिव्ये', 'सर्वतश्च मनोहरः'** कहता है अर्थात् जिस नदी का किनारा था वह दिव्य (रमणीय) रम जाने योग्य चारों ओर मनोहर अर्थात् जिधर भी देखते थे उधर का दृश्य प्राकृतिक सौन्दर्य से इतना खुशगवार था कि मन अकस्मात् उसकी ओर आकृष्ट हो जाता था। वहीं पर एक पीपल का पेड़ स्थित था उस पेड़ के नीचे घासीदास अपना आसन लगाये।

क्षेत्रस्य तस्यास्ति भृशं विशाला

---

[43] दलितोदयः – 14/3

[44] वही – 14/4–5

[45] वही – 14/8

[46] दलितोदयः – 14/3

[47] वही – 15/7/177

कण्ठे भुवः शुभ्रतरेव माला।
ऐश्वर्य सौन्दर्य विलास धानी
रत्न पुराख्या खलु राजधानी।।[48]
मध्ये पथं वृक्षतले क्वचित् स
श्रमापनो दाय निषण्ण आसीत्।
अवीजयन्तं पवनोऽति मन्द–
स्तत्र स्थितं सेवकवच्छ्रमेण।।[49]
पुरेऽथ तत्र रतनपुराभिधे
सरं विनिर्माय नवं मनोहरम्।
पुरे प्रतिष्ठाप्य स तीर्थमेकं
शरद्वसन्तादि महोत्सवं व्यधात्।।[50]
नद्यास्तीरे परे गत्वा
पिप्पलस्य तले स्थितः।
मासद्वयं स्थितिं कृत्वा
मुमुक्षून् स उपादिशत्।।[51]

उपर्युक्त पद्यों में कवि राजधानी रत्नपुर की, जो अपने ऐश्वर्य, सौन्दर्य और विलास के लिए प्रसिद्ध थी उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस राजधानी में बहुत बड़े–बड़े विशाल क्षेत्र हैं। यहाँ कहने का भाव यह है कि विशाल क्षेत्रों वाली यह राजधानी ऐसी लग रही है जैसी सुन्दर श्वेत मालाओं को पहने हुए पृथ्वी हो जो अपने ऐश्वर्य, सौन्दर्य और विलास के लिए जानी एवं पहचानी जाती है। वह राजधानी रत्नपुर के नाम से प्रसिद्ध है।

रास्ते के मध्य भाग में वृक्ष के निचले भाग में कही वह अपने श्रम के कारण थक जाने से थकावट को मिटाने (दूर करने) हेतु से बैठा था। वहाँ का पवन सेवक की भाँति धीरे–धीरे चलाते हुए पंखे की भाँति श्रम से उत्पन्न थकावट को दूर कर रहा था।

वही रत्नपुर राजधानी में घासीदास एक नया तथा मन को अपनी ओर आकृष्ट करने वाले सरोवर का विशेष प्रकार से निर्माण करवा कर वहाँ पर एक तीर्थ को प्रतिष्ठापित किया जहाँ पर शरद और वसन्त ऋतु के आने पर महान उत्सव मनाया गया।

वहाँ वे नदी के तट पर स्थित पीपल के पेड़ के नीचे आसन लगाकर दो महने तक मुमुक्षुओं को उपदेश दिया करते थे।

तत्पश्चात् गुरु घासीबाबा ने रम्य भण्डार नगरी में जाकर एक बरगद के नीचे अपना आसन लगाया। वहाँ उनसे सभी उनके दिव्य रूप और ज्ञानोपदेश से प्रभावित हुए। वहाँ उन्होंने चैत्यस्तम्भ स्थापित करके पूजा करने का विधान करवाया।

यहाँ पर कृत्रिम प्रकृति का विम्ब विधान करते हुए कवि कहता है –

यस्यावदान चरितानि मनोहराणिः
रक्ताः पुलिन्दललना मधुपानसक्ताः।
विश्रम्य मञ्जुलसुगन्धलतानिकुञ्जे
गायन्ति सैकतिकरोधसि चित्रोत्पलायाः।।
सोऽलंचकार भण्डारं बहुहैमकुम्भ–
सकतोरणैर्विविधवर्ण पताकिकाभिः।
रेजे पुरी बहुवर्णका चित्रचारुः
सीमान्तनीव नवभूषणभूषिताङ्गी।
स्तम्भोच्चयैरमलमौक्तिकगुच्छयुक्तै–
रम्यं समुज्ज्वल सुवर्णवितानदीप्तम्।
निर्म्माय मण्डपमनन्त मणि प्रभाभिः
स्वर्णासनैः सुरुचिरैस्तमलंचकार।।[52]

इस प्रकार दलितोदय महाकाव्य में गुरू घासीदास ने प्राकृतिक एवं नैसर्गिक सुषमा का चित्रांकन रमणीय एवं मनोहारी ढंग से किया है।

सन्दर्भ :–

[48] वही – 15/134
[49] वही – 15/135
[50] दलितोदयः– 15/137
[51] वही – 15/138
[52] दलितोदयः – 13/1–3

1. दलितोदयः महाकाव्य – डॉ. हीरालाल शुक्ल, वाए. के. प्रकाशन आगरा, 1996
2. गिरीजनों की संघर्ष गाथा – डॉ. हीरालाल शुक्ल, भोपाल, 1995
3. गुरू घासीदास संघर्ष समत्व और सिद्धान्त – डॉ. हीरालाल शुक्ल, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी. भोपाल, 1995
4. कालीदास का साहित्यिक अर्थ विज्ञान – डॉ. हीरालाल शुक्ल, दिल्ली. 1987
5. गुरू घासीदास और उनका सतनाम दर्शन – डॉ. हीरालाल शुक्ल, दिल्ली 2004

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 5, No. - 8 JUNE 2018
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact factor-3.9 Research Journal

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिका एवं कार्यप्रणाली

प्रीति शर्मा
शोधार्थी, वाणिज्य संकाय, रा.दु.वि.वि. जबलपुर

उद्देश्य :– भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का उद्देश्य एक मात्र ग्रामीण समाज के कमजोर वर्ग के लिए साख उपलब्ध करना है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम 1976 के अनुसार इसकी स्थापना का उद्देश्य है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि गतिविधियों विशेष रूप से लघु एवं सीमान्त कृषक खतिहार मजदूर, दस्तकार एवं लघु व्यवसायी एवं इनसे संबंधित अन्य व्यवसायों को साख व सुविधायें प्रदान कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास करना है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकिंग अधिनियम 1976 में वर्णित कार्य एवं उद्देश्य निम्नवत् हैं –

1. ग्रामीण क्षेत्र का विकास तथा इस क्षेत्र के पिछड़े हुये वर्गों को रियायती दर पर वित्तीय सुविधा उपलब्ध कराना।
2. ग्रामीण तथा पिछड़े हुए क्षेत्रों में साख संबंधी सुविधाओं का विस्तार करना।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित बैंकों को कार्यक्षेत्र की वित्तीय आवश्यकताओं के अनुरूप कर्मचारियों की नियुक्ति उस क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं का अध्ययन एवं साख व्यवस्था करना।
4. ग्रामीणों का जीवनस्तर ऊंचा उठाने का प्रयास करते हुये उनकी ऋणग्रस्तता को दूर करने का प्रयास करना।
5. सहकारी समीतियों, विपणन समीतियों, कृषि संबंधी परिष्करण समीतियों, प्राथमिक कृषि ऋण समीतियों अथवा कृषि संबंधी उद्देश्यों के लिये किसानों की सेवा समीतियां बनाना।
6. जमा राशि को स्वीकार कर ग्रामीण बचत को बढ़ावा देना तथा इस राशि को ग्रामीण क्षेत्रों के उत्पादक कार्यों में उपयोग करना।
7. शहरी मुद्रा बाजार से ग्रामीण क्षेत्रों में पुनः वित्त के माध्यम से ऋण के प्रवाह के अनुरूप चैनल तैयार करना।
8. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का सृजन करना।

मुख्यतः ग्रामीण बैंकों के कार्यों को मुख्यतः दो भागों में अध्ययन किया जा सकता है – पहला प्राथमिक या सामान्य तथा दूसरा सहायक कार्य।

प्रमुख कार्य :–

(1) जमा स्वीकार करना – अन्य वाणिज्यिक बैंकों की तरह क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के द्वारा जनता से धन मुख्यतः दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है। प्रथम अपने अंश बेचकर, द्वितीय जनता से जमा स्वीकार करके। अंशों के विक्रय माध्यम से प्राप्त होने वाली पूंजी बैंक के व्यवसाय के सफल संचालन के लिए पर्याप्त नहीं होती इसलिये बैंकों को जनता से उनकी जमा राशियों के रूप में ऋण लेना पड़ता है। लोग अपनी छोटी–छोटी बचतों को बैंक में जमा कर देते हैं, जिस पर उन्हें ब्याज प्राप्त होता है। साथ ही उनका धन भी सुरक्षित रहता है।

अन्य वाणिज्यिक बैंकों की तरह क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भी विभिन्न प्रकार के खातों को संचालित कर जनता से जमा स्वीकार करती है, जिनमें प्रमुख निम्नवत् हैं –

(i) सावधी जमा खाता – इस प्रकार के खाते में एक निश्चित अवधि के लिये धन जमा किया जाता है जो प्रायः 3 माह से पांच वर्ष तक के लिये होता है। जमाकर्ता को जमा की रसीद दे दी जाती है जिसमें जमाकर्ता का नाम, धनराशि, ब्याज की दर तथा जमा की अवधि लिखी जाती है। यह रसीद हस्तान्तरणीय नहीं होती है। यदि जमाकर्ता को किन्हीं कारणों से जमा धन की आवश्यकता अवधि पूर्ण होने के पहले पड़ जाती है तो बैंक कुछ कटौती काटकर धन वापस कर देता है। इस प्रकार की जमा को तत्काल देनदारी कहा जाता है।

(ii) चालू खाता – इस प्रकार के खाते में जमाकर्ता एक दिन में चाहे जितनी बार रूपया जमा करा सकता है और निकाल सकता है, इसकी जमाराशि प्रायः चैक द्वारा जमाकर्ता को एक पासबुक, एक चैकबुक तथा रकम जमा करने के फार्म दिये जाते हैं। चालू खाते की जमा पर बैंक ब्याज नहीं देते बल्कि कुछ बैंक तो सेवा व्यय भी वसूल करते हैं। चालू खाते की जमा राशि को बैंक की मांग देनदारी कहा जाता है।

अमेरिका में चालू खाता को चैक खाता कहा जाता है।

(iii) बचत खाता – छोटी–छोटी बचत करने वाले लोगों के लिये बचत खाते अधिक उपयुक्त होते हैं। इस प्रकार के खाते में सप्ताह में कई बार रकम जमा की जा सकती है किन्तु एक या दो बार से अधिक निकाली नहीं जा सकती। लेकिन एक वर्ष में अधिकतम सौर बार तक ही रूपया निकाला जा सकता है। इसमें निर्धारित सीमा से अधिक रूपया निकालने के लिये पहले बैंक को सूचना दी जाती है।

(2) ऋण देना – अन्य वाणिज्यिक बैंकों की तरह क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भी कुछ नगद कोष रखने के पश्चात् जरूरतमंद ग्रामीण किसान, दस्तकार, व्यवसायी, श्रमिक आदि को ऋण प्रदान करते हैं। वह जमा की अपेक्षा ऋण पर कुछ अधिक ब्याज लेते हैं और इन दोनों दरों के अन्तर से बैंक को लाभ होता है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक मुख्यतः निम्नवत् ऋण प्रदान करते हैं –

(a) ऋण तथा अग्रिम धन – एक निश्चित रकम के एक निश्चित समय के लिये दिये गये ऋण जिनका भुगतान पूर्णतया हो जाने पर ही ऋण का अन्त होता है, ऋण अथवा अग्रिम धन कहलाता है अर्थात कर दे और पुनः ऋण चाहे तो बैंक उसे तब तक ऋण नहीं देगा जब तक कि वह ऋण का पूर्ण भुगतान न कर दे। इस प्रकार के ऋण में बैंक की राशि उस खाते में हस्तांतरित कर देता है और हस्तांतरण के दिन से ही ब्याज लगने लगता है। चाहे ऋण प्राप्तकर्ता उसे निकाले अथवा न निकाले। इस तरह के ऋणों में ब्याज की दर का निर्धारण ग्राहक की साख ऋण के उद्देश्य, अवधि तथा धरोहर की किस्म आदि पर निर्भर करता है।

(b) नकद साख – इस व्यवस्था के अन्तर्गत् बैंक एक निश्चित सीमा तक ऋण प्राप्त करने का अधिकार दे देता है। इस सीमा के अन्दर ऋणी अपनी आवश्यकताऐं बैंक से रकम लेता रहता है और जमा भी करता रहता है। ब्याज उसी रकम पर वसूल किया जाता है जो वास्तव में ऋणी के पास रहती है, परन्तु कभी–कभी बैंक नगद साख की कुल रकम पर ब्याज वसूल करता है। ऋण के लिये व्यापारिक माल, बाण्ड अथवा स्वीकृत प्रतिभूतियों की जमानत पर ली जाती है।

(c) अधिविकर्ष – बैंक में चालू खाता रखने वाले ग्राहक बैंक से एक अनुबंध के अन्तर्गत् अपनी जमा राशि से अधिक धनराशि निकालने की अनुमति प्राप्त कर लेते हैं। निकाली गयी अतिरिक्त रकम को अधिविकर्ष कहा जाता है। इस प्रकार की सुविधा बैंक द्वारा अल्पसमय के लिए दी जाती है। यह कुछ विश्वसनीय ग्राहकों को ही मिलती है।

(3) साख निर्माण – बैंक अपनी कुल जमाराशि से कई गुना अधिक राशि उधार देकर साख मुद्रा का निर्माण करते हैं।'' अर्थात् बैंक जितना अधिक ऋण देता है, उतनी ही अधिक साख जमा उत्पन्न होती है तथा ऋण का निर्माण होता है इसलिये कहा जाता है कि जमा राशियां, साख को जन्म देती है, और साख जमा राशियों को जन्म देती है।

(4) सहायक कार्य – क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के पीछे मुख्य उद्देश्य ग्रामीण विकास था न कि गांवों में बैंकिंग प्रणाली (जमा एवं ऋण वितरण) का विकास। अतः जमा एवं ऋण वितरण के साथ–साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के कुछ सहायक कार्य भी हैं जो कि निम्नानुसार हैं –

(अ) शाखा स्थापना – क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर प्रमुख रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में शाखा कार्यालय स्थापित करने का उत्तरदायित्व सुपुर्द किया गया है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से यह अपेक्षा की जाती है कि दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी शाखा स्थापित करेंगे। जहां पर आर्थिक दृष्टि से अधिक गरीब व्यक्तियों का जमावड़ा है।

(ब) जमाऐं – ग्रामीण बैंकों का प्रमुख कार्य दूरदराज ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले गरीब लोगों में बचत की आदत को प्रोत्साहित करना है। इन बैंकों का प्रमुख लक्ष्य अब तक इन सुविधाओं से वंचित व्यक्तियों को बचत व निनियोग के लिए प्रोत्साहित करना है।

(स) बैंकिंग सुविधाऐं – क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ग्रामीणों को अन्य बैंकिंग सुविधाऐं जैसे – कोषों के हस्तातंरण, जमा सुरक्षित करना तथा कीमती सामानों को सुरक्षित रखना आदि सेवायें भी प्रदान करेंगे।

(द) प्रतिस्पर्धा – क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हर संभव प्रयास कर अन्य वित्तीय संस्थाओं जैसे – सहकारी बैंक तथा उस क्षेत्र में संचालित करने वाले अन्य बैंकों के साथ प्रतिस्पर्धा से बचेगी। इनका प्रमुख कार्य अन्य वित्तीय संस्थाओं की पूरक के रूप में अपनी भूमिका सिद्ध करना है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमुख कार्य इस प्रकार से हैं –

1. ग्रामीण एवं लघु उद्योगों का विकास करना।
2. ग्रामीणों में बचत की भावना को प्रोत्साहित करना।
3. ग्रामीण समाज के कमजोर वर्ग के दस्तकारों, कृषि मजदूरों, लघु सीमान्त किसानों, कृषक आदि को साख की आवश्यकता की पूर्ति कर गरीबी दूर करने में सहायक होना।
4. कृषिगत उत्पादक कार्यों में विनियोग बढ़ाना।
5. संस्थागत साख विस्तार द्वारा ग्रामीण साख की खाई को पाटना।
6. ग्रामीणों को महाजनों एवं फुटकर व्यापारियों के शोषण से मुक्ति दिलाना।
7. ग्रामीण अर्थव्यवस्था का चहुमुंखी विकास करना।
8. ग्राहकों की सुविधानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर रकम भेजने की सुविधा प्रदान करना।
9. आवश्यकता पड़ने पर ग्राहकों क संपत्ति के प्रबंधक, ट्रस्टी अथवा व्यवस्थापक का कार्य करना।
10. ग्राहकों को बहुमूल्य वस्तुओं जैसे – जेवर, कानूनी पत्र, दस्तावेज आदि का सुरक्षित रखने के लिये लॉकर की सुविधा प्रदान करना।
11. ग्राहकों को किसान क्रेडिट कार्ड जारी करना।
12. बाढ़, सूखा आदि पर सरकार द्वारा प्रदान वित्तीय सहायता का समाशोधन करना।
13. एक विशेषज्ञ की तरह अपने ग्राहकों को निवेश आदि की सलाह देना।

अतः क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों की बेहतर खोज की जा सकती है। इस संबंध में, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को बेरोजगारों को आसान और सस्ते ऋण प्रदान करके एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ सकती है। इसी प्रकार बैंक समुदाय की नकद–शेष राशि का प्रबंधन कर बचत को प्रोत्साहित कर रहे हैं। ये बैंक कमजोर वर्गों के लिए ऋण और अग्रिम प्रदान करते हैं अर्थात् व्यापार, वाणिज्य उद्योग और कृषि में लगे कमजोर क्षेत्र के वे व्यक्ति, जो अपने संबंधित क्षेत्र में उत्पादक गतिविधियां संचालित कर सकते हैं।

संदर्भ :–

- Agarwal R K (2005), "Evaluation Of The Working Of Regional Rural Banks", Mittal Publications, Delhi
- Dantwala, M.L. (1978), Regional Rural Banks- A Clarification, Economic and Political Weekly. 13(42).
- Sonara C.K. (2008), Regional Rural Banks in India –Anmol Publications, New Delhi.
- तपा, ओमप्रकाश (1997), ''ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों द्वारा वित्त पोशित स्वरोजगार योजनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन''– जबलपुर जिले के संदर्भ में''', वाणिज्य संकाय, वाणिज्य संकाय, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, 1997